YOGA VASISHT
VOL V
SANSKRIT

②

॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे पंचमं उपशमप्रकरणं प्रारभ्यते ॥

५-उपशमप्रकरणकी अनुक्रमणिका ।

[illegible]ति।

श्रीसद्गुरुचरणारविन्दाभ्यां नमः ॥ ॥ ॐ परमात्मने नमः ॥ ॥ ॐ ॥ ॥ अथ श्रीयोगवासिष्ठे पञ्चमं उपशमप्रकरणं प्रारभ्यते ॥

वाल्मीकिरुवाच ॥ हे साधो ! अब स्थितिप्रकरणके अनंतर उपशमप्रकरण कहता हौं; जिसके जाननेते निर्वाणताको प्राप्त होवोगे. जब इसप्रकार वसिष्ठजीने वचन कहे, तब सब सभा शोभित भई, जैसे शरत्कालके आकाशमें तारागण शोभते हैं, अरु वसिष्ठजीके वचन कैसे हैं, जो परमानंदके कारण हैं, ऐसे पावन वचन श्रवण करिके अर्थ धरिकै मौन हो गये, जैसे कमलकी पंक्ति कमलकी खांनिविषे स्थित होवै, तैसे सभाके लोक अरु राजा स्थित भये, अरु स्त्रियां जो झरोखेविषे बैठीथीं, सो तिनके महाविलासकी चंचलता शांत होगई, अरु घटीयंत्रोंके शब्द जो गृहविषे होते थे, सो भी शांत हो गये, शीशपर चमर करनेवाले भी मूर्तिवत् अचल होगये, राजाते आदि लेकरि जो लोग थे, सो कथाके सन्मुख भए. कैसी [illegible] है, विज्ञान वाली है, सर्वही तिसके विचारविषे मग्न हो गए, रामजी वडे विकासको प्राप्त भए, जैसे प्रातःकालविषे, कमल [illegible] विकासमान होता है, तैसे तमको त्यागते भये, प्रकाश आनि उदय भया, जैसे सूर्यके उदय हुएते प्रकाश आनि उदय होता है, अरु [illegible]सिष्ठजीकी कही जो वाणी थी, तिसकरि राजा दशरथ बहुत प्रसन्नताको प्राप्त भये, जैसे मेघकी वर्षाकरि मोर प्रसन्नताको प्राप्त होता है, तैसे गद्गद होगए, सर्वके जो मनरूपी चंचल वानर थे, सो विषयभोगते रहित स्थित भए, मंत्री श्रवण करिकै स्थित हो रहे, अपने स्वरूपको जानत भए, जैसे चंद्रमाकी कला प्रकाशती हैं, तैसे आत्मकला प्रकाशती भई, लक्ष्मण अपने लक्ष्यस्वरूपको देखता भया, तीव्र बुद्धिकरिकै वसिष्ठजीके उपदेशको जानता भया, अरु शत्रुघ्न जो शत्रुको दलनहारा था, तिसका चित्त अति आनंदकरि पूर्ण भया, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा स्थित होता है, तैसे मंत्रियोंके हृदयविषे मित्रता होती भई, मन शीतल हो गया; हृदय प्रफुल्लित होता भया, [illegible]से [illegible]के उदय हुएते कमल तत्काल विकासमान होता है, अरु और जो मुनि राजा ब्राह्मण स्थित थे, तिनके चित्तरूपी जो रत्न थे, सो स्वच्छ [illegible] हो गए, तब मध्याह्नकालका समय हुआ, तब वादित्र बजने लगे, बड़े २ शब्द हुए, जैसे प्रलयकालविषे मेघके शब्द होत [illegible]से भेरीके शब्द होने लगे तिनके बड़े शब्दकरि मुनीश्वरोंका शब्द आच्छादित भया, जैसे मेघके शब्दकरि कोकिलाका शब्द छिप जाता है, तब वसिष्ठजी

तूष्णीं हो गए, एक मुहूर्त्तपर्यंत शब्द होत रहा, बहुरि तूष्णीं भये, जब घनशब्द शांत हुआ, तब मु राम जीप्रति कहत भया ॥ हे रामजी ! जो कछु मुझे आज कहना था, सो कह रहा हौं, बहुरि कल कहौंगा, तब सर्व सभाके अपने स्थानको गए, तब वसिष्ठजीने राजाते लेकरि रामजी आदिको कहा, तुम भी अपने गृहको जावो, तब सर्वने चरणवंदना नमस्कार करे; अपर जो नभचारी, वनचारी, जलचारी थे, सो सबको बिदा किये, सब अपने अपने स्थानोंकों गये, ब्राह्मणकी सुंदर वाणीको विचारत भए, और अपने अधिकारकी दिनकी क्रियाको करत भए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे पूर्वादिनवर्णनं नाम प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ हे भरद्वाज ! इसप्रकार अपने २ स्थानोंको जायके बड़े २ शूरमें राजपुत्र महासुंदर चंद्रमाकी नाईं जिनकी कांति है, सो अपने २ स्थानोंविषे यथा उचित क्रियाको करत भए; वसिष्ठ, राजा, राघव, मुनि, ब्राह्मण जो थे, सो अपने २ स्थानविषे स्नान आदिक क्रियाको करत भए; तालविषे जो कमल थे, कुमुदिनी उत्पल आदिक थे, तहां स्नान करत भए; गौ, स्वर्ण, अन्न, पृथ्वी, वस्त्र, भोजन, आदिक दानपात्र ब्राह्मणोंको यथायोग्य देते भए, स्वर्णरत्नोंकरि जड़े हुए जो स्थान थे, तिनविषे आइकरि राजा देवताका पूजन करते भए, किसीने विष्णुका, किसीने सदाशिवका, किसीने अग्निका, किसीने सूर्य आदिका पूजन किया, पूजन करिकै पुत्र पौत्र सुहृद् मित्र बांधवसंयुक्त भोजन करते भए, नानाप्रकारके महा उचित भोजन किए, दिनका अर्ध पौर आय रहा, तब अपने संबंधियोंसंयुक्त और क्रिया करत भए, जब सांझकालमें सूर्य अस्त भया, तब सायंकालकी विधि करत भए; अघमर्षण गायत्री आदिक जाप करत भए; पाठ श्रोत्र अरु पुनरपि मनोहर कथा मुनीश्वरोंकी कहीसुनी। तिसते उपरांत रात्रि भई, तब परिचारिका जो स्त्रियां हैं, सो रामजी आदिकोंकी शय्या बिछावत भई; तिसकेऊपर विराजत भए, रामजीविना सर्वोंको रात्रि एक मुहूर्त्त व्यतीत भई, अरु रामजी स्थित होइकारि वसिष्ठजीके वचनकी जो पंक्ति थी, तिसको विचारत भये, कैसे वचन हैं, जो मधुर अरु उचितरूप हैं, तिनको कैसे चिंतवत भए, जैसे हस्तीका बालक किसी वनके स्थानमेंते कछु भोजन समेटि

लेवै, अरु आयके तिसका स्मरण करे, तैसे विचारत भये, संसार हैं नाम जिसका, इसविषे भ्रमणेका पात्र कौन है? अरु नाना प्रकारके जो भूतजात हैं, सो कहांते आते हैं, अरु कहां जाते हैं? अरु मनका स्वरूप क्या है, शांति कैसे होती है, यह माया कहांते उठी है, अरु कैसे निवृत्त होती है, निवृत्त हुए विशेषता क्या होती है, अरु नष्टता किसकी होती है, अनंतरूप जो आत्मा विस्तृत है, सो तिसविषे अहंकार होना कैसे है, अरु मनके क्षय होनेविषे मुनीश्वरने क्या कहा है, अरु इंद्रियोंके जीतनेविषे क्या कहा है, आत्माके पानेविषे क्या युक्ति वसिष्ठजीने कही है, जीव, चित्त, अरु माया सवही एकरूप हैं विस्ताररूप संसार इननेही रचा है, सो असतरूप है, तिनहूंने संपूर्ण संसार बांधि छोड़ा है; तिसकरि जीव पड़े दुःख पाते हैं, जैसे तंदुएने हस्तीको बांधा था, अरु वह कष्ट पाता था, तैसे जीव कष्ट पाते हैं, तिस दुःखके नाश करनेनिमित्त कौन औषध है, अरु भोगरूपी जो मेघमाला है, तिसविषे मोहित हुई मेरी बुद्धि गलित हो गई है, तिसको मैं किसप्रकार भिन्न करौं? यह तौ भोगके साथ तन्मय हो गई है, जैसे जल अरु दूधको हंस भिन्न करता है, अरु मुझको भोगोंके त्यागनेकी समर्थता भी नहीं, भोगोंके त्यागनेविना बड़ी आपदा है, अरु तिसके संहारनेको भी समर्थ नहीं, बड़ा आश्चर्य है, हमको वड़ा कष्ट प्राप्त भया है, आत्मपदकी प्राप्ति मनके जीतनेकरि होती है, वेदशास्त्रके कहनेका प्रयोजन भी यही है, अरु गुरुके वचनकरिकै भ्रम नष्ट हो जाता है जैसे बालकको परछाईंविषे बैताल भासता है, तिस भ्रमको जैसे बुद्धिवान् दूर करता है, तैसे मनरूपी भ्रमको गुरु दूर करते हैं, वह कौन समय होवैगा? कि, मैं शांतिको प्राप्त होऊंगा, अरु संसारभ्रम नष्ट हो जावैगा, जैसे यौवनवान् स्त्री भर्तारको पायके सुखसों विश्राम करती है, तैसे मेरी बुद्धि आत्माको पायकै कव विश्रामवान होवैगी, अरु नानाप्रकार संसारके आरंभ कव मेरे शांत होवैंगे, कव मैं आदि अंतते रहित पदविषे विश्रांतिवान् होऊंगा, मन मेरा कव पावनरूप होवैगा, मैं पूर्णमासीके चंद्रमावत् संपूर्ण कलाकरि सम्पन्न कव होऊंगा, स्वच्छ शीतल प्रकाशरूप पदविषे कव स्थित होऊंगा अरु कव जगतको देखिकै हँसौंगा, कव मलिन कलनाको त्यागिकै [illegible]रूप पदविषे स्थित होऊंगा,

कब मैं मनको संकल्पविकल्पते रहित शांतरूप देखौंगा, जैसे तरंगते रहित नदी शांतरूप देखती हैं, तृष्णारूपी तरंगकरि व्याकुल जो संसारसमुद्र है, सो माया जलकरि पूर्ण है, अरु रागदोषरूपी मच्छसंयुक्त है, तिसको त्यागिकै मैं वीतज्वर कब होऊंगा, उपशम सिद्ध पदको मैं कब पावौंगा जो पद बुद्धिवानोंने मूढ़ताको त्यागिकै पाया है, अरु मैं कब निर्दोष समदर्शी होऊंगा, अज्ञानरूपी ताप मेरा कब नाश होवैगा, जिसकरि संपूर्ण अंग मेरे पडे तपते हैं, सब धातु क्षोभरूप हो गई हैं, तिसकरि बड़ा दीर्घ ज्वर हुआ है; ताते कब मेरा चित्त शांतिवान् होवैगा, जैसे वायुविना दीपक शांत होता है, वैसा कब भ्रमको त्यागिकै प्रकाशवान् होऊंगा, अरु मैं कब लीलाकरि इंद्रियोंके दुःखको तरि जाऊंगा, दुर्गंधरूप देहते मैं कब न्यारा होऊंगा, अहं त्वं आदिक मिथ्या भ्रम उठा है, तिसको नाशरूप मैं कब देखौंगा, जैसे शरत्कालविषे मेघ नष्ट होता है, अरु जिस पदके आगे इंद्रादिकोंका सुख ऐश्वर्य मंदार आदिक वृक्षोंकी सुगंधि अरु नानाप्रकारके भोगजात सो तृणवत् भासते हैं, सो आत्मसुख हमको कब प्राप्त होवैगा ? वीतराग मुनीश्वरने हमको निर्मलदृष्टि ज्ञानकी कही है, तिसको पायके मन विश्रामवान् होता है, अरु यह संसार तौ दुःखरूप है ॥ हे मन ! तू किस पदको पायके विश्रामवान् भया है, माता पिता पुत्रादिक जो संबंधी हैं, तिनका पात्र मैं बहुरि नहीं होता, इनका पात्र भोगी होता है, हे बुद्धि ! तू मेरी भगिनी है, तौ मेरा शीघ्रही अर्थ भ्रातृवत् पूर्ण कर, जो तुम हम दोनों दुःखते मुक्त होवैं; मुनीश्वरके वचनोंको विचारिकै हमारी आपदा नाश होवैगी अरु परमपदको प्राप्त होवैंगे तुझको शांति होवैगी ॥ हे मेरी बुद्धि ! तू ज्योंका त्यों स्मरण कर कि, वसिष्ठजीने क्या कहा है, प्रथम तौ वैराग्य कहा है, तिसके अनंतर मोक्षव्यवहार कहा है, बहुरि उत्पत्तिप्रकरण कहा है कि, संसारकी उत्पत्ति इस क्रमकरि हुई है, बहुरि स्थिति प्रकरण कहा है, कि ईश्वरकरि जगत्की स्थिति है, तिसका नानाप्रकारके दृष्टांतोंकरि निरूपण किया है, अरु जेते प्रकरणहैं; सो कहे ज्ञानविज्ञान संयुक्त हैं ॥ हे बुद्धि ! जिसप्रकार वसिष्ठजीने कहा है, तैसे तू स्मरण कर कि, अनेकवार विचार कर जो बुद्धिविषे निश्चय न होवै तौ वह किया भी निष्फल होवै जैसे शरत्कालका मेघ बडा घन भी दृष्ट आता है, परंतु

वर्षाते रहित निष्फल होता है, तैसे बुद्धिविषे अनुसंधानते रहित किया विचार निष्फल होता है, जो बुद्धिविषे अनुसंधान करिये, सो विचार सफल होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उपदेशानुसारवर्णनं नाम द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ हे भारद्वाज ! जब इसप्रकार बडे उदार आत्मा रामजी चित्तसंयुक्त रात्रिको व्यतीत करत भए, जैसे सूर्यकी कक्षा कमलते रात्रि विता वत है, तैसे रामजी बितावते भए, कछु तमसंयुक्त तारागण आनि रहे, अरु दिशा भासने लगी अरु प्रातःकालके नगारे नोबत बा जने लगे, तब रामजी उठे, जैसे कमलोंकी खानिते कमल उठै, तैसे रामजी उठिकारि भ्रांतिसंयुक्त प्रातःकालके संध्यादिक कर्म करत भए, बहुरि कछुक मनुष्यसंयुक्त वसिष्ठजीके आश्रममें आये, वसिष्ठजी एकांत समाधि विषे स्थित थे, आत्मपरायण आत्माविषे एका ग्रभूत है चित्त जिनका ऐसे वसिष्ठ मुनिको दूरते देखि, रामजी नमस्कारसहित चरणवंदना करत भए प्रणामकरि वसिष्ठजीके सन्मुख हस्त बांधिकै ठाढ़े भए, जब दिशाका तम नष्ट भया, तब राजा अरु राजपुत्र ऋषि, ब्राह्मण, सब वसिष्ठजीके आश्रमविषे आवत भए, जैसे ब्रह्मलोकाविषे देवता आवैं तैसे ॥ तब वसिष्ठजीका आश्रम जनोंकरि पूर्ण हो गया, हस्ती घोड़े रथ प्यादा चार प्रकारकी सेना राजा इनकरि स्थान शोभित भया, तब तत्काल वसिष्ठजी समाधिते उतरे, सर्व लोक प्रणाम करत भए, तब तिन सबनको प्रणाम, आचारपूर्वक यथायोग्य ग्रहण करत भये, बहुरि उठे, विश्वामित्रको संग लेकरि सबसों आगे हो चले, बाहर निकसकरि रथपर आरूढ़ भये, जैसे कमलज ब्रह्मा पद्मविषे बैठें, तैसे रथपर बैठिकरि दशरथके गृहको चले, अरु बड़ी सेना संग वेष्टित है, जैसे ब्रह्माजी देवतोंसे वेष्टित इंद्रपुरीको आते हैं, तैसे वसिष्ठजी दशरथके गृह आवत भए, जो विस्तृत रमणीय सभा थी, तिसविषे प्रवेश करत भए, जैसे हंसवेष्टित राजहंस कमलोंविषे जाइ प्रवेश करै, तब राजा दशरथ जो बड़े सिंहासनपर बैठे थे, सो तिसते उठिकरि आगे आय, चरणवंदना करि नम्रीभूत होइकरि चरण चूंबे अरु वसिष्ठजी सर्वके अग्र होइकरि शोभते भए, वसिष्ठजीते आदि लेकरि मुनि ऋषि ब्राह्मण आए, अरु दशरथते लेकरि राजा, सर्व मंत्री, वंदीगण, रामजीते आदि लेकरि राजपुत्र, मंडलेश्वर, जगतके अधिष्ठाता अरु

मालव आदिक सर्व भृत्य टहलुए आए, सब अपने यथायोग्य आसनपर बैठि गए, सबकी दृष्टि वसिष्ठजीके ओर भई, बंदीजन जो भाट हैं, सो स्तुति करतेथे, सर्व लोक शब्द करते थे, सो बोलनेते रहित हो गए, तब सूर्य उदय हुआ, किरणोंने झुककारि झरोखेके मार्गांतर प्रवेश किया, तब कमल खिलि आए, पुष्पकारि स्थान पूर्ण हो गए, तिनकी महासुगंधि पसरी, अरु झरोंकेविषे स्त्रियां आय स्थित भईं, अरु सो अपनी चंचलताको त्यागिकारि मौन हो बैठीं, चमर करनेहारी मौन होइकारि शीशपर चमर करत भईं, अरु वसिष्ठजीकी जो महासुंदर वाणी कोमल मधुर है, तिसको स्मरण करि आपसमें आश्चर्यवान् होवैं, तब दिशाते पर आका शते राजर्षि आए, सिद्ध विद्याधर अरु मुनि आए, वसिष्ठजीको प्रणाम करत भए, अरु गंभीरतासों मुखते बोले नहीं, अरु प्रणाम करिकै यथायोग्य आसनपर बैठगए, पुष्पकी सुगंधि चली, अगरचंदनादिकी धूप जलाईगई, सभाविषे बड़ी सुगंधि पसर रही, भँवरे शब्द करते फिरैं कमलोंको देखि प्रसन्न होवैं, रत्नमणि भूषण जो राजाने अरु राजपुत्रोंने पहरे हैं, तिसपर सूर्यकी किरणैं पडैं, ताते बडा प्रकाश चंदोरा विषे करैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सभास्थानवर्णनं नामतृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥ वाल्मीकिरुवाच ॥ मेघ जैसे बड़े गंभीर वचन बोधसहित सुंदर पदहैं जिनविषे, ऐसे प्रमाणवचन राजा दशरथ मुनिनविषे श्रेष्ठ वसिष्ठजीको कहत भया ॥ दशरथ उवाच ॥ हे भगवन् ! कालका जो दिन व्यतीत भया है, तिसविषे तुमने हमको कहा था, तिसके श्रमते रहित हो क्यों तुम्हारा शरीर तप्तताकरि अतिकृश जैसा हो गया है, इसनिमित्त तुमसे कते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! तुम आनंदवचन जो कहे हैं, सो प्रगटरूप हैं, तुम्हारे वचनरूपी अमृतकी वर्षा है, तिसकारि हम आनंदवान भए हैं, तुम्हारे निर्मल वचनकारि हमारे हृदयका तम दूर भया है, शीतलचित्त भये हैं, जैसे चंद्रमाकी किरणोंकारि तम अरु तप्तता दोनों निवृत्त होते हैं, तैसे तुम्हारे वचनोंकारि हम अज्ञानरूपी तम अरु तप्तताते रहित भये हैं, तुम्हारे वचन अमृतवत् अपूर्व रस आनंद देते हैं, ज्यों ज्यों ग्रहण करिये, त्यों त्यों विशेष रस आनंद आता है, शोकरूपी तप्तताको दूर करनेहारे हैं, अमृतकी वर्षारूप हैं, अरु आत्मारूपी रत्न है तिसको दिखाने

हारे परमार्थरूप दीपक है, ऐसे आनंदको देनेहारे तुम्हारे वचन हैं, सो संतजनरूपी वृक्षकी यह वेलि है, दुरिच्छा अरु दुष्ट आचरण नानाप्रकारके जो नीच हैं तिसके नाश करनेहारे वचन हैं, जैसे तुमको दूर करनेको अरु शीतलता करनेको शांतरूप चंद्रमा है, तैसे संतजनरूपी चंद्रमा है, तिनके वचनरूपी किरणोंकरि अज्ञानरूपी तपता नाश होती है ॥ हे मुनीश्वर! तृष्णा अरु लोभादिक जो विकार हैं, सो तुम्हारी वाणीकरि नष्ट हो गये हैं, जैसे शरत्कालका पवन मेघको नष्ट करता है, तैसे तुम्हारे वचनकरि हम निष्पाप भए हैं, आत्मदर्शनके निमित्त प्रवर्त्तते हैं, अरु तुमने हमको परम अंजन दिया है, तिसकरि हम सचक्षु भए हैं, जैसे जन्मका अंधा सचक्षु होके नेत्रकरिकै पदार्थोंको देखै, तैसे हम सचक्षु हुए हैं, अरु संसाररूपी कुहिड निवृत्त हुई है, जैसे शरत्कालविषे कुहिड नष्ट हो जाती है, अरु जैसे कल्पवृक्षकी लता अरु अमृतका स्नान आनंद देता है, तैसे उदारबुद्धिकी वाणी आनंददायक होती है ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ ऐसे वसिष्ठजीको कहकरि रामजीकी ओर मुख करते भए, अरु कहा ॥ दशरथ उवाच ॥ हे राघव! जो जो काल संतोंकी संगतिकरि व्यतीत होता है, सो सो दिन, सो सो काल, सफल होता है अरु जो जो दिन सत्संगविना व्यतीत होता है, सो वृथा होता है ॥ हे कमलनयन रामजी! बहुरि तुम वसिष्ठजीको जगावहु, अर्थ यह कि कछु पूँछहु जो बहुरि उपदेश करैं, यह हमारे कल्याणविषे स्थित हैं, अर्थ यह जो हमारा कल्याण चाहते हैं ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ जब इसप्रकार राजा दशरथने कहा, तब रामजीकी ओर मुख करिकै उदार आत्मा वसिष्ठजी भगवान् बोलत भये ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव! अपने कुलरूपी आकाशके चंद्रमा! मैं जो वचन कहे थे, सो तुमको स्मरण आते हैं क्या? अरु तिन वाक्योंका अर्थ स्मरणविषे है क्या? पूर्व अरु अपरका विचार कछु किया है क्या? हे महाबोधवान् महाबाहो! अज्ञानरूपी शत्रुके नाशकर्त्ता, सात्त्विक राजस तामस गुणोंके भेदकी उत्पत्ति विचित्ररूप है, सो मैंने कही है, सो तुम्हारे चित्तमें है क्यों? सर्व भी वही है, असर्व भी वही है, सत्य भी वही है, असत्य भी वही है, सदा शांत अद्वैतरूप है, यह परमात्मा देवका विस्तृतरूप स्मरण है क्या? जिसप्रकार विश्व ईश्वरते उदय हुआ है, सो

स्मरण है क्या ? यह जो देववाणी है, तिसका पात्र शुद्ध चित्त है, अशुद्ध नहीं ॥ हे सत्यबुद्धि रामजी ! अविद्या जो विस्तृतरूप भासती है, तिसका रूप स्मरण है क्या ? अर्थते शून्य क्षणभंगुररूप है, सम्यक् दर्शनते रहित निर्जीव है, यह जो लवणके विचारद्वारा मैं प्रतिपादन किया है; सो भलीभाँति स्मरण है क्या ? वाक्योंका समूह मैंने तुझको कहा है, तिनोंको रात्रिविषे विचारिकरि हृदय विषे धारे है क्या ? जब वारंवार विचारता है, अरु तात्पर्य हृदयविषे धारता है, तब बड़ा फल प्राप्त होता है अरु जो अवज्ञा करिकै अर्थका विस्मरण करता है, तौ फलको नहीं पाता ॥ हे रामजी ! तुम तौ इन वचनोंके पात्र हौ, यह जो वचन परम उदार हैं, सो तिसके हृदयविषे फलीभूत होता है, जैसे उत्तम बाँसविषे मोती फलीभूत होते हैं, अपरविषे नहीं उपजते, तैसे जो विवेकी उदार आत्मचित्त पुरुष हैं, तिनके हृदयविषे यह वचन फलीभूत होता है ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब कमलासन ब्रह्माजीके पुत्र वसिष्ठजीने कहा, तब महाओजवान् गंभीर रामजी अवकाश पाइकै बोलत भया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मोंके वेत्ता, जो तुम परम उदार वचन कहे हैं, तिनकरि मैं बोधवान् भया हौं, अरु जैसे तुम अब कहते हौ, तैसेही सत्य है अन्यथा नहीं ॥ हे भगवन् ! मैं रात्रिको निद्राते रहित भया था, तुम्हारे वाक्यके विचारविषे रात्रि व्यतीत करीहै; तुम तौ हृदयके अज्ञानरूपी तमको नाशकर्त्ता पृथ्वीपर सूर्यरूप विचरते हौ ॥ हे भगवन् ! तुम जो व्यतीत दिनविषे आनंददायक प्रकाशरूपी वचन कहे थे, सो मैं सर्व अपने हृदयविषे भली प्रकार धरे हैं, सो तुम्हारे वचन कैसे हैं, रमणीय अरु पवित्र हैं, अरु नानाप्रकारके विचित्र हैं, जैसे समुद्रते नानाप्रकारके रत्न निकसते हैं, तैसे तुम्हारे वचन कल्याणकर्ता हैं अरु बोधवान्हैं. अर्थ यह कि, सर्वके सहायक हैं, अरु हृदयंगम आनंदका कारण हैं, वह कौन है, जो तुम्हारी आज्ञाको शिरपर नधरै, मुमुक्षु जीव हैं, सब तुम्हारी आज्ञाको शीशपर धरते हैं, अपने कल्याणके निमित्त जानते हैं ॥ हे मुनीश्वर ! तुम्हारे वचनकरिकै मेरे संशय निवृत्त भए हैं, जैसे शरत्काल विषे मेघ कुहिड नष्ट हो जाती है, अरु निर्मल आकाश भासता है, तैसे तुम्हारी कृपाकरि मैं संशयते रहित निर्मलचित्त भया हौं,

यह संसार आपातरमणीय होइ भासता है; जबलग पदार्थोंका अभाव नहीं होता, तबलग सुखदायक भासता है, अरु जब विषय पदार्थ इंद्रियोंते दूर होते हैं, तब दुःखदायक हो जाता है, अरु तुम्हारे वचन कैसे हैं, जिनके आदि अन्त भी कछु नहीं, सुगम मधुर आरंभ हैं; अरु मध्यविषे सौभाग्य मधुर वचन हैं, अर्थ यह कि कल्याणकर्ता हैं, वह पाछेते अनुत्तमपदको प्राप्त करते हैं, जिसके समान अपर पद कोई नहीं सो अनुत्तमपदको प्राप्त करते हैं, यह तुम्हारे पुण्यरूप वचनका फल है, अरु तुम्हारे वचनरूपी पुष्प सदा कमलसमान खिले हुयेहैं, निर्मलआनंदको देनेहारे हैं, अरु उदित फूल हैं, तिसका फल हमको प्राप्त होवैगा, सर्व शास्त्रोंविषे जो पुण्य रूपी जल है तिसका यह समुद्र है, अब मैं निष्पाप हुआ हौं, मुझको उपदेश करहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राघव प्रश्नवर्णनं नाम चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे सुंदरमूर्ति रामजी! यह उत्तम सिद्धांत जो उपशमप्रकरण है, सो श्रवण कर तेरे कल्याणनिमित्त मैं कहता हौं. यह संसार महादीर्घरूप है, इसको राजसी अरु तामसी जीव धर रहे हैं, जैसे दृढ स्तंभके आश्रय गृह होता है, तैसे राजसी जीवोंका आश्रय संसार मायारूप है, अरु जो तुमसारिखे सात्त्विकविषे स्थित हैं, सोशूरमें हैं वैराग्य विवेक आदिक गुणकरि संपन्न हैं, सो लीलाकरिकै यत्नविना संसारमायाको त्यागि देते हैं, जो बुद्धिमान् सात्त्विक जागे हुए पुरुष हैं, अरु राजस और सात्त्विक हैं, सो भी उत्तम पुरुष हैं, वह पुरुष जगत्के पूर्व अपूर्वको विचारते हैं, संतजन अरु सच्छास्त्रोंका संग करते हैं, तिनके कहे आचारपूर्वक विचरते हैं, तिसकरि ईश्वर जो परमात्मा है, तिसको देखनेकी बुद्धि उपजती है, और दीपकवत् ज्ञानप्रकाश उपजता है ॥ हे रामजी! जबलग अपने विचारकरिकै अपना स्वरूप नहीं पहँचानता, तबलग वह ज्ञान प्राप्त नहीं होता, जो उत्तम कुल निष्पाप सात्त्विक राजसी जीव हैं, तिनको विचार उपजता है, तिस विचारकरि अपने आपसों आपको पाता है, सो दीर्घदर्शी है, संसारके जो नानाप्रकारके आरंभ हैं, तिनको विचारता है, अरु विचारद्वारा आत्मपदको पाता है, परमानंद सुख विषे प्राप्त होता है, ताते तुम इसी संसारको विचारहु, कि सत्य क्या है अरु असत्य क्या है, ऐसे विचारकरि असत्का त्याग

करहु, अरु सत्यका आश्रय करहु, जो पदार्थ आदिविषे न होवै, अरु अंतविषे न रहै, सो मध्यविषे भी असत्य जानिये, जो आदि अंत एकरस तिसको सत्य जानिये, तिसते इतर कछु नहीं, जो आदिअंतविषे नाशरूप है, तिसविषे जिसको प्रीति है, अरु तिसके रागकरि रंजित है, सो मूढ पशु है, तिसको विवेकका रंग नहीं लगता, मनही उपजता है, मनही बढता है, सम्यक् ज्ञानके उदय हुएते मन निर्वाण हो जाता है, मनरूप संसार है, अरु आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों है ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! जो कछु तुम कहते हो, सो मैंने जाना है, जो यह संसार सर्वभावनाविषे मनरूप है, जरा मरण आदिक विकारका पात्र भी मनही है, तिसके तरनेका उपाय निश्चयकरि तुम कहो, जिसकरि इसको तरिजाओं हम सव रघुवंशियोंके कुलका अज्ञानरूपी तम हृदयसों दूर करनेको तुम ज्ञानके सूर्य हौ ॥ वसिष्ठ उवाच ! ॥ हे रामजी ! प्रथम तौ इस जीवको यह कर्तव्य है कि, जो विचारपूर्वक वैराग्य कहा है, कि संतजनोंका संग अरु सच्छास्त्रोंकरि मनको निर्मल करना सो जव मनको निर्मल करैगा, तव स्वजनता जो आर्जव तिसकरि संपन्न होवैगा, वहुरि इसको वैराग्य आनि उपजैगा, जब वैराग्य प्राप्त हुआ, तब ज्ञानवान् जो गुरु हैं, तिनके निकट जावैगा, जव वे उपदेश करैंगे, तव ध्यान अर्चनादिकके क्रमकरि परमपदको प्राप्त होवैगा, जव इसको निर्मल विचार आनि उपजताहै, तव यह अपने आपको आपकरि देखता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अपने बिंबको आपकरि देखता है, तैसे यह देखता है जवलग विचाररूपी तटका आश्रय नहीं लिया, तबलग संसार विषे तृणवत् भ्रमता है, विचारकरिकै वस्तु ज्योंकी त्यों जानता है, तब सव दुःख मनते नष्ट हो जाते हैं, जैसे सोमजलके नीचे रेत जाइ रहती है, तैसे आधि (पीडा) उसकी रहिजाती है, वहुरि उत्पन्न नहीं होती जैसे स्वर्ण अरु राख मिली हुई है, तबलग सोनार संशयविषे रहता है, जब स्वर्ण अरु राख भिन्न होवै, तब संशयरहित स्वर्णको प्रत्यक्ष देखता है, तब निःसंशय होता है, तैसे अज्ञानकरिके जीवोंको मोह उत्पन्न भया है, देह इंद्रियकेसाथ मिला हुआ संशयविषे रहता है, जब विचारकरि भिन्न भिन्न जानै तब मोह नष्ट हो जावै, और तब संशयते रहित शुद्ध अविनाशीरूप आत्माको देखता

है, विचार कियेते मोहका अवसर नहीं रहता। जैसे अज्ञात पुरुष चिंतामणिकी कीमतको जानि नहीं सकता जब उसको ज्ञान प्राप्त भया, तब ज्योंका त्यों जानता है, तब मोह संशय निवृत्त हो जाता है, तैसे जीव जबलग आत्मतत्त्वको नहीं जानता तबलग दुःखका भोगी होता है, अरु जब ज्योंका त्यों जानता है, तब शुद्ध शांतिको प्राप्त होता है॥ हे रामजी! देहके संगकारि मिश्रित भासता है, वास्तवते कछु मिश्रित नहीं भया, ताते अपने स्वरूपविषे शीघ्रही स्थित होहु, निर्मलस्वरूप जो आत्मा है, तिसको रंचकमात्र भी देहसे संबंध नहीं तैसे स्वर्ण कीचकीविषे मिश्रित भासता है, तौ भी स्वर्णको कीचका लेप कछु नहीं लगता, निर्लेप रहता है, तैसे जीवको देहकेसाथ संबंध कछु नहीं, निर्लेपही रहता है, आत्मा भिन्नहै, देह भिन्नहै जैसे जल अरु कमल भिन्न रहते हैं, मैं ऊँची भुजा कारिकै पुकारता हौं, मेरा कहा कोऊ नहीं मानता, संकल्पते रहित होना परमकल्याण है, यही भावना अंतरमें क्यों नहीं करते? जबलग जड़धर्म है॥ अर्थ यह कि, विषयभोगोंविषे आस्था करता है, अरु आत्मतत्वते शून्य रहता है, तबलग मूढ टोए जैसा रहता है, जबलग स्वरूपका प्रमाद है, तबलग इसके हृदयसों संसारका तम और किसीप्रकार दूर नहीं होता, चंद्रमाउदय होवै अग्निका समूह होवै, द्वादश सूर्य इकट्ठे उदय होवैं, तौ भी हृदयका तम रंचकमात्र भी दूर नहीं होता अरु जब स्वरूपको जानिकारि आत्माविषे स्थित होवै, तब हृदयका तम नष्ट हो जावेगा, जैसे सूर्यके उदय हुएते जगत्‌का अंधकार नष्ट होता है; तैसे जबलग आत्मपदका बोध नहीं, अरु भोगोंविषे तद्रूप मन है, तबलग संसारसमुद्राविषे बहा करैगा, अरु दुःखका अंत न आवैगा। जैसे आकाशविषे धूलि भासती है, परंतु आकाशको धूलिका संबंध कछु नहीं, जैसे जलविषे कमल भासता है, परंतु जलसे स्पर्श नहीं करता, सदा निर्लेप रहता है, तैसे आत्मा देहकेसाथ मिश्रित भासता है, परंतु देहके साथ आत्माका कछु स्पर्श नहीं, सदा विलक्षण रहता है, जैसे स्वर्ण कीचकते अलेप रहता है, देह जड़ है, आत्मा तिसते भिन्न है, सुखदुःखका अभिमान आत्माविषे भासता है, सो भ्रममात्र असत्यरूप है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा असत्यरूप है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है सो अस

त्यरूप है, तैसे आत्माविषे सुखदुःखादि असत्यरूप है, सुखदुःख देहको होता है, सर्वते अतीत जो आत्मा है, तिसविषे सुखदुःखका अभाव है,यह अज्ञानकरिकै कल्पित है, अरु देहके नाश हुएते आत्माका नाश नहीं होता, ताते सुखदुःख आत्माविषे कोई नहीं, न किसीको कछु सुख है, न किसीको कछु दुःख है, सर्व आत्मामय शांतरूप है, अरु यह जो विस्तृतरूप जगत् दृष्टि आता है, सो मायामय है; जैसे जलविषे तरंग अरु आकाशविषे तरवरे भासते हैं, तैसे आत्माविषे यत्न भासता है, सो आत्माही है, न एक है,न दो हैं, सर्व आभासमात्र हैं, मिथ्या दृष्ट आकार भासता है,जैसा मणिका प्रकाश मणिते भिन्न नहीं, अरु अपनी छाया दृष्ट आती है, तैसे आत्माका प्रकाशरूप जगत् भासता है, सो सब ब्रह्मरूप है, मैं और हौं, यह जगत् और है, इस भ्रमको त्याग करहु, विस्तृतरूप जो ब्रह्म घनसत्ता है, तिसाविषे और कल्पना कोई नहीं, जैसे जलविषे तरंग कछु इतर वस्तु नहीं, जलरूपही हैं, तैसे सर्वरूप आत्माहै, सो एकरूपहै, तिसविषे द्वितीय कल्पना कोई नहीं जैसे अग्निविषे बर्फके कणके नहीं होते, तैसे ब्रह्मविषे दूसरी वस्तु कछु नहीं, तातें अपने आप स्वरूपकी आपही भावना करो कि, मैं चिन्मात्ररूप हौं; जगज्जाल सर्व मेराही स्वरूप है, मैंही विस्तृतरूप हौं; जो कछु है, सो देवही है, न शोक है, न मोह है, न जन्म है, न देह है; ऐसे जानिकै विगतज्वर होहु, अपने स्वरूप विषे स्थित होहु, तुम्हारी स्थिर बुद्धि है, तुम शांतरूप श्रेष्ठ मणिवत् निर्मल होहु, ऐसे जानिकै विगतज्वर होहु ॥ हे राघव। तुम निर्द्वंद्व होहु, नित्य स्वरूपविषे स्थित निर्योगक्षेम आत्मवान् विशोक होइकारि स्थित होहु सत्य संकल्प धैर्यवान् यथाप्राप्तविषे वर्तते विगतज्वर होहु, तुम वीतराग, निर्यत्न निर्मल वीतकल्मष होहु, न देवोहो, न लेवेहो ग्रहणत्यागते रहित शांतरूप होहु, विश्वते अतीत पद है, तिसको प्राप्त होइकारि जो पाने योग्य पद है, तिसको पायकारि परिपूर्ण समुद्रवत् अक्षोभरूप संतापते रहित विचरौ. हे रामजी! संकल्पजालते मुक्त मायामलते रहित अपने आपकारि तृप्त विगतज्वर होहु, आत्मवेत्ताका शरीर अनंत है, आदिअंतते रहित पर्वतके शिखरवत् विगतज्वर होहु ॥ हे रामजी! तुम अपने आपकारि उदार होहु, अरु अपने आपकारि आनंदकारि आनंदी होहु, जैसे समुद्र

आनंदकरि आनंदवान् है, अथवा जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अपने अपने आनंदकरि आनंदवान् है, तैसे तुम आ..द्वान् होहु, यह जो प्रपंचरचना भासती है, सो असत्य है, जो ज्ञानवान् हैं, सो असत्य जानिकरि इसकी ओर नहीं धावते, तुम तौ ज्ञानवान् हौ, असत्य कल्पना त्यागिकरि दुःखते रहित होहु, नित्य उदित शांतरूप शुभगुणसंयुक्त उपदेशद्वारा चक्रवर्ती होइकरि तुम पृथ्वीका राज्य करौ, अरु प्रजाकी पालना करौ, समदृष्टिसों विचरौ, बाह्य शुभ चेष्टा यथाशास्त्र करौ, अरु राज्यकी मर्यादा करनी अंतर निर्लेप रहना, तुमको न त्यागते कछु प्रजोजन है, न ग्रहणते प्रयोजन है, ग्रहणत्यागविषे समबुद्धि समभावकरि राज्य करहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रथमोपदेशो नाम पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व कार्यको करता हुआ हृदयते वासना नष्ट भई है, वह पुरुष कार्यविषे वर्त्तता है तौ भी मुक्त है, हमारे मतविषे इसको बंधनका कारण वासना है, जिसकी वासना क्षय हुई है, सो मुक्तस्वरूप है, अरु जिसकी वासना पदार्थोंविषे सत्य है, सो बंधमें है, कोई पुरुष अपने पुरुषार्थको आश्रयकरि कर्तव्य भी करते हैं प्रीतिकरिकै प्रवर्त्तते हैं, सो अपनी वासनाकरिकै स्वर्गको प्राप्त होते हैं, बहुरि स्वर्गको त्यागिकरि दुःख नरक भुगतते हैं, सो अपनी वासनाकरि बांधे हुए पशु आदिक स्थावर योनिको प्राप्त होते हैं, अरु कोई आत्मवेत्ता पुण्यपुरुष हैं, सो मनकी दशाको विचारते हैं, अरु तृष्णारूपी बंधनको काटिकरि निर्मल आत्मपदको प्राप्त होते हैं, अरु कोई पुरुष पूर्वजन्मको भोगि करि इस जन्मविषे मुक्त हुए हैं, सो राजस सात्त्विकी होते हैं, जिनका यह जन्म अंतका होता है, सो क्रमकरिकै परिपूर्ण पदको प्राप्त होते हैं जैसे शुक्लपक्षका चंद्रमा क्रमकारिकै पूर्णमासीका होता है, अरु सर्वकालकरि पूर्ण होता है, जैसे वर्षाकालविषे कंटकवृक्षकी मंजरी बढि जाती है, तैसे सौभाग्यलक्ष्मी तिनकी बढती जाती है ॥ हे रामजी ! जिनका यह जन्म अंतका होता है, तिसविषे निर्मल गुण जो वेदने कहे हैं, सो आय प्रवेश करते हैं, जैसे उत्तम वासविषे मोती उपजता है, तैसे राजसी सात्त्विकीविषे शुभ गुण उपजते हैं, मैत्री, सौम्यता, मुक्तता, ज्ञातव्यता, आर्यता यह गुण प्रवेश करते हैं, सर्व जीवोंपर दया करनी सो मैत्री, अरु हृदयविषे सदा

समताभाव, अंतःकरणविषे क्षोभ कोऊ न उठै सो मुक्तता अरु सदा प्रसन्न रहना सो सौम्यता, यथाशास्त्र आचार करना इसका नाम आर्यता है, ज्ञानका नाम ज्ञातव्यता है, जैसे राजाके अंतःपुरविषे श्रेष्ठ अंगना आय प्रवेश करती हैं, तैसे जिसके अंतका यही जन्म है, सो राजससात्त्विकी है, तिसके हृदयविषे मैत्री आदिक सर्व गुणआय प्रवेश करते हैं, ऐसा पुरुष सर्व कार्यको करता है; परंतु तिसके हृदयविषे लाभ अलाभका रागदोष नहीं होता, सर्वकाल समभाव रहता है, तोषवान् होता है, न शोकवान् होता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते तम नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मभावकरि रागदोष नष्ट हो जाते हैं, सर्व गुण सिद्धताको प्राप्त होते हैं, जैसे शरत्कालका आकाश शुद्ध होता है, तैसे कोमल सुंदर होता है, अरु मधुर तिसका आचार होता है; सर्व जीव तिसके आचारकी वांछा करते हैं, अरु तिसको देखिकै मोहित हो जाते हैं, जैसे सुंदर बाँसुरीकी ध्वनिकरि मृग मोहित होताहै, तैसे उसको देखिकै विस्मय होतेहैं, जैसे मेघकी ध्वनिकरि बगले आय प्रवेश करते हैं; तैसे उस पुरुषविषे सर्व गुण प्रवेश करते हैं, गुणोंसे पूर्ण होइकरि गुरुकी शरण जाता है, तब वह विवेकका उपदेशकरता है, तिस विवेककरि परमपदविषे स्थित होता है ॥ हे रामजी ! जो वैराग्य अरु विचारकरि संपन्नचित्त है, सो आत्मा देवको देखता है, तिसको दुःख स्पर्श नहीं करते यथार्थ एक आत्मरूपको देखता है; तुम विचारका आश्रय करिकै मनको जगाओ; कैसा मन है जिसविषे मननही मथन है. अर्थ यह कि, जो सदा प्रपंच दृश्यका मननभाव करता है, अरु जो अंतका जन्मवान् पुरुष है, सो मनरूपी मृगको जगावता है; प्रथम तौ गुणज्ञानकरि जगावता है, बहुरि बडे गुणनकरि जगावता है, फिर जानिके सेवनेका यत्न करता है, तिसकरि जगावता है; निर्मल बुद्धिसे चित्तरूपी रत्नोंको विचार करताहै तिस विचारकरि जगत्को आत्मारूप देखता है, आत्माके प्रकाश विचारसों अविद्यामल नष्ट हो जाता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे क्रमोपदेशवर्णनं नाम षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह तुमको क्रम कहा है, सो सब जीवोंको समान है, इसतें जो विशेष है, सो तुम श्रवण करहु, इस जगत्का जो आरंभ है, तिसविषे जो देहधारी जीव हैं, तिन जीवोंका दो प्रका

रसे मोक्ष होता है; एक उत्तम क्रम है, एक समान है, जो गुरुके निकट जावै, वह इसको उपदेश करै तिस उपदेशके धारणेते शनैःशनैः एक जन्मकरि अथवा अनेक जन्मोंकरि सिद्धता प्राप्त होती है ॥ अरु दूसरा क्रम यही है, जो अपने आपकरि वह उत्पन्न होता है, अर्थ यह कि समझ लेता है, जैसे वृक्षते फल गिरै अरु इसको आय प्राप्त होवै, तैसे इसको ज्ञान प्राप्त होता है, इसीपर पूर्वका वृत्तांत मैं तुझको कहता हौं, सो तू श्रवण कर, सो महापुरुषोंका वृत्तांत है, शुभ अशुभ गुणोंके समूह जिनके नष्ट भए हैं, अरु अकस्मात् फल जिनको प्राप्त भया है, तिनका निर्मल क्रम सुन ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे क्रमसूचनावर्णनं नाम सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! सर्व संपदा जिसकी उदय हुई हैं, अरु सब आपदा जिसकी नष्ट भई हैं, एक ऐसा उदारबुद्धि विदेह नगरका राजा जनक नाम हुआ, सो बड़ा धैर्यवान् हुआ, जो अर्थी होवैं, तिनका अर्थ कल्पवृक्षकी नाईं पूर्ण करै; अरु मित्ररूपी जो कमल हैं, तिनको सूर्यवत् प्रफुल्लित करै, बांधवरूपी पुरुषोंको वसंतऋतु अरु स्त्रियोंको कामदेव, ब्रह्मरूपी जो चंद्रमुखी कमल हैं, तिनको शीतल चंद्रमा, अरु दुष्टरूपी तमका नाशकर्त्ता सूर्य, स्वजनरूपी रत्नोंका समुद्र, पृथ्वीविषे मानो विष्णु सूर्य आय स्थित भये हैं । ऐसा राजा जनक एक समय लीलाकरिकै अपने बागको गमन करता भया; कैसा बाग है, मधुरताकरिकै प्रफुल्लित भए हैं फल जिसके, कोकिला शब्द करती हैं, नानाप्रकारकी सुंदर वल्ली हैं, तिस सुंदर बागविषे राजा जनक प्रवेश करता भया, जैसे नंदनवनविषे इंद्र प्रवेश करै, सुंदर वन पुष्पकरि सुगंधि पसर रही है, तहां राजाके संग जो अनुचर थे, तिनको दूरते त्यागिकरि आप एकलाही कुंजोंविषे विचरने लगा, एक शालमलीनामक वृक्ष था, तहांते शब्द श्रवण किया, जो अदृष्ट सिद्ध है, सो गीता गाता है, विरक्तचित्त अरु नित्य पर्वतोंविषे विचरनेवाला कमलवत् नेत्र जिसके, सो आत्मगीताको उच्चार करता है, जिसकरि आत्मबोध प्राप्त होता है, तिस गीताको राजा श्रवण करते भए ॥ प्रथमसिद्ध उवाच ॥ यह द्रष्टा जो पुरुष है, अरु दृश्य जो जगत् है, तिस द्रष्टा अरु दृश्यके मिलापविषे जो बुद्धिमें निश्चित आनंद होता है, सो इष्टके संयोगका अरु अनिष्टके वियोगका जो आनंद है, सो चित्तविषे दृढ़ होता है,

सो आनंद आत्मतत्त्वते उदय होता है, स्पंदरूप जिस आत्मा आनंदते लव उठता है, तिसकी हम उपासना करते हैं ॥ द्वितीयसिद्ध उवाच ॥ द्रष्टा, दर्शन, अरु दृश्य इनको वासनासहित त्याग कर, जो दर्शनते प्रथम प्रकाशरूप है, जिसके प्रकाशकरि यह तीनों प्रकाशते हैं, तिस आत्माकी हम उपासना करते हैं ॥ तृतीयसिद्ध उवाच ॥ जो निराभास निर्मलरूप है, अरु आभास अरु मननके भावका अभाव है, जिसविषे द्वितीय कल्पनाका अभाव है, अद्वैतरूप है, तिसकी हम उपासना करते हैं ॥ चतुर्थसिद्ध उवाच ॥ दोनोंके जो मध्यविषे है, अस्ति नास्ति दोनोंके पक्षोंते रहित प्रकाशरूप सत्ता है, सब सूर्य आदिकको भी प्रकाशता है, तिस आत्माकी हम उपासना करते हैं ॥ पंचमसिद्ध उवाच ॥ जो ईश्वर सकार हकार भया है ॥ अर्थ यह कि, सकार जिसके आदिविषे और हकार है जिसके अंतविषे, ऐसे सोहं है, सो अंतते रहित आनंद अनंत जो शिव परमात्मा है, सो अनंत आत्मा सर्व जीवोंके हृदयविषे निरंतर जो अहंरूप होइकरि उच्चार होता है, तिस आत्माकी हम उपासना करते हैं ॥ षष्ठसिद्ध उवाच ॥ हृदयविषे स्थित जो ईश्वर है, तिसको त्यागिकरि जो और ठौर देवके पानेका यत्न करते हैं, सो पुरुष हस्तविषे कौस्तुभमणिको त्यागिकरि और रत्नोंकी वांछा करते हैं ॥ सप्तमसिद्ध उवाच ॥ जब सर्व आशाको त्यागता है, तब इसको फल प्राप्त होता है, जो आशारूपी विषकी वल्ली है, सो मूलसंयुक्त नष्ट हो जाती है, अर्थ यहकि, जो जन्म अरु मरण आदिक दुःख नष्ट हो जाते हैं, बहुरि नहीं उपजते, जो पदार्थोंको अत्यंत विरसरूप जानते हैं, अरु बहुरि उसविषे आशा बांधते हैं, सो दुर्बुद्धि गर्दभ है, मनुष्य नहीं, जहां जहां विषयोंकी ओर दृष्टि उठती है, तिनको विवेककरि नष्ट करहु, जैसे इंद्रने वज्रसे पर्वतोंको नष्ट किया था, तैसे नष्ट करहु, जब इसप्रकार शुद्ध आचरण करैगा, तब समभावको प्राप्त होवैगा, तिसकरि मन आत्मपदरूप उपशमको प्राप्त होवैगा, उपशमको और अक्षय अविनाशी पदको पावैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सिद्धगीतावर्णनं नाम अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार सिद्धोंकी गीता महीपति सुनिकरि जैसे संग्रामविषे कायर विषादको प्राप्त होता है, तैसे विषादको प्राप्त भया, बहुरि सेनासंयुक्त अपने गृहविषे आया,

टहलुए भृत्य सर्व लोक किनारेविषे स्थनोंपर ठाढे हो रहे, तिनको त्यागिकारि ऊपर चौखंडी झरोखोंमें जाय स्थित भया, जैसे तटके वृक्षोंको नदीका प्रवाह स्पर्श करता है तैसे तिनके मार्गको स्पर्शकरता ऊपर जाय बैठा एक मंदिरके ऊपर जाय स्थित भया, जैसे सूर्य उदयाचल पर्वतपर चढता है, तैसे चढिकारि संसारकी चंचल गतिको इधर उधर देखने लगा, अरु विलाप करने लगा, बडा कष्ट है, कि मैं भी संसारविषे लोकोंकी जो चंचल दिशा है, तासों आस्था बांध रहा हौं, यह तौ जीव सर्व जडरूप हैं, चेतन कोई नहीं, जैसे अपर जीव पाषाणरूप हैं, तैसे मैं भी तिनविषे पाषाण हो रहा हौं, काल जो है, सो अंतते रहित अनंत है, तिसके कछुक अंशविषे मेरा जीना है, तिस जीनेविषे मैं आस्था बांध रहा हौं, सो मुझको धिक्कार है, अरु जो मैं अधम चेतन हौं यह जो केतेक मंत्री मेरे हैं, सो राज्य अरु जीना सर्व क्षणभंगुर है, यह जो सुख है, सो दुःखरूप है, इनते रहित मैं किसप्रकार स्थित होऊं, जैसे महापुरुष बुद्धिमान् स्थित होते हैं, आदि अंतविषे तुच्छरूप है, अरु मध्यविषे जीवना पेलवरूप है, तिसविषे मैं क्या मिथ्या आस्था बांधी है? जैसे बालक चित्रके चंद्रमाको देखिकै चंद्रमा मानकर आस्था बांधै, तैसे यह प्रपंचरचना इंद्रजालकी बाजीवत् है, बड़ा कष्ट है कि, तिसविषे मैं क्या मोहित भया हौं, जो वस्तु उचित, रमणीय, उदार अरु अकृत्रिम है, सो इस संसारविषे रंचक भी नहीं, मेरी बुद्धि क्यों नष्ट भई है? जो पदार्थ दूर होवै, अरु तिसके पानेका मेरे मनविषे यत्न होवै, तौ वह निकटही है, यह निर्णय करौ, अथवा अर्थाकार जो संसारके पदार्थ हैं, तिनकी आस्था मैं त्यागता हौं, यह जो लोक हैं, सो सब आगमापायी हैं, उदय होते हैं, अरु मिट जाते हैं, जलके तरंगोंवत् सब पदार्थ क्षणभंगुर हैं, जेते कछु सुख दृष्टि आते हैं, सो दुःखसाथ मिश्रित हैं, तिनविषे मैं क्या आस्था बांधी है, सुख कदाचित् दिन पक्ष मास वर्षादिककारि आते हैं, अरु दुःख वारंवार आते हैं, मैं किस सुखकारि जीनेकी आस्था बांधौं, जो बडे बडे हुए हैं, सो नष्ट हो गए हैं, स्थिर किसीका रहना नहीं, वारंवार विचार देखता हौं, तिसकारि मैं जाना है कि, इस जगतविषे सत्य पदार्थ कोई नहीं, सब नाशरूप हैं, ऐसा कौन पदार्थ है कि, जिसविषे आस्था बांधौं, जो अब बड़े ऐश्वर्यवान् विराजते हैं, सो केतेक दिन पीछे अधको

गिरि पडते हैं ॥ हे चित्त! बड़ा खेद है, तुझने किस बड़ाईविषे आस्था बांधी है, जो आयुर्बलकारि मैं बांधा हुआ किसविना कलंकित भया हौं, ऊंचे पदविषे स्थित भी मैं अधको गिरा हौं; बड़ा कष्ट है कि, मैं आत्मा हौं अरु नाशको प्राप्त भया हौं, किसकारणकारि अकस्मात् मुझको मोह आया है, मेरी बुद्धिको इसने उपहत कीनी है, जैसे सूर्य आगे मेघ आता है, अरु सूर्य नहीं भासता, तैसे आत्मा नहीं भासता, भोगोंसे मेरा क्या है, अरु बांधवोंसे मेरा क्या है, इनविषे मैं क्यों मोहित भया हौं? जैसे बालक परछाईंविषे भयको पाता है, तैसे देहअभिमानकारि यह पुरुष आपही बंधायमान होता है, देहविषे अहंकार जरामरणादिक विकारका कारण होता है, ताते इनसे मेरा क्या प्रयोजन है, इन अर्थोंकी बड़ाई राज्यविषे मैं क्यों धैर्य धार बैठा हौं, यह सब पदार्थ क्षोभका कारण हैं, यह ज्योंके त्यों रहते हैं, इनविषे न मुझको ममता है, न संग है, यह सर्व असत्यरूप है, संसारके सुख विषरूप हैं, इसविषे आस्था करनी मिथ्या है, जो बड़े बड़े ऐश्वर्यवान् हुए हैं, बड़े पराक्रमी गुणवान् हुए हैं, सो सब परिवारसंयुक्त मृत्युको प्राप्त भये हैं, तौ वर्त्तमानविषे क्या धैर्य करना है, कहां वह धन अरु राज्य कहां उस ब्रह्माका जगत् कई पुरुषनकी पंक्ति बीत गई हैं; हमको तिनविषे क्या विश्वास है, देवताके नायक अनेक इंद्र नष्ट हो गये हैं, जैसे जलविषे बुद्बुदे उपजिकारि नष्ट हो जाते हैं, तौ मैं क्यों इस संसारविषे आस्था बांधकरि जीवौं? संतजन मुझको हँसैंगे; कई ब्रह्मा हो गए हैं, कई पर्वत हो गए हैं, कई धूलिकी कणिकावत् राजा हो गए हैं, तौ मुझको इस जीवनेविषे क्या धैर्य है, संसाररूपी रात्रि है, तिसविषे देहरूपी शून्यदृष्टि स्वप्न है, तिस भ्रमरूपविषे जो आस्था बांधी है ताते मुझको धिक्कार है, यह सो अरु मैं, इत्यादिक भ्रम आत्माविषे मिथ्या कल्पना उठी है, अज्ञानियोंकी नाईं मैं स्थित भया हौं; अहंकाररूपी पिशाचकारिक क्षणक्षणविषे आर्युबल व्यतीत होता है, देखते हुए भी नहीं दीखता, कालकी सूक्ष्म गति है, कैसा काल है, जो सबको चरणके नीचे धरे है, सदाशिव अरु विष्णुको जिसने खेलनेका गेंद किया है, ऐसा काल जो सबको भोजन करि जाता है, सो मुझको जीनेविषे क्या आस्था बंधनी है, जेते कछु पदार्थ हैं, सो निरंतर नाश होते हैं, कोइ दिन कोई ते पक्ष वर्षकारि नाश

हो जाते हैं अरु जो अविनाशी वस्तु है, सो अवलग नहीं देखी, वर्ष व्यतीत हो गये हैं; जीवोंकी जो चित्तरूपी नदी है, तिसविषे भोगोंके तृष्णारूपी तरंग उछलते हैं, शांत कदाचित् नहीं होते, जैसे वायुकरि नदीविषे तरंग उछलते हैं; सो ममताते रहित हो जाते हैं तैसे जिनको चित्तविषे भोगोंकी अभिलाषा है, तिनको अतुच्छ पद दृष्टि नहीं आते, कष्टते कष्टको प्राप्त होते हैं, दुःखते दुःखांतरको प्राप्त होते हैं, अवलग हैं विरक्तताको प्राप्त नहीं भया; ताते मुझको धिक्कार है, अरु नीच है अंतःकरण जिसका ताते जिस जिस वस्तु विषे कल्याणरूप जानिकै आस्था बांधी है, सो सो नष्ट होती दीखती है, यह क्या उत्तमता है कि, जिसविषे मैं अस्था बांधी है, सो यह शरीर कैसा है, अस्थिमांसकरि बना है, आदि अंतसंयुक्त इसका आकार है, मध्यविषे कछुक रमणीय भासता है, परंतु सब अपवित्र पदार्थोंकरि रचा है, विनाशरूप है, स्पर्श करनेको भी योग्य नहीं, तिसकेसाथ मुझको क्या प्रयोजन है, जिस जिस पदार्थकेसाथ लोक आस्था बांधते हैं, तिसातिसविषे मैं दुःखही देखता हौं, अरु यह जीव ऐसे जडमूढ हैं कि, सदा इसविषे लगे रहते हैं, कल्ह यह पदार्थ मुझको प्राप्त होवैगा; अगले दिन यह प्राप्त होवैगा; दिन दिन पाप करते हैं, दिनदिनविषे खेदको पाते हैं, तौ भी त्याग नहीं करते, ऐसे मूढ हैं, बालक अवस्थाविषे पूर्ण मूढताकरि विचरते हैं, यौवन अवस्था कामादि विकारकरि मिश्रित है, शेष जो वृद्धावस्था है, तिसविषे चित्तकरि दुःखी होता है, यह जड मूर्ख परमार्थ कार्यको किस कालविषे साधैगा; यह जगत् ये पदार्थ सब आगमापायी विरस हैं, विषम दिशाकरि दूषित हैं अर्थ यह कि,एक भावमें नहीं रहते,सर्वजगत असाररूप है, सत्य बुद्धिते रहित असत्यरूप है, सार पदार्थ इसविषे कोई नहीं, राजसूय अरु अश्वमेध आदि जो यज्ञ करते हैं,तव महाकल्पके किसी अंश कालमें स्वर्गको पाते हैं,अधिक तौ नहीं भोगते, जो अश्वमेध यज्ञ करता है, सो इंद्र होता है, जो एक दिन ब्रह्माका होता है,तिसविषे चतुर्दश इंद्र राज्य भोगिकरि नष्ट हो जाते हैं, जव सहस्र चौकडी युगोंकी व्यतीत होती हैं, तव ब्रह्माका एक दिन होता है, ऐसे तीस दिनोंका एक मास, द्वादश मासका एक वर्ष, ऐसे सौ वर्ष ब्रह्माकी आयुर्वल है, तिस आयुर्वलको भोगिकरि ब्रह्मा अंतर्द्धान हो जाताहै, तिसका नाम महाप्रलय है, तिस

महाप्रलयके अंतविषे इसने स्वर्गभोग किया, तौ असार सुखकी क्या आस्था योग्य है, ऐसा सुख ऊर्ध्व स्वर्गमें कोई नहीं, न पृथ्वी विषे है, न पातालविषे है, जो सुख आपदा दुःखके संग मिश्रित न होवै, ऐसा कहां है ? सर्व लोक आपदासंयुक्त हैं, अरु सब दुःखोंका मूल चित्त है, सो शरीररूपी खुराविषे सर्पवत् रहता है, आधिव्याधि बड़े दुःखरूपी विषको देता है, यह किसी प्रकार निवृत्त होवै, तब सुखी होवै, इसकरि जीव नीच प्राकृत हो रहे हैं, कोऊ विरला साधु है, जिसके हृदयविषे चित्तरूपी सर्प भोगोंकी तृष्णारूप विषसंयुक्त नहीं होता, सो तौ दुर्लभ है, ये जगत्के पदार्थ कैसे हैं कि, जो सत्यता है, तिसके मस्तकपर असत्यता है, जो रमणीय भासताहै, तिसके मस्तकपर अरमणीयता स्थित है, जो सुखरूप है, तिसके मस्तकपर दुःख स्थित है, किसी एकको मैं आश्रय करौं, तौ दुःख साथ है, मिश्रित दुःख तो दुःखसाथ मिश्रित क्या कहिये, आपही दुःख हैं, जो सुख संपदा है, सो दुःख आपदासंघ मिश्रित है, बहुरि मैं किसका आश्रय करौं ? यह जीव जन्मते हैं, अरु मरते हैं, तिनाविषे कोई विरला दुःखते रहित है, जो सुंदर स्त्रियां हैं, नील कमल वत् जिनके नेत्र हैं, परम हास्य विलास आदिक भूषणोंकरिकै संयुक्त हैं, तिनको देखिके मुझको हँसी आती है कि, यह तौ अस्थिमांसकी पुतली हैं, क्षणमात्र इनकी स्थिति है, जिन पुरुषोंके निमेष खोलनेकरि जगत् होता है, अरु उन्मेष मूँदनेकरि जगतका अभाव हो जाता है, निमेष अरु उन्मेष जिनकरि जगत् उत्पन्न प्रलय होताहै, इसप्रकार जिनको भासताहै, ऐसे भी नष्ट हुए हैं, तौ हमसारिखेकी क्या गिनती है ? जो पदार्थ बड़े रमणीय भासते हैं, सो अस्थितरूप औ अरमणीय हो जाते हैं, नाश हो जाते हैं, तिन पदार्थोंकी चिंता करनी अरु इच्छा करनी क्या है, नानाप्रकारकी संपदा प्राप्त होतीहै, यह जगत् क्या है, अरु उनविषे जब चित्तको कोऊ आय लगता है, तब सर्व संपदा आपदारूप हो जाती है, अरु जो बड़ी आपदा आय प्राप्त होती है, अरु इनके चित्तविषे क्षोभ नहीं होता, शांतरूप है, तब वह आपदा संपदारूप है, तौ सिद्ध क्या भया ? यही सिद्ध भया कि, सर्व मनके फुरनेमात्र है, मनकी वृत्ति क्षणभंगुररूप अकस्मात् जगत्की इनकी स्थित भई है, अज्ञानकरिकै अहं सो इदं कल्पना करी है, तिसविषे त्याग अरु ग्रहणकी भावना

मिथ्या है, अरु क्षीणरूप जो संसार है तिसमें सुख है, सो आदिअंतसंयुक्त है, तिसविषे सुख तौ कछु नहीं, अरु जो सुख जानकर इसकी ओर धावता है, सो सुख बहुरि नष्ट हो जाता है जैसे पतंग दीपकशिखाको सुखरूप जानिकारि इसकी ओर धावता है, तो दग्ध हो जाता है, तैसे संसारके सुख ग्रहण करनेहारे तृष्णाकारि दग्ध हुए हैं.जैसे नरकका अग्नि दग्ध करता है, सो भी श्रेष्ठ है,परंतु क्षणभंगुर जो संसारके सुख हैं, सो नीच हैं, नष्ट हुए भी दुःख दे जाते हैं, दुःखकी सीमा है, अर्थ यह कि, भोगोंकी तृष्णाते अधिक दुःख अपर कोई नहीं; जो इस संसारसमुद्रविषे गिरते हैं, सो सुखको नहीं पाते, संसारविषे दुःख स्वाभाविक है; अरु सुख दुःखकेसाथ मिश्रित है, मैं भी अज्ञानीकी नाईं काष्ठलोष्ठकी नाईं स्थित हो रहा हौं, बड़ा खेद है, अज्ञानीवत् शमादिक सुखको त्यागिकारि क्षणभंगुर संसारके सुखके निमित्त यत्न करता हौं,जैसे बर्फते अग्नि नहीं उपजता, तैसे संसारते सुख नहीं उपजता, जेते कछु जीव हैं, सो जडधर्मात्मक हैं, संसाररूपी एक वृक्ष है, सहस्र तिसके अंकुर शाखा पत्र फल फूल हैं, तिनकारि पूर्ण है, तिस संसाररूपी वृक्षका मूल मन है, तिसके संकल्परूपी जलकारि विस्तारको प्राप्त भया है, संकल्पके उपशम हुएते नष्ट हो जाता है, ताते जिसप्रकार यह नष्ट होवै, सोई उपाय करौंगा, संसारकेविषे भोग देखनेमात्र सुंदर भासता है, अंतरते दुःखरूप है, अरु मन जो है, सो मर्कटवत् चंचलरूप है; तिसकारि यह रचना रची है, जबलग वस्तुते इसको जाना नहीं, तबलग चंचलहै, जब विचार कारि जानता है, तब पदार्थोंकी रमणीयतासहित मनका अभाव हो जाताहै, ताते मैं नाशरूप पदार्थोंविषे नहीं रमता । संसारकी वृत्ति कैसी है, अनेक फांसियोंसों मिश्रित है, तिसविषे गिरते हैं, बहुरि उछलते हैं, शांत कदाचित् नहीं होते, ऐसी संसारकी वृत्तिको मैं चिरकालपर्यंत भोगीहैं, अब मैं भोगते रहित होइकारि ब्रह्मही होता हौं, इस संसारविषे वारंवार जन्म मरण होता है, शोकही प्राप्त होता है, अब संसारकी वृत्तिते रहितहुआ शोकते रहित होता हौं, अब मैं प्रबुद्ध भया हौं, अरु हर्षवान् भया हौं, मैं अपने चोर आपही देखे हैं, मन है नाम जिसका, इसीको मारौंगा, इस मनने मुझको चिरपर्यंत मारा है, अरु एते कालपर्यंत मेरा मनरूपी जो मोती था, सो

अवेध रहा था, अब मैंने इसको वेधा है, अर्थ यह कि, आत्मविचारते रहित था, अब तिसको आत्मविचारविषे जोडा है, आत्मज्ञानके योग्य है, मनरूपी एक बर्फका कण था, सो जडताको प्राप्त भया था, अब विवेकरूपी सूर्यकरि गलि गया है, अब मैं अक्षय शांतिको प्राप्त भया हौं, अनेक प्रकारके वचनोंकरि साधुरूप जो सिद्ध थे तिनने मुझको जगाया है, मैं आत्मपदको प्राप्त भया हौं, परमानंदकरिकै अब मैं चिंतामणि आत्मरूपीको पायकरि एकांत सुखी होऊंगा, अरु स्थित होऊंगा जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे होऊंगा, मनरूपी जो शत्रु है, तिसने मुझको भ्रम दिखाया था, सो अब विवेककरि नाश किया है, उपशमको प्राप्त भया हौं ॥ हे विवेक ! तुझको नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जनकविचारो नाम नवमः सर्गः ॥ ९ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतवता था, तब दासी राजाके निकट आई, जैसे सूर्यके आगे अरुण आय स्थित होता है, तैसे प्रतीहारी जो दासी है, सो कहत भई ॥ हे देव ! अब उठौ, ठाढे होहु, दिनका जो उचित विचार है स्नान आदिक सो करौ, स्नानशालाविषे पुष्प अरु केसर गंगाजल आदिकी गागर लेकरि स्त्रियां ठाढ़ी हो रही हैं, कमल पुष्प पड़े हैं, तिनपर भँवरे फिरते हैं, छत्र चमर पड़े हैं, स्नानका समय है ॥ हे देव ! पूजनके निमित्त सर्व सामग्री आई है, रत्न औषधि ले आए हैं, हाथोंविषे पवित्री डारकरि ब्राह्मण बैठे हैं, स्नान करिकै अघमर्षण जाप कर रहे हैं, तुम्हारे आगमनकी ओर देखते हैं, हाथोंविषे चमर लेकरि सुंदर कांता तुम्हारे सेवनेनिमित्त खड़ी हैं, अरु भोजनशालाविषे भोजन सिद्ध होरहा है, ताते शीघ्र उठौ, जो कार्य है सो करौ, जैसा काल होता है, तिसके अनुसार कर्म बड़े पुरुष करते हैं, इनका त्याग नहीं करते, ताते उठौ, कालको व्यतीत न करौ ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार दासीने कहा, तब राजा चिंतवत भया कि, संसारकी विचित्र जो स्थिति है, सो कितनेक मात्र है, राज्यसुखसे मुझको कछु प्रयोजन नहीं, यह क्षणभंगुर है, इस मिथ्या आडंबर संपूर्णको त्यागिकै मैं एकांत जाय बैठता हौं, जैसे समुद्र तरंगोंते रहित शांतरूप होता है, तैसे शांतरूप होऊंगा, यह जो नानाप्रकारके राजभोग हैं, अरु क्रिया कर्म हैं, तिनते अब मैं तृप्त भया हौं, सर्व कर्मोंको

त्यागिकरि केवल सुखविषे स्थित जो होऊंगा, मेरा चित्त जो भोगोंकरि चंचल था, सो भोग तौ भ्रमरूपहैं, इनविषे शांति नहीं होती, तृष्णा बढ़ती जाती है, जैसे जलके ऊपर सेवाल बढती जाती है, अरु जलको आच्छादि लेती है, तैसे तृष्णा आच्छादि लेती है, अब मैं इसको त्याग करता हौं ॥ हे चित्त! तू जिस जिस दिशाविषे गिरा है, अरु जो जो भोग भोगे हैं, सो सब मिथ्या हैं, तृप्ति तौ किसीविषे न भई, ताते भ्रमरूप भोगोंते उपरत होऊंगा, तब परम सुखी होऊंगा, बहुत उचित अनुचित भोग वारंवार भोगे हैं, परंतु तृप्ति किसीकरिकै न भई, ताते हे चित्त! इनको त्यागिकरि परमपदके आश्रय होहु, जैसे बालक एकको त्यागिकरि दूसरेको अंगीकार करता है, तैसे यत्नविना तू भी कर, जब इन तुच्छ भोगोंको त्यागैगा, अरु परमपदको आश्रय करैगा, तब आनंदी तृप्तिको प्राप्त होवैगा, तिसको पायकरि बहुरि संसारी न होवैगा ॥ हे रामजी! इसप्रकार चिंतन कर जनक तूष्णीं होरहा, मनकी चपलताको त्यागिकरि सोम आकारकरि स्थित भया, जैसे मूर्ति लिखी होती है, तैसे हो गया, अरु प्रतीहारी भी भयमान हो करि बहुरि कछु न कह सकी कि, कदाचित् राजा अप्रसन्न होवै, तिसके अनंतर मनकी समतानिमित्त बहुरि राजा चिंतवत भया कि, मुझको ग्रहण अरु त्याग करने योग्य यत्नकरिकै कछु नहीं, किसको मैं साधौं, किस वस्तुविषे मैं धैर्य धारौं, सर्व पदार्थ नाशरूप हैं, मुझको करनेसाथ क्या प्रयोजन है, अरु अकरनेकरि क्या हानि है, ग्रहण त्याग किसका करौं, जो कछु कर्तव्य है, सो शरीर करता है, निर्मल अचलरूप चेतन है, सो न करता है, न भुगतता है ताते मुझको कर्तव्य कछु नहीं। जो त्याग करौंगा, तौ शरीर करणेते रहित होवैगा, अरु जो करौंगा, तौ भी शरीर करेगा, मुझको क्या प्रयोजन है, ताते करने अकरनेविषे मुझको लाभ हानि कछु नहीं, ताते जो कछु प्राप्त भया है प्रवाह, तिसविषे विचरता हौं, अप्राप्तकी मैं वांछा नहीं करता, अरु प्राप्तका मैं त्याग नहीं करता, अपने स्वरूपविषे स्थित होइकरि स्वस्थ होऊंगा, जो कछु प्राप्तकर्म हैं, सोई करता हौं, न कछु मुझको करनेविषे अर्थ है, न अकरनेविषे दोष है, जो क्रिया होवै सो होवै, करौं अथवा न करौं, युक्त होवै, अथवा अयुक्त

कर्मका करना शरीर प्रकृ होवै, मुझको ग्रहण त्याग करनेयोग्य कछु नहीं, ताते जो कछु प्राप्त करने योग्य कर्म है, सोई करौं, तिकरि होता है, आत्माको तौ कर्तव्य कछु नहीं, ताते मैं इनाविषे निःसंग हो रहौंगा, जो निस्पंद चेष्टा होवै, तौ क्या सिद्ध भया, अरु क्या किया; जो मन कामनाते रहित स्थित विगतज्वर भया, अर्थ यह कि, हृदयाविषे राग दोष मलिनता न उपजी तौ देहकरि कर्म होवै, तौ भी इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्तिविषे तुलना रहैगी, जो देहसाथ मिलिकरि मन कर्म करता है, तब कर्ता भोक्ता है, इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे रागदोषवान् होता है, जब मनका मनन उपशम हुआ, तब कर्तव्यविषें भी अकर्तव्य है, जैसा निश्चय अंतर दृढ होता है, सोई रूप पुरुषका होता है, जिसके हृदयविषे अहंकृति नहीं, अरु बाह्य कर्म चेष्टा करता है, तौ भी उसने किया कछु नहीं अरु जिसके हृदयाविषे अहंकृति अभिमान है, सो बाह्य अकर्ता भासता है, तौ भी अनेक कर्म करता है, ताते जैसा निश्चय अंतरमें दृढ होता है, तैसा ही फल पुरुषको प्राप्त होता है। जो बाह्य कर्त्ता भी है, परंतु अंतर कर्तव्यका अभिमान नहीं, तौ वह धैर्यवान् पुरुष अनामयपदको प्राप्त होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जनकनिश्चयवर्णनं नाम दशमः सर्गः ॥ १० ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार चिंतवना करिकै यथाप्राप्त जो क्रिया हैं तिनके करनेको उठि खड़ा हुआ, जो इष्ट अनिष्टकी वासना है, सो चित्तते त्यागत भया, अरु यथाप्राप्तविषे करता हुआ, जाग्रतविषे सुषुप्तिकी नाईं जैसे सुषुप्ति पुरुषरूप होता है, तैसे वह जाग्रतविषे हो रहा, अरु दिनको तिनके आचारको करत भया, यथाशास्त्र क्रियाविषे दिनको विचरै, अरु रात्रिको लीलाकरिकै ध्यानविषे स्थित होवै, मनको समरस करत भया, जब रात्रि क्षीण भई, तब इसप्रकार चित्तको बोध करत भया ॥ हे चंचलरूप चित्त! परमानंदस्वरूप जो आत्मा है सो तुझको सुखदायक नहीं भासता। जो यह मिथ्या संसारसुखकी इच्छा करता है। जब तेरी इच्छा शांत हो जावैगी तब तू सारसुख आत्मपदको प्राप्त होवैगा, ज्यों ज्यों तू संकल्प लीलाकरि उठावता है, त्यों त्यों संसार जाल विस्तार हो जाती है, इस दुःखरूप संसारसे तुझको क्या प्रयोजन है ॥ हे मूर्ख चित्त ! ज्यों ज्यों

संकल्प इच्छा करता है, त्यों त्यों संसारका दुःख बढ़ता जाता है, जैसे जल सींचनेकरि वृक्षकी शाखा बढती हैं, तैसे संसारसुखते अधिक दुःख प्राप्त होता है, ऐसे दुःखरूप भोगोंकी इच्छा क्यों करता है? यह संसार चित्तजालते उपजा है, जब तू इसका त्याग करैगा तब दुःख मिटि जावैगा, फुरणेका नाम दुःख है इसके मिटेते दुःख भी कोई न रहैगा, यह संसार महाचंचल है, देखने मात्र सुंदर है, वास्तवते कछु नहीं जो कछु तुझको इसते सार प्राप्त होवै तब इसका आश्रय कर सो तौ यह क्षणभंगुर है, अरु दुःखकी खान है, ताते इसकी आस्था त्याग अरु आत्मतत्वको आश्रय कर शुद्ध निर्मल होइकारि जगत्विषे विचरहु, तब तुझको दुःख स्पर्श न करैगा, जगत् स्थित होवै अथवा शांत हो जावै; इसके उदय अस्तकी वासनाकारि इसके गुण अवगुणविषे आसक्त मत होहु, जो अविद्यावान असत्यरूप होवै तिसकी आस्थाक्या करणी है, यह असत्यरूप है, अरु तू सत्यरूप है, असत्य अरु सत्यका संबध कैसे होवै, मृतक अरु जीतेका कभी संबंध हुआ है? जो तू कहै चेतनतत्व दृश्यरूप है, तौ दोनो सत्यस्वरूप हैं, तौ सदा विस्तृतरूप आत्माही हुआ, हर्ष विषाद किसका करता है, ताते तू मूढ मत होहु समुद्रकी नाईं अक्षोभरूप अपने आपविषे स्थित होहु, संसारकी भावना त्यागि करि मान मोहमलको त्याग करहु, संसारकी इच्छा दुःखका कारण है, इसको त्यागिकारि आत्मतत्वविषे स्थित होवै, तब पारिपूर्ण पदको प्राप्त होवैगा; ताते बलकरि तिसको आश्रय कारिकै चंचलताको त्याग ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तानुशासनं नाम एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार विचार कारिकै राजा सब कार्यको करता भया, आनंदवृत्तिविषे मन उसका प्रबोधवान् मोहको न प्राप्त भया, इष्टविषे हर्षवान् न होवै, अनिष्टविषे दोषवान् न होवै, केवल सम स्वच्छ अपने स्वरूपविषे स्थित भया, जगत्विषे विचरै, न कछु त्याग करै, न कछु ग्रहण करै, न कछु अंगीकार करै, केवल वीतशोक होईकरि संतापते रहित वर्त्तमानविषे कार्य करै, बहुरि उसके हृदयाविषे कल्पना कोई स्पर्श न करै, जैसे आकाशको धूलिकी मलिनता स्पर्श नहीं करती, तैसे मलिनताते रहित अपने स्वरूपके अनुसंधानते सम्यक् ज्ञान अनंतप्रकाशविषे मन निश्चयताको

प्राप्त किया, मनकी जो कोई संकल्पवृत्ति थी, सो नष्ट हो गई, महाप्रकाशरूप चेतन आत्मा अनामय हृदयविषे प्रकाशित भया, जैसे आकाशविषे सूर्य प्रकाशता है, तैसे अनंत आत्मा प्रगट भया, संपूर्ण पदार्थ तिसविषे प्रतिबिंबित देखता है, जैसे शुद्ध मणि विषे प्रतिबिंब भासता है, तैसे सर्व पदार्थ अपने स्वरूपविषे आत्मभूत देखता भया, इंद्रियोंके इष्ट अनिष्ट विषयोंकी प्राप्तिविषे हर्ष खेद मिटि गया, सर्वदा समान होइकरि प्रकृत व्यवहारको करि जीवन्मुक्त होइकरि इसप्रकार राजा जनक विचरत भया ॥ हे रामजी! जनकको ज्ञानकी दृढ़ता भई, तिस करिकै लोकोंके परावरको जानिकरि विदेहनगरका राज्य करता भया, जीवोंकी पालनाविषे राजा जनक हर्षविषादको प्राप्त न भया, संतापते रहित हुआ राज्यका कोई अर्थ उदय होवै, अथवा अस्त हो जावै परंतु हर्षशोकको कदाचित् प्राप्त न होवै, कार्य करता दृष्ट आवै, परंतु हृदयकरि कछु न करै ॥ हे रामजी ! तैसे तुम भी कार्य सब करौ, परंतु निरंतर आत्मस्वरूप विषे स्थित रहौ, तुम जीवन्मुक्त वपु हौ, राजा जनककी सब पदार्थभावना अस्त हो गई है, सुषुप्तिवत् वृत्ति भई है भविष्यत्की इच्छा नहीं करता व्यतीतको चिंतवता नहीं, जो वर्तमान कार्य प्राप्त होवै तिसको यथाशास्त्र करता है, अपने विचारके वशते कछु पावने योग्य पद था सो पाया और इच्छा कछु नहीं ॥ हे रामजी ! जबलग यह आत्मपदको प्राप्त नहीं होता तबलग इसके हृदयविषे अपना पुरुषार्थरूपी विचार नहीं उपजा, जब अपने आपकरि अपना विचाररूप पुरुषार्थ जागै तब सब दुःख मिटि जावै अरु परम संपदाको प्राप्त होवै, ऐसा पद शास्त्र अर्थ अरु पुण्यक्रिया करि नहीं प्राप्त होता, जैसा पद अपने हृदयविषे विचार कियेते प्राप्त होता है, सो पद निर्मल अरु स्वच्छ है, हृदयकी तपतको निवृत्त करता है, बुद्धिके विचाररूपी प्रकाशकरि हृदयका अज्ञान नष्ट हो जाता है और किसी उपायकरि नष्ट नहीं होता, जो बडा आपदारूप दुःख तरनेको कठिन है, सो अपनी बुद्धिकरि तरना सुगम होता है, जैसे जहाजकरि समुद्रको लंघ जाता है, अरु जो बुद्धिते रहित मूर्ख हैं, तिनको थोडी आपदा भी बडे दुःखको देती है, जैसे थोडा पवन भी तृणको बहुत भ्रमावता है,अरु जो बुद्धिवान् हैं, तिनको बडी आपदा भी दुःख नहीं देती, जैसे बडा वायु भी पर्वतको चलाय नहीं

सकता इसी कारणते प्रथम चाहिये कि, यह पुरुष संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका विचार करै अरु बुद्धिको वढावै, जब बुद्धि सत्य मार्गकी ओर बढैगी, तब परम बोध इसको प्राप्त होवैगा, जैसे जलके सींचने अरु रखनेकरि फूलसों फल प्राप्त होता है, तैसे जब बुद्धि सत्य मार्गकी ओर धावती है, तब इसको परमानंद प्राप्त होता है, जैसे शुक्लपक्षका चंद्रमा पूर्णमासीकरि प्रकाशको बहुत प्राप्त होता है, जेते कछु जीव संसारके निमित्त यत्न करते हैं, वही यत्न सत्यमार्गकी ओर करैं, तौ दुःखते मुक्त होवैं, अरु परमसंपदाके भंडारको पावैं, संसाररूपी वृक्ष है, तिसका बीज बुद्धिकी मूढता है, तातें मूढताते रहित होना बडा लाभ है, स्वर्ग पातालका राज्य आदिक जो कछु पदार्थोंकी प्राप्ति होती है, सो अनपे बोधरूपी भंडारते प्राप्ति होती है; संसाररूपी समुद्र है, तिसके तरनेका अपनी बुद्धिरूपी जहाज है, और तप तीर्थ आदिक शुभ आचार करिकै जहाज बह जाता है, बोधरूप पुष्पलता है, तिसको बढानेको दैवी संपदा जल है, तिसीके बढनेकरि सुंदर फल प्राप्त होता है, जो बोधते रहित बल ऐश्वर्यकरि बढा भी है, तिसको तुच्छविषे नाश करी डारता है, जैसे बलते रहित सिंहको गीदड हरण भी जीति लेते हैं, तातें जो कछु प्राप्त होता दृष्ट आता है सो अपने प्रयत्नकरि आता है, अपनीबोधरूपी चिंतामणि हृदयविषे स्थित है, तिसते विवेकरूपी फल पाता है, जैसे कल्प कल्पलताते जो चिंतवना करिये सोई पाते हैं, तैसे सर्व फल बोधते पाता है, जैसे जाननेवाला महासमुद्रते पार करता है, अजान नहीं उतर सकता; तैसे सम्यक्बोध संसार समुद्रते पार करता है असम्यक् बोध जडताविषे डारता है। जो अल्प भी बुद्धि सत्य मार्गकी ओर होतीहै तब वह बडेसंकटको दूर करती है, जैसे छोटी बेडी भी नदीते उतारि देती है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष बोधवान् है, तिसको संसारके दुःख वेधि नहीं सकते, जैसे लोह आदिक कवच पहिरा होवै, तिसको बाण वेधि नहीं सकते, बुद्धिकरिकै यह पुरुष सर्वात्मपदको प्राप्त होता है, जिस पदके पानेते हर्ष, विषाद, संपदा, आपदा कोई नहीं रहती, अहंकाररूपी मेघ है, सो आत्मारूपी सूर्यके आगे आया है, माया मलिनता जडरूप है, तिसकरि आत्मरूप सूर्य नहीं भासता, बोधरूपी वायुसो जब यह दूर होवै, तब ज्योंका त्यों भासता है, जैसे

कृषिकार प्रथम हल आदिककारि पृथ्वीको शुद्ध करता है पाछे बीज बोता है, तब जलसींचता है, अरु नाश करनहारे पदार्थतें रक्षा करता है, तब फलको पाता है, जैसे जब आर्जवादि गुणों कारि बुद्धि निर्मल होती है, बहुरि शास्त्रका उपदेशरूपी बीज मिलता है, अरु अभ्यास वैराग्यकरिकै करता है, तिसकारि परमपदकी प्राप्ति होती है, सो अतुल पद है तिसके समान और कोई नहीं ॥इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्राज्ञमहिमावर्णनं नाम द्वादशः सर्गः॥ १२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जनककी नाईं अपने आपकारि आपको विचार कर, पाछे जो विदितवेद पुरुषोंमें किया है, तिसी प्रकार तुम भी निर्विघ्न होहु, जो बुद्धिवान् पुरुष हैं, जिनका यह अंतका जन्म है, सो राजस सात्त्विकी पुरुष आपही परमपदको प्राप्त होते हैं जबलग अपने आपकारि आत्मदेव प्रसन्न नहीं होवैगा, तबलग इंद्रियांरूपी शत्रुको जीतनेका यत्न करौ, जब आत्मदेव प्रसन्न होवैगा,सर्वगत जो परमात्मा ईश्वरोंका ईश्वर है सो आपही स्वयंप्रकाश दीखता है, अरु सर्व दोषदृष्टि क्षीण हो जाती है, मोहरूपी बीजकी जो मुष्टि भरि भरि बोता था, सो नानाप्रकारकी आपदारूप वर्षाकारि महामोहकी बेली होती हैं, अरु दृष्ट आती हैं, सो सब नष्ट हो जाती हैं जब परमात्माका साक्षात्कार होता है, तब भ्रांति दृष्टि नहीं आती ॥ हे रामजी ! तुम सदा बोधकारि आत्मपदविषे स्थित होहु अरु जनकवत् कार्योंका आरंभ करौ, ब्रह्म लक्षवान् होइकारि जगत्विषे विचरौ तब तुमको खेद कछु न होवैगा, जब नित्य आत्मविचार होता है, तब परमदेव आपही प्रसन्न होता है, तिसके साक्षात्कार हुएते चंचलरूप संसारी जनको देखिकारि जनककी नाईं हँसैगा ॥ हे रामजी ! संसारके भयकारि जो जीव भयभीत हुए हैं, तिसते रक्षा करनेको अपनाही पुरुषप्रयत्न है, और देवकारिकै अथवा कर्मकरिकै धन बांधवकारिकै रक्षा नहीं होती,जो पुरुष देवको निश्चय करिके रहे हैं, अरु शास्त्रविरुद्ध आप कर्म करते हैं, संकल्पविकल्पविषे तत्पर होते हैं, सो मध्यबुद्धिहैं, तिसके मार्गकी ओर तुम नहीं गमन करना, उसकी और बुद्धि नाश होतीहै, तुम परम विवेकको आश्रय करौ, अरु अपने आपको [illegible]पकारि देखौ, वैराग्यवान् शुद्धबुद्धिकारिकै संसारसमुद्रको तरि जाता है,यह मैंने तुझ को जनकका

वृत्तांत कहा है, जैसे आकाशते फल गिर पडै तैसे उसको सिद्धोंके विचारकरि ज्ञानकी प्राप्ति भई, यह विचार ज्ञानरूपी वृक्षकी मंजरी है, जैसे अपने विचार करिकै राजा जनकको आत्मबोध हुआहै, तैसे तुमको भी प्राप्त होवैगा, जैसे सूर्यमुखी कमल सूर्यको देखिकरि प्रसन्न होता है, तैसे इस विचारकरि हृदय प्रफुल्लित हो आवैगा, मनका जो मननभाव है, सो शांत हो जावैगा,जैसे बर्फका कणका सूर्यकरि तप्त हो गलि जाता है, अब अहं त्वं आदिक रात्रि विचाररूपी सूर्यकरिकै क्षीण हो जावैगी, तब परमात्माका प्रकाश साक्षात होवैगा, अरु भेदकल्पना नष्ट हो जावैगी, अनंत ब्रह्मांडविषे जो व्यापक आत्मतत्त्व है, सो प्रकाशि आवैगा, जैसे अपने विचारकरि जनकने अहंकार वासनाका त्याग किया है, तैसे तुम भी विचार करिकै अहंकार वासनाका त्याग करौ, अहंकाररूपी मेघ जब नष्ट होवैगा, अरु चित्ताकाश निर्मल होवैगा, तब आत्मरूपी सूर्य प्रकाशैगा, जबलग अहंकाररूपी मेघ आवरण है, तबलग आत्मरूपी सूर्य नहीं भासता; विचाररूपी वायुकरि जब अहंकाररूपी मेघ नाश हो जावै, तब प्रगट भासैगा ॥ हे रामजी ! ऐसे धार जो न मैं हौं, न कोऊ और है, न नास्तिहै, न अस्ति है, जब ऐसी भावना दृढ होवैगी, तब मन शांत हो जावैगा; हेयोपादेयबुद्धि जो इष्ट पदार्थों विषे होती है, तिसाविषे न डूबैगा; इष्ट अनिष्टके ग्रहणत्यागविषे भावना होती है, यह मनका रूप है, अरु यही बंधनका कारण है, इसते इतर बंधन कोऊ नहीं, ताते तुम इंद्रियोंके इष्टअनिष्टविषे हेयोपादेयबुद्धि मत करौ, दोनोंके त्यागेते जो शेष रहै, तिसविषे स्थित होहु; इष्ट अनिष्टकी भावना तिसकी जाती है, जिसको हेयोपादेयबुद्धि नहीं होती; जबलग हेयोपादेयबुद्धि क्षीण नहीं होती तबलग समताभाव नहीं उपजता; जैसे मेघके नष्ट हुएविना चंद्रमाकी चांदनी नहीं भासती, तैसे जबलग पदार्थोंविषे इष्टअनिष्टबुद्धि है, औ मन लोलुप होता है, तबलग समता उदय नहीं होती; जबलग युक्त अयुक्त लाभ अलाभ इच्छा नहीं मिटती, तबलग शुद्ध समता अरु निरसता नहीं उपजती; एक जो ब्रह्मतत्त्व निरामयरूप नानात्वते रहितहै; तिसविषे युक्त क्या अरु अयुक्त क्या ? जबलग इच्छा अनिच्छा वांछित अवांछित यह दोनों बात स्थित हैं, अर्थ यह जो फुरते हैं, क्षोभ करते हैं, तबलग सौम्यता अचलभाव नहीं

होता, अरु जो हेयोपादेयबुद्धिते रहित ज्ञानवान् है, तिस पुरुषको यह शक्ति आय प्राप्त होती है, जैसे राजाके अंतःपुरविषे पटरानी स्थित होती है, तैसे सो कौन शक्ति है, एक तौ भोगोंविषे निरसता, देहाभिमानते रहित निर्भयता, नित्यता, समता, सब पूर्ण आत्मदृष्टि, ज्ञाननिष्ठा,सब इच्छाते रहित अरु निरहंकारता, आपको सदा अकर्ता जानना, इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे समचित्तता,निर्विकल्पता, सदा आनंदस्वरूप रहना, धैर्यसों सदा एकरस रहना, स्वरूपते इतर वृत्ति न फुरै, अरु सर्व जीवोंसे मैत्रीभाव,अरु सत्यबुद्धि निश्चयात्मकरूपकरि तुष्टता, अरु मुदिता अरु मृदु भाषण, इतनी शक्ति हेयोपादेयते रहित आय प्राप्त होती हैं ॥ हे रामजी ! संसारके पदार्थोंकी ओर जो चित्त धावता है, तिसको वैराग्यकरि उलटाय खैंचना, जैसे पुलकरिकै जलके वेगका निवारण होता है, तैसे जगतसों निवारि करि मनको आत्मपद विषे लगावना, तिसकरि आत्मभाव प्रकाशता है; तातै अंतरसों सब वासनाको त्याग करौ; अरु बाह्यते सब क्रियाविषे रहौ, वेगि चलौ श्वास लेहु, सर्वदा सर्व प्रकार चेष्टा करौ, अरु सर्वदा सर्व प्रकारकी वासना त्याग करौ, संसाररूपी समुद्र है, जिसविषे वासनारूपी जल है,अरु चिंतारूपी सूत्र है, तिस जलकरिकै तृष्णावान्रूपी मत्स्य फँसे हैं, यह विचार जो तुमको कहा है, तिस विचाररूपी शिलासे बुद्धिको तीक्ष्ण करौ अरु इस जालको छेदौ तब संसारते मुक्त होहुगे अरु संसाररूपी वृक्ष है तिसका मूल बीज मन है यह वचन जो कहे हैं, तिसको हृदयविषे धरिकरि धैर्यवान् होहु तब आधि व्याधि दुःखोंते मुक्त होवैगा मनकरिकै मनको छेदहु, जो बीती है तिसका स्मरण करौ अरु भविष्यत्की चिंता न करौ काहेते जो असत्यरूप है अरु वर्तमानको भी असत्य जानिकै तिसविषे विचरौ जब मनते संसारका विस्मरण हुआ तब मनविषे बहुरि न फुरैगा, मनविषे असत्यभाव जानिकै चलौ; बैठौ; श्वास लेहु, निःश्वास करौ, उछलौ, सोवहु,ऐसी चेष्टा होवै, परंतु अंतर सब असत्यरूप जानहु, तब खेद न होवैगा; अहंममरूपी जो मलहै, तिसको त्यागिकरि अथवा प्राप्तिविषे विचरौ, राज्य आय प्राप्त होवै, तब तिसविषे विचरौ,परंतु अंतरते इसविषे आस्था न होवै, जैसे आकाशका सब पदार्थोंविषे अन्वयहै, परंतु किसीके साथ स्पर्श नहीं करता, तैसे बाह्य कार्यको करौ, परंतु मनकरि

किसीकेसाथ बंधायमान न होहु-तुम चेतनरूप अजन्मा महेश्वर पुरुषहौ तुमसों भिन्न कछु नहीं, सबविषे व्यापि रहे हौ,जिन पुरुषोंको सदा यही निश्चय रहता है, और अपने स्वरूपविषे तिनको संसारपदार्थ चलायमान नहीं कर सकते;तथा जिनकी संसारविषे आसक्त भावना है; अरु स्वरूपते भूले हैं, तथा तिनको संसारके पदार्थोंते विकार उपजता है, हर्ष अरु शोक भय खैंचते हैं, तिसकारि बांधे हुए हैं, अरु जो ज्ञानवान् पुरुष रागद्वेषते रहित हैं, तिनको लोह हड़का वटा अरु पाषाण स्वर्ण एक समान हैं, संसारवासनाका त्याग किया इसीका नाम मुक्ति है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषकी स्वरूपविषे स्थिति भई है,अरु सुखदुःखविषे समता है, सो जो कछु करता है, भोगता है, देता है, लेता है इत्यादिक क्रिया करता है सो करता हुआ भी कछु नहीं करता, यथाप्राप्त कार्यविषे वर्तता है, अंतःकरणविषे इष्टअनिष्टकी भावना नहीं फुरती, कार्यविषे रागद्वेषवान् होइकारि डूबता नहीं, जिसको सदा यह निश्चय रहता है, जो सर्व चिदाकाशरूप है, अरु भोगोंके मननते रहित है, सो समता भावको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! मन जडरूपहै,आत्मा चेतनरूप है, तिस चेतनकी सत्ताकरि पदार्थोंको ग्रहण करता है, इसकेविषे अपनी सत्यता कछु नहीं, जैसे सिंहकरि मारा जो पशु है,तिसको खानेको बिल्ली भी जाती है, उसको अपना बल कछु नहीं, तैसे चेतनके बलकरि मन दृश्यका आश्रय करता है, मन आप असत्यरूप है, चेतनकी सत्ता पाइकरि जीता है, अरु संसारके चिंतवनको समर्थ होता है, प्रमादकरिकै चितासो तपायमान होता है, यह वार्त्ता प्रसिद्ध है कि, मन जड़ है, अरु चेतनरूपी दीपककरि प्रकाशता है, चेतनसत्ताते रहित सब समान है, आत्मसत्ताते रहित उठनेको भी समर्थ नहीं होता, आत्मसत्ताको भुलाइकरि जो कछु करता है, तिस फुरनेको बुद्धिमान् कलना कहते हैं, जब वही कलना शुद्ध चेतनरूप आपको जानती है, तब आत्मभावको प्राप्त होते हैं, प्रमादते रहित आत्मरूप हैं, चित्तकला जब चैत्य दृश्यते स्फुरण होती है, तिसका नाम तब सनातन ब्रह्म होता है, अरु जब चैत्यके साथ मिलती है, तब तिसका नाम कलना होता है, स्वरूपते इतर कछु नहीं, केवल ब्रह्मतत्त्व स्थित है, तिसविषे भ्रांतिकरिकै मन आदि भासते हैं,जब चेतनसत्ता दृश्यके सन्मुख होती

है, तब वही कलनारूप होती है, अपने स्वरूप विस्मरण कियेते संकल्पकी ओर धावनेते कलना कहाती है, सो आपको परिच्छिन्न जानती है, तिसकारि परिच्छिन्न हो जाती है, हेयोपादेयधर्मिणी होती है ॥ हे रामजी ! चित्तसत्ता अपनेही फुरणेकारि जडताको प्राप्त भई है, जबलग विचारकरिकै जगावै नहीं, तबलग स्वरूपाविषे जागती नहीं, इसी कारणते सत्यत्व शास्त्रोंके विचार अरु वैराग्यकारि इंद्रियोंका निग्रह करि अपनी कलनाको आप जगाओ,सब जीवकी जो कलना है, सो विज्ञान अरु शमकारिके जगावनेते ब्रह्मतत्त्वको प्राप्त होती है, इसते इतर मार्गकारि भ्रमता रहता है, मोहरूपी जो मदिरा है, तिसकारि जो पुरुष उन्मत्त हुआ है, सो विषयरूपी गर्त्तमें गिरता है,अरु आत्मबोधते सोई हुई कलनाको जगाता नहीं, अप्रबोधही रहता है, सो चित्तकलना जड़ रहती है,जो भासती है,तौ भी असत्यरूप है ऐसा पदार्थ जगत्विषे कोई नहीं, जो संकल्पकारि कल्पित न होवै, ताते तू अजडधर्मा होउ कलना जड उपलब्धरूपिणी है, परमार्थसत्ताकारि विकासमान होती है, जैसे सूर्यकारि कमल विकासमान होता है तैसे जैसे पाषाणकी मूर्तिको कहिये तू नृत्य कर तब वह नहीं करती काहेते कि, जडरूप है, तैसे देहविषे जो कलना है,सो चेतन कार्य करनेको समर्थ नहीं होती जैसे मूर्तिका लिखा हुआ राजा गुरगुर शब्दकारि युद्ध करनेको समर्थ नहीं होता, अरु मूर्तिका चंद्रमा औषधीको पुष्ट कर नहीं सकता तैसे कलना जडरूप है, कार्य करनेको समर्थ नहीं होती जैसे निरवयव अंगनासे आलिंगन नहीं होता जैसे संकल्पके रचे आकाशके वनकी छायातले कोऊ नहीं बैठता; मृगतृष्णाके जलसे कोऊ तृप्त नहीं होता तैसे जडरूप मन क्रिया करनेको समर्थ नहीं होता, जैसे सूर्यके धूपकारि मृगतृष्णाकी नदी भासती है तैसे चित्तकलनाके फुरनेकारि जगत् भासता है शरीरविषे जो स्पंदशक्ति भासती है सो प्राणशक्ति है प्राणोंकारि बोलता चलता बैठता है ज्ञानरूप संवित् जो आत्मतत्व है तिसते इतर कछु नहीं, जब संकल्पकला फुरती है तब अहं त्वं इत्यादिक कलनाकारि वहीरूप हो जाता है जब आत्मा अरु प्राणका फुरना इकट्ठा आता है अर्थ यह कि, प्राणोंके साथ चेतनसंवित् मिलता है तब तिसका नाम जीव होता है बुद्धि चित्त मन सब तिसके नाम हैं, सब संज्ञा अज्ञानकारि कल्पित होती हैं,

अज्ञानीको जैसे भासा है तिसको है अरु परमार्थते कछु हुआ नहीं, न मन है, न बुद्धि है, न शरीर है केवल, आत्मा मात्र अपने आपविषे स्थित है, अपर द्वैत कछु हुआ नहीं सब जगत् आत्मरूप है, कालक्रिया सब आत्मरूप है, आकाशते भी निर्मल है, आस्ति नास्ति सर्व वही रूप है, द्वितीय फुरणेते रहित है, इस कारणते है, अरु नहीं, ऐसा स्थित है, अरु सर्व रूपते सत्य है, आत्मा सब पदोंते रहित है, इसकारणते असत्यकी नाईं है, अनुभवरूप है, ताते सत्य है, सर्व कलनाते रहित केवल अनुभवरूप है, ऐसे अनुभवका जहां ज्ञान होता है, तहां मन क्षीण हो जाता है, जैसे जहां सूर्यका प्रकाश होता है, तहां अंधकार क्षीण हो जाता है, अरु जब आत्मासत्ताविषे संवित्कारिकै इच्छा फुरती है, सो संकल्पके सन्मुख हुई थोडी भी बडे विस्तारको पाती है, तब चित्तकलाको आत्मस्वरूप विस्मरण हो जाता है, जन्मोंकी चेष्टाकरि जगत्स्मरण हो आताहै, परमपुरुषको संकल्पकेसाथ तन्मय होनेकरिकै चित्त नाम कहाता है, अरु जब चित्तकला संकल्पते रहित होती है, तब मोक्षरूप होती है, चित्तकला फुरनेका नाम चित्त अरु मन कहते हैं, अरु दूसरी वस्तु कोऊ नहीं, एकतामात्रही चित्तका रूप है, संपूर्ण संसारका बीज मन है, संकल्पके सन्मुख होकरिके चेतनसंवित्का नाम मन होता है, निर्विकल्प जो चित्तसत्ता है, सो जब संकल्पकरिकै मलीन होती है, तब तिसको कलना कहते हैं, वही मन घटादिककी नाईं परिच्छिन्न भेदको प्राप्त होता है, तब क्रियाशक्ति जो प्राण तिसकेसाथ अरु ज्ञानशक्तिकेसाथ मिलती है, तब तिस संयोगका नाम संकल्प विकल्पका कर्ता मन होता है सोई जगतका बीज है, तिसके लीन करनेके दो उपाय हैं. एक तत्त्वका ज्ञान, दूसरा प्राणोंका रोकना. जब प्राणशक्तिको निरोध करता है, तब मन भी लीन हो जाता है, अरु सत्य शास्त्रोंद्वारा ब्रह्मतत्त्वका ज्ञान होता है, तौ भी लीन हो जाता है, प्राण किसका नाम है, अरु मन किसका नाम है, सो श्रवण कर हृदयकोशते निकसता है, अरु बाह्य जाता है, अरु बहुरि बाह्यसों अंतर आता है, सो प्राण है, शरीर बैठा है, अरु वासनाकरि देशदेशांतरको भ्रमता है, तिसका नाम मन होता है, तिसको वैराग्य अरु योगाभ्यासकरि वासनाते रहित करना, अरु प्राणवायुको स्थित करना, यह दोनों उपाय हैं॥

हे रामजी! जब तत्त्वज्ञान होता है, तब मन स्थिर हो जाता है, काहेते जो प्राण अरु चित्तकलाका आपसमें वियोग होता है, अरु जब प्राण स्थित होता है, तब मन स्थित हो जाता है, काहेते कि, प्राण स्थित हुए चेतनकलाकेसाथ नहीं मिलते, तब मन भी स्थित हो जाता है, सो नहीं रहता, मनका रूप चेतनकला अरु प्राण फुरणविना नहीं रहता, ऐसा भी होवै, जो पाषाणको स्वाद लेनेकी शक्ति हो आवै, सो पाषाणको अपनी सत्ताशक्ति कछु नहीं, तैसे मनको भी अपनी सत्ताशक्ति कछु नहीं, चेतनसत्ता अरु प्राणोंविना कछु होवै, स्पंदरूप जो शक्ति है सो प्राणोंकी है, सो चलरूप जडात्मक है, आत्मसत्ता चेतनरूप है, सो अपने आपविषे स्थित है, चेतनशक्ति अरु स्पंदशक्तिके संबंध होनेकरिकै मन उपजा है, सो मनका उपजना भी मिथ्या है, इसीका नाम मिथ्याज्ञान है ॥ हे रामजी! मैंने तुझको अविद्या परम अज्ञानरूप संसाररूपी विषको देनेहारी कही है,चित्तशक्ति अरु स्पंदशक्तिका संबंध संकल्पकरिकै कल्पित है, जो तू संकल्प न उठावै, तो मनसंज्ञा न रहैगी, क्षीण हो जावैगी, ताते संसारभ्रमसों भयमान मत होहु, अरु जब स्पंदरूप प्राणको चित्सत्ता चेतती है, तब चेतनेकरि मन चित्तरूपको प्राप्त होता है, अपने फुरणेकरि दुःखको प्राप्त होता है, जैसे बालक अपनी परछाईंविषे वैताल कल्पिकरि भयवान् होता है, तैसा अखंड मंडलाकार जो चेतनसत्ता है, सो सर्वगत है, तिसका संबंध किसकेसाथ होवै, अखंडशक्ति उन्निद्ररूप आत्माके इकट्ठे करनेको कोई समर्थ नहीं, इसी कारणते संबंधका अभाव है, जो संबंधही नहीं तौ मिलना किससे होवै, मिलाप न हुआ तौ मनकी सिद्धता क्या कहिये चित्त अरु स्पंदकी एकताको मन कहते हैं, और मन वस्तु नहीं. जैसे रथ, घोडा, हस्ती, प्यादा इनविना सेनाका रूप और कछु नहीं निकसता, तैसे चित्तस्पंदविना मनका रूप और कछु नहीं. तिस कारणते दुष्टरूप जो मन है, सो तीनों लोकोंविषे इसके समान कोऊ नहीं, जब सम्यक्ज्ञान होवै, तब मृतरूप मन नष्ट हो जाता है, ताते मिथ्या अनर्थका कारण जो चित्त है, तिसको मत धरौ. अर्थ यह कि, संकल्पका त्याग करौ ॥ हे रामजी ! मनका उपजना मिथ्या है, परमार्थते नहीं, संकल्पका नाम मन है, इस कारणते कछु है नहीं,जैसे मृगतृष्णाकी नदी मिथ्या भासतीहै,

तैसे मन मिथ्या है, हृदयरूपी मरुस्थल है, अरु चेतनरूप सूर्य है, तहां मनरूपी मृगतृष्णा है, तिसका जल भासता है, जब सम्यग्ज्ञान होता है, तब इसका अभाव हो जाता है, मन जडताते निःस्वरूप है, सर्वदा मृतकरूप है, तिस मृतकने सर्व लोकोंको मृतक किये हैं, यह बड़ा आश्चर्य है, जो अंग भी कछु नहीं, देह भी नहीं, न आधार है, न आधेय है, सो जगत्का भक्षण करता है, अनहोते जालसों लोकोंको फँसाये हैं, जो सामग्रीते रहित बल तेज विभूति हस्ती पदाति रहित लोकोंको मारता है, मानो कमलके मारनेकरि मस्तक फटि जाता है, जो जड़ मूक अधम हैं, सो पुरुष ऐसे मानते हैं कि, हम बांधे हैं; मानो पूर्णमासीके चंद्रमाकी किरणोंकरि चलते हैं, जो शूरमे होते हैं, सो तिसको हनन करते हैं, जो अविद्यमान मन है, तिनने मिथ्याही जगत्को हत किया है, संकल्पकरि उदय अरु स्थित हुआ है, ऐसा दुष्ट है कि, किसीने उसको देखा नहीं, मैंने तुझको तिसकी शक्ति कही है, सो तौ बडा आश्चर्यरूप विस्तृतरूप है, चंचल असत्रूप चित्तकरि मैं विस्मित हुआ हौं, जो मूर्ख है, सो सर्व आपदाका पात्र है, जो मन नहीं है, तिसकरि एते दुःखको प्राप्त भया है, बडा कष्ट है, जो सृष्टि मूर्खताकरिकै चली जाती है, सर्व मनकरि तपते हैं, यह मैं मानता हौं कि, सर्व जगत् मूढरूप है, तरंगरूपी शस्त्रकरिकै कण कण होगए हैं, पैलवरूप हैं, जो कमलकरि विदारण हुये हैं, चंद्रमाकी किरणोंकरि दग्ध होगए हैं, दृष्टिरूपी शस्त्रकरि वह पुरुष वेधे हैं, संकल्परूपी मनकरि मृतक हो गए हैं, वास्तवते कछु है नहीं, मिथ्या कल्पनाते नीच कृपण करिकै लोकोंको हनन किया है ताते मूर्ख है, मूर्ख हमारे उपदेशयोग्य नहीं, उपदेशका अधिकारी जिज्ञासी है, जिसको स्वरूपका साक्षात्कार नहीं भया, अरु संसारते उपरांत हुआ है, अरु मोक्षकी इच्छा रखता है, अरु पदार्थका ज्ञाता है, सो उपदेश करने योग्य है, अरु ज्ञानवान् जो पूर्ण हैं तिसको उपदेश नहीं बनता है, अरु अज्ञानी मूर्खको भी नहीं बनता; मूर्ख कैसा है, बीणाकी ध्वनि सुनकरि भयवान् होता है, अरु बांधव निद्रामें सोया पड़ा है; तिसको मृतक जानिकै भयवान् होता है, अरु स्वप्नविषे हस्तीको देखिकरि भय पावता है, भागता है, तिस मनने अज्ञानियोंको वश किया है, भोगोंका जो लव तुच्छ सुख है, तिसके निमित्त जीव अनेक

यत्न करते हैं, अरु दुःख पाते हैं हृदयविषे स्थित जो अपना स्वरूप है, तिसको नहीं देखि सकते, प्रमादकारि अनेक कष्ट पाते हैं, अज्ञानी जीव मिथ्याही मोहित होते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मनानिर्वाणवर्णनं नाम त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हेरामजी ! संसाररूपी समुद्रहै, तिसविषे रागदोषरूपी कल्लोल उठते हैं, तिसविषे वह पुरुष बहे हैं, जो मनको मूढ जडरूप नहीं जानते तिनको उदार जो आत्मफल है, सो प्राप्त नहीं होता, यह विचार विवेककी वाणी मैंने तुझको कही है, सो तुम सारिखेको योग्य है, अरु जिन मूढ जडोंको मनके जीतनेविषे समर्थता नहीं तिनको नहीं शोभती, जो इन वचनोंको नहीं ग्रहण कर सकते तिनको कहनेकारि क्या प्रयोजन. जैसे जन्म अंधको सुंदर मंजरी वन दिखाइये तब वह निष्फल होता है, काहेते कि वह देखि नहीं सकता तैसे विवेक वाणीका उपदेश करना उनको निष्फल होता है, जो मनको जीत नहीं सकते, इंद्रियोंकारि लोलुप पुरुष हैं, तिनको आत्मबोधका उपदेश करना कछु कार्य नहीं करता जैसे कुष्ठकारि जिसका शरीर गलिगया है, तिसको नानाप्रकारकी सुगंधिका उपचार सुखदायक नहीं होता, तैसे मूढको आत्मउपदेशका बोध सुखदायक नहीं होता. जिसकी इंद्रियां व्याकुल विपर्यय हैं, अरु मदिराकारि उन्मत्त हैं, तिसको धर्मके निर्णयाविषे साक्षी करना कोऊ प्रमाण नहीं करता, ऐसा कुबुद्धि कौन है, जो श्मशानविषे शमकी मूर्तिको पायकारि तिसते चर्चाविचार करै, अरु तिससों प्रश्नोत्तर करै; अपने हृदयरूपी कूडविषे मनरूप मूक जड सर्पवत् स्थित है जो तिसको निकास डारै सो पुरुष है, अरु जो तिसको नहीं जीति सकता तिस दुर्बुद्धिको उपदेश करना व्यर्थ है ॥ हे रामजी ! मन महातुच्छ है, जो वस्तु कछु न होवै, तिसके जीनेविषे कठिनता होवै जैसे स्वप्ननगर निकट होता है अरु चिरपर्यंत भी स्थित है अरु जागिकारि देखिये तौ कछु नहीं पाता, तैसे मनको जो विचारकारि देखिये तौ कछु नहीं पाता जिस पुरुषने अपने मनको नहीं जीता सो दुर्बुद्धि है वह अमृतको त्यागिकारि विषको पान करता है सो विषकी मूर्च्छाकारि मरिजाता है अरु जो ज्ञानी है सो सदा आत्माही देखता है, इंद्रियाँ अपने अपने धर्मविषे विचरती हैं प्राणकी स्पंदशक्ति है, अरु ज्ञानशक्ति परमात्माकी है, इंद्रियोंको अपनी

शक्ति है, जीव किसकरि बंधायमान होता है, वास्तवते सर्वशक्ति सर्वात्मा है तिसते भिन्न कछु नहीं यह मन कहा है जिसने सब जगत्को नीच किया है॥ हे रामजी! मूढोंको देखिकरि मैं दया करता हौं अरु तपता हौं कि, मूढ क्यों खेद पाते हैं, दुःखदायक कौन हैं जिसकरि तपते हैं, जैसे उष्ट्र कंटकके वृक्षोंकी परंपराको प्राप्त होता है, तैसे मूढ प्रमादकरिकै दुःखोंकी परंपराको पाते हैं, वे दुर्बुद्धि देहको पाइकरि मर जाते हैं, जैसे समुद्रविषे बुद्बुदे उपजिकरि मिटि जाते हैं तैसे संसारसमुद्रविषे उपजिकरि नष्ट हो जाते हैं, तिनका शोक करना क्या है, वे तौ तुच्छ पशुते नीच हैं. तू देख जो दशों दिशाविषे पशु आदिक होते हैं, अरु मरते हैं, तिनका शोक कौन करता है मच्छरादिक जीव नष्ट हो जाते हैं, कई जलचर जलविषे भक्षण करते हैं तिनका विलाप कौन करता है, छोटे जीवोंको बड़े जलविषे मच्छ भक्षण करते हैं आकाशविषे कई पक्षी मृत्यु होते हैं, तिनका कौन शोक करता है अनेक जीव नाश होते हैं तिनका विलाप कछु नहीं होता तैसे अबके जो हैं, तिनका विलाप करना नहीं, काहेते कि, थिर रहना किसीको नहीं, सर्व नाशरूप हैं अरु तुच्छ हैं निरंतर नष्ट होते हैं, सर्वका प्रतियोगी काल है, अनेक जीवोंको भोजन करता है, जूं आदिकको मक्षिका अरु मच्छर आदिक खाते हैं, मक्षिका अरु मच्छरादिको दादुर खाते हैं, दादुरको सर्प, सर्पोंको नौले, नौलेको बिल्ले, बिल्लेको कूकर, कूकरोंको बघाड, बघाडको सिंह, सिंहको शरभ, शरभको मेघकी गर्जना नष्ट करती है, मेघको वायु, वायुको पर्वत, पर्वतको इंद्रका वज्र, इंद्रके वज्रको सुदर्शन चक्र जीति लेता है, सो चक्र विष्णुजीका होता है, सो विष्णु भी अवतारोंको धरता है, सुखदुःख जरामरणसंयुक्त होता है, जीवोंकरि वडी देहको धरता है, विद्यारूप है तौ भी जुँआ लीखैं आदिक शरीरमें लगती हैं, वह रुधिरपान करती हैं, इसप्रकार निरंतर भूतजातिको काल जीर्ण करता है, अरु परस्पर जीव जीवोंको खाते हैं, अरु निरंतर नानाप्रकारके भूतजात दशों दिशाविषे उपजते हैं जैसे जलविषे मच्छ कच्छ आदिक उत्पन्न होते हैं, पृथ्वीविषे कीट आदि उपजते हैं, अंतरिक्षविषे पक्षीआदिक, वनवीथीविषे सिंहादिक मृग उपजते हैं, स्थावरविषे पिपीलिका दर्दुर कीटादि उपजते हैं, विष्ठाविषे कृमि उपजते हैं, नानाप्रकारके जीवगण इसप्रकार निरंतर

उपजते हैं अरु मिटि जाते हैं, कोऊ हर्षवान् कोऊ शोकवान् होतेहैं, कोऊ रुदन करतेहैं, सुख अरु दुःख मानते हैं, पापी पापके दुःख करि निरंतर मरतेहैं अरु सृष्टिविषे उपजते नाश होते हैं जैसे वृक्षसों पत्ते उपजतेहैं, तैसे भूत उपाजिकरि नाश हो जाते हैं तिनकी गिनती कछु नहीं. जो बोधवान् पुरुष है, सो अपने आप करिकै अपने आप ऊपर दया करिकै आपको संसारसमुद्रको पार करते हैं. हे रामजी ! अपर जेते कछु जीव हैं सो पशुवत् हैं, मूढों अरु पशुविषे भेद कछु नहीं तिनको हमारी कथाका उपदेश नहीं वह पशु धर्मा इस वाणीको योग्य नहीं, देखनेमात्र मनुष्य हैं परंतु मनुष्यका अर्थ तिनते सिद्ध कछु नहीं होता, जैसे उजाड़ वनविषे ठूंठ वृक्ष होता है, सो छाया फलते रहित किसीको विश्रामदायक नहीं होता, तैसे मूढ जीवोंते कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, जैसे जेवरी गलेविषे डारिकरि पशुको जहां खैंचता है, तहां चले जाते हैं, तैसे मूढ चित्तकरि खैंचते हैं, जहां चित्त खैंचता है, तहां चले जाते हैं, मूढचित्त पशु विषयरूपी कीचडविषे फँसे हैं, तिसकरि बड़ी आपदाको प्राप्त होते हैं, तिन मूढोंको आपदाविषे देखिकै पाषाण भी रुदन करते हैं, जिन मूर्खोंने अपने चित्तको नहीं जीता तिनको दुःखोंके समूह प्राप्त होते हैं, अरु जिनने चित्तको बंधनते निकासा है, सो संपदा वान् हैं, तिनके दुःख सब मिट जाते हैं, संसारविषे बहुरि नहीं उपजते, ताते अपने चित्तके जीतेविना दुःख नष्ट नहीं होता, अरु जो चित्त जीतना न होता, तो परमसुख प्राप्त नहीं होता, अरु तब चित्त जीतनको बुद्धिवान् न प्रवर्तते, सो बुद्धिवान् प्रवर्त्तते, हैं, ताते जानिये कि, चित्त भी वश होता है, मनरूपी भ्रमके नष्ट हुएते आत्मसुख प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! मन भी कछु है नहीं, मिथ्या भ्रमकरि कल्पते हैं, जैसे बालकको अपने परछाईंविषे बैतालबुद्धि होती है, तिसकरि भयमान होता है, तैसे भ्रमरूप मनकरि नाश मानते हैं, जबलग आत्मसत्ताका विस्मरण होता है, तबलग मूढता है, अरु हृदयविषे मनरूप सर्प विराजता है, जब अपना विवेकरूपी गरुड़ उदय होवै, तब वह नष्ट हो जाता है, अब तुम जागे हौ, ज्योंका त्यों जानते हो ॥ हे शत्रुनाशक रामजी ! अपने संकल्पकरि चित्त बढ़ता है, तिस संकल्पका शीघ्रही त्याग करौ, तब चित्त शांत होवैगा, जो तुम दृश्यको आश्रय करौगे, तो बंधन

होवैगा, अरु अहंकार आदिक दृश्यको त्याग करौगे, तौ अचित्त मोक्षवान् होहुगे, यह गुणोंका संबंध मैंने तुझको कहा है कि, दृश्यका आश्रय करना बंधन है, इसते रहित होना मोक्ष है, आगे जैसी इच्छा होवे, तैसा करहु, इसप्रकार ध्यान करहु, कि न मैं हौं, न यह जगत् है, केवल अचलरूप हौं, ऐसे निःसंकल्प हुएते आनंद चिदाकाश हृदयविषे आय प्रकाशैगा; आत्मा अरु जगत् विषे जो विभागकलना आय उदय हुई है, सो मल है, इस द्वैतभावका त्याग कियेते जो पाछे शेष रहैगा, तिसाविषे स्थित होहु, आत्मा अरु जगत्का अंतर क्या है, द्रष्टा अरु दृश्यका अंतर जो दर्शन है, अनुभवसत्ता है, सर्वदा तिसीकी भावना करौ, स्वाद अरु अस्वाद लेनेवालेका त्याग करौ, तिनके मध्य जो स्वादरूप है, तिसविषे स्थित होहु, सो आत्मतत्त्व है, तिसाविषे तन्मय होहु, अनुभव जो द्रष्टा है, अरु दृश्य है, तिसके मध्यविषे जो निरालंब साक्षीरूप आत्मा है, तिसाविषे स्थित होहु ॥ हे रामजी ! भव जो है संसार, सो भावअभावरूप है, तिसकी भावनाका त्याग करि, भावरूप आत्माकी भावना करौ, सो अपना स्वरूप है प्रपंच दृश्यका त्याग कियेते जो वस्तु अपना स्वरूप है, सोई होवैगा; जो परमानंदस्वरूप है, अरु चित्तभावको प्राप्त होना अनंत दुःख है, चित्तरूपी संकल्प बंधन है; तिस बंधनको अपने स्वरूपके ज्ञानयुक्त बलकरि छेदहु, तब मुक्ति होवैगी, अरु जब आत्माका त्याग कर जगत्विषे गिरता है, तब नानाप्रकार संकल्प विकल्प दुःखोंविषे प्राप्त होता है, जब तू आत्माको व्यतिरेक शब्द करैगा, तब मन दुःखके समूह संयुक्त प्रगट होवैगा, अरु व्यतिरेकभावना त्यागेते सब मनके दुःख नष्ट हो जावैंगे, यह सर्व आत्मा है, आत्माते इतर कछु नहीं, जब यह ज्ञान उदय हुआ, तब चैत्य चित्त चेतना तीनोंका अभाव हो जावैगा, मैं आत्मा नहीं, जीव हौं, इसका नाम चित्त है; तिसकरि अनेक दुःखको प्राप्त होता है, अरु जब यह निश्चय हुआ कि, मैं आत्मा हौं, जीव नहीं, सो सत्य है, इतर कछु नहीं, इसीका नाम चित्तउपशम कहाता है. जब यह निश्चय भया कि, सब आत्मतत्त्व है, आत्माते इतर कछु नहीं, तब चित्त शांत हो जाता है, इसविषे संशय कछु नहीं, इसप्रकार आत्मबोधकरिकै मन नष्ट हो जाता है, जैसे सूर्यके उदय हुएते तम नष्ट हो जाता है, सो मन सब शरी

रोंके अंतर स्थित है; जबलग होता है, तबलग बड़ा जीवको भय होता है, यह जो परमार्थयोग मैंने तुझको कहा है, तिसकारि मनको काटि डारहु, जब मनका त्याग किया तब भय भी न रहैगा; यह चित्त भ्रममात्र उदय हुआ है, चित्तरूपी वैताल है, सम्यक्ज्ञानरूप मंत्रकरि अभाव हो जाता है ॥ हे बलवानोंविषे श्रेष्ठ निष्पाप रामजी ! तेरे हृदयरूपी गृहमें ते चित्तरूपी वैताल निकसि जावैगा, तब तू दुःखोंते रहित स्थित होवैगा; भय उद्वेग कछु न व्यापैगा; अब तू मेरे वचनोंकरि वैरागी भया है, मनरूपी जो मन है, तिसको जीता है, इस विचार विवेकसों चित्त नष्ट शांत हो जाता है, निर्दुःख आत्मपदको प्राप्त होता है, सब ईषणाको त्यागिकारि शांतरूप स्थितहोहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तचैतन्यरूपवर्णनं नाम चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार तू देख कि, चित्त आप विचित्ररूप है, संसाररूपी बीजकी कणिका है, अरु जीवरूपी पंखीको बंधनका जाल है, जबचित्त संवित् आत्मसत्ताको त्यागता है, तब दृश्यभावको प्राप्त होता है, तब चित्त उपजता है, कलनारूप मलको धारता है, सो चित्त बढि करि मोह उपजता है, तिसकरि संसारका कारण होता है, तब तृष्णारूपी जो विषकी वेलि है, सो प्रफुल्लित होती है, तिसकारि मूर्च्छित हो जाता है, आत्मपदकी ओर सावधान नहीं होता, ज्यों ज्यों उदय होती है, त्यों त्यों मोहको बढ़ावती है, तृष्णारूप श्याम रात्रि है, अनंत अंधकारको देती है, परमार्थसत्ताका आवरण करती है, प्रलयकालकी अग्निवत् जलाती है, तिसको समर्थ कोऊ नहीं होता; सर्वको व्याकुल करती है, तृष्णारूपी तीक्ष्ण खड्गकी धारा है, दृष्टिमात्र कोमल शीतल सुंदर है, स्पर्श कियेते नाश कर डारती है, अनेक संकटको देती है, जो बड़े असाध्य दुःख हैं, जिनकी प्राप्ति बडे पापोंकरि होती है, सो तृष्णारूपी फूलका फल है, तृष्णारूपी कूकरि है, सो दुर्गंधादिकरि चित्तशरीररूपी गृहविषे रहती है, क्षणविषे बड़े हुलासको प्राप्त होती है, क्षणविषे शून्यरूप हो जाती है, जो पुरुष बडे ऐश्वर्यसंयुक्त है, सो जब तृष्णा उपजी तब दीन हो जाता है, अरु जो देखनेकरि निर्धन, कृपण भासता है, अरु अंतर तृष्णाते रहित है, तब वह बड़ा ऐश्वर्यवान् होता है, जिसके हृदयरूपी छिद्रविषे तृष्णारूपी सर्पिणी नहीं बैठी, तिसके प्राण

अरु शरीर स्थित हैं, उसका हृदय शांतरूप होता है, निश्चयकरि जान कि, जहां तृष्णारूपी काल रात्रिका अभाव हुआ है, तहां पुण्य आय बढ़ते हैं, जैसे शुक्लपक्षका चंद्रमा बढ़ता है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषरूपी वृक्षको तृष्णारूपी घुनने भोजन किया है, तिसकी पुण्यरूपी हरियावल नहीं रहती, प्रफुल्लित नहीं होती, तृष्णारूपी नदी है, अनंत कल्लोल आवर्त्त तिसविषे उठते हैं, तृणवत् बहती है, अरु जीवरूपी खेलनेकी पुतली है, तृष्णारूपी यंत्री तिनको भ्रमाती है, सब शरीरोंके अंतर तृष्णारूपी तागा है, तिसकरि परोये हैं तृष्णाकरिकै मोहित हुए कष्ट पाते हैं, अरु समझते नहीं, जैसे हरे तृण कर आच्छादित गर्त होता है, तिसको देखिकरि हरिणका बालक ग्रहण करता है, अरु गर्तविषे गिर पड़ता है ॥ हे रामजी ! ऐसा कोऊ और इसके कलेजेको काटि नहीं सकता, जैसे तृष्णारूपी डाकिनी इसका उत्साह बलरूपी कलेजा निकास लेती है, तिसकरि दीन जैसा हो जाता है, तृष्णारूप अमंगल इन जीवोंके हृदयविषे स्थित होइकरि नीचताको प्राप्त करती है, तृष्णाकरिकै विष्णु भगवान् है सो भगवान्की नाईं स्थित भया है, अर्थ यह जो त्रिलोकीनाथ विष्णुजी इंद्रके हेतकरि जब अर्थ हृदयाविषे धरा, तब अल्प जैसी मूर्तिको धारिकरि बलिके द्वार गए, तहां तृष्णाकरिकै जीव भ्रमते हैं, जैसे सूर्य नीतिको धरिकरि आकाशविषे भ्रमता है, तैसे तृष्णारूपी तागेकरि बांधे जीव भ्रमते हैं, तृष्णारूपी सर्पिणी महाविषकरि पूर्ण होती है, सर्वको दुःखदायक है, ताते इसको दूरते त्याग करौ, पवन जो चलता है, सो तृष्णाकरि चलता है, पर्वत तृष्णाकरि स्थिर है, पृथ्वी तृष्णाकरि जगत्को धरती है, तृष्णाकरि त्रिलोकी वेष्टित करी है ॥ सब लोक तृष्णाकरि बांधे हुए हैं, जेवरीकरि बांधा हुआ छूटता है, परंतु तृष्णाकरि बांधा छूटता नहीं । तृष्णावान् मुक्त कदाचित् नहीं होता, तृष्णाते रहित मुक्त होता है, तिस कारणते हे राघव ! तुम तृष्णाका त्याग करहु, सब जगत् मनके संकल्पविषे है तिस संकल्पते रहित होहु, मन भी कछु अपर वस्तु नहीं, युक्तिसों निर्णयकरि देखौ, संकल्पप्रमादका नाम मन है, जब इसका नाश होवै, तब तृष्णा सब नाश हो जावै, अहं त्वं इदं इत्यादिक चितवना मत करहु, यह महामोहमय दृष्टि है, इसको त्यागिकरिकै एक अद्वैत आत्माकी

भावना करौ, अनात्माविषे जो आत्मभाव है, सो दुःखोंका कारण है इसके त्यागेते ज्ञानवानोंविषे प्रसिद्ध होहुगे, अहंभावरूप अपवित्र भावना है, तिसको अपने स्वरूप शलाकाकी भावनारूपकरि काटि डारहु; यह भावना पंचमभूमिका है, तहां संसारका अभाव है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णावर्णनं नाम पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! यह तुम्हारे वचन गंभीर तोलते रहित हैं, तुम कहते हौ, अहंकार तृष्णाको मत करहु, जो अहंकारको त्यागैगा तौ यह चेष्टा कैसे होवैगी, देहका भी त्याग हो जावैगा, जैसे वृक्ष स्तम्भके आश्रय होते हैं स्तंभहीने वृक्षको धरा है, स्तंभके नाश हुएते वृक्ष नहीं रहता, तैसे देहको अहंकार धरि रहा है, तिसते रहित देहभी गिरजावैगा, ताते मैं अहंकारको त्यागिकरि कैसे जीता रहौंगा, यह अर्थ मुझको निश्चय करि कहौ, तुम कहनेहारेविषे श्रेष्ठ हौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे कमलनयन रामजी ! सर्व ज्ञानवानोंने वासनाका त्याग किया है, सो दो प्रकारका है, एकका नाम ध्येयत्याग, दूसरेका नाम नेयत्याग है, मैं यह हौं, पदार्थरूप मैं इनकरि जीता हौं, इनविना मैं कछु जीता नहीं, अरु मोंविना यह भी कछु नहीं, यह जो अंतर निश्चय है, तिसको त्यागिकरि विचारत भया हौं, न मैं पदार्थ हौं, न मेरे पदार्थ हैं, ऐसी भावना करनेहारे जो पुरुष हैं, तिनका अंतःकरण आत्मप्रकाशकरि शीतल हो जाता है जो कछु क्रिया करते हैं, सो लीला मात्र हैं, जिस पुरुषने निश्चयकरि वासनाका त्याग किया है, सो पुरुष सर्व क्रियाविषे सर्व आत्मा जानता है, उसको बंधनका कारण नहीं होता. तिसके अंतर सर्व वासनाका त्याग है, अरु बाह्य इंद्रियोंकरिकै चेष्टा करता है, जो पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है, तिसने वासनाका त्याग किया है; तिसवासनाका त्याग नाम ध्येय वासनाका त्याग अरु जिस पुरुषने मनसंयुक्त देहवासनाका त्याग किया है, अरु तिसवासनाका भी त्याग किया है, सो नेयवासनाका त्याग है, नेयवासनाके त्यागते विदेहमुक्त कहाता है, जिस पुरुषने अहंकार देह अभिमानका त्याग किया है संसारकी वासना लीलासों त्याग करी हैं, स्वरूपविषे स्थितहोइकरि क्रिया भी करता है, सो जीवन्मुक्त कहाता है. जिसकी सब वासना नाश भई हैं, अंतर बाहिरकी चेष्टाते रहित भया है. अर्थ यह कि, जिसने अंतर संकल्प

बाहिरकी क्रिया त्यागी है, तिसका नाम नेयत्याग विदेहमुक्त जान. जिसने ध्येयवासनाका त्याग किया है, लीला करिके कर्ता हुआ स्थित है सो जीवन्मुक्त महात्मा पुरुष जनकवत् है, अरु जिसने नेयवासनाको त्यागा है, और उपशमरूप होगया है, सो विदेहमुक्त होइकरि परमतत्त्वविषे स्थित है, परात्पर जिसको कहते हैं, सोई होता है॥ हे राघव! यह दोनों त्यागी शमपदविषे स्थित हुए ब्रह्मपदको प्राप्त होते हैं, विगतसंताप उत्तम पुरुष दोनों मुक्तस्वरूप हैं, निर्मल पदविषे स्थित होते हैं, एकका देह स्फुरणरूप होता है, दूसरेका अस्फुर होता है, देहयुक्तरूप देहविषे स्थित होता है, क्रियाको करता संतापते रहित जीवन्मुक्त सो ज्ञानको धरता है, दूसरे देहको त्यागिकै विदेहपदविषे स्थित होता है, उसके साथ वासना अरु देह दोनों नहीं भासते, ताते विदेहमुक्त कहाता है, जीवन्मुक्तके अंतरवासनाका त्याग है, वाह्य क्रिया करता है, जैसे समयकरि सुख दुःख आय प्राप्त होते हैं, तैसे निरंतर रागदोषते रहित प्रवर्तता है, सुखविषे हर्ष नहीं, दुःखविषे शोक नहीं, सो जीवन्मुक्त कहाता है, जिस पुरुषने संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थोंकी इच्छा त्यागी है, सो सब कार्यविषे सुषुप्तिकी नाई अचल वृत्ति है सो जीवन्मुक्त कहता है, हेयोपादेय मैं अरु मेरा सब कलना जिसके अंतर क्षीण हो गई हैं, सो जीवन्मुक्त कहाता है, तिसकी वृत्ति संपूर्ण पदार्थनते सुषुप्तिकी नाई हो गई है, अरु सदा जाग्रत् चित्त जिसका है, कलना क्रिया संयुक्त भी दृष्ट आता है, परंतु अंतरते आकाशवत् निर्मल है, सो जीवन्मुक्त पूजने योग्य है॥ वाल्मीकि उवाच॥ इसप्रकार जब वसिष्टजीने कहा, तब सूर्य भगवान् अस्त भया, सब सभाके लोक स्नानके निमित्त परस्पर नमस्कारकरिकै उठे, रात्रिको व्यतीत करिकै सूर्यकी किरणोंसाथ परस्पर नमस्कार करिकै यथायोग्य अपने अपने आसनपर आय बैठे॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सोपदेशो नाम षोडशः सर्गः॥ १६॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जो पुरुष विदेहमुक्त है, सो हमारी वाणीका विषय नहीं, ताते तू जीवन्मुक्तका लक्षण सुन, जो कछु प्रकृत कर्म है, तिसको करता है, परंतु तृष्णा अरु अहंकारते रहित है, निरंहकार होइकरि विचरता है, सो जीवन्मुक्त है, बाहर जो दृष्ट पदार्थ है, तिनविषे जिसकी दृढभावना है, तृष्णाकरिकै सदा

इच्छता रहता है, संसारके दृढबंधनकारि सो बंध कहाता है,अरु जिसने निश्चयकारिकै अंतरते संकलपका त्याग किया है,अरु बाह्यते सब व्यवहार करता है, सो पुरुष जीवन्मुक्त कहाता है, जो बाह्य जगत्‌विषे बड़े आरंभ करता है, इच्छासंयुक्त दृष्ट आता है, अरु हृदय विषे सब अर्थोंकी वासना तृष्णाते रहित है, सो मुक्त कहाता है, जिस पुरुषको भोगोंकी तृष्णा मिटिगई है, वर्त्तमानविषे निरंतर विचरता है, सो निर्दुःख निष्कलंक कहाता है ॥ हे महाबुद्धिवान्! जिसके अंतर इदं अहंका निश्चय है, तिसको धारिकारि संसारकी भावना करता है, तिसको तृष्णारूप सांकलकारि बांधा, अरु कलनाकारि कलंकित जान, ताते तू मैं अरु मेरा सत्य अरु असत्यबुद्धि संसारके पदार्थोंका त्याग कर, जो परम उदार पद है, सर्वदा काल तिसविषे स्थित होहु, बंधमुक्त सत्य असत्यकी कल्पनाको त्यागिकारि समुद्रवत् अक्षोभचित्त स्थित होहु, न तुम पदार्थजाल हौ, न यह तुम्हारे हैं, सब असत्यरूप जानिकै इनका विकल्प त्याग, यह जगत् भ्रांतिमात्र है, इसकी तृष्णा भी भ्रांतिमात्र है, इनते रहित आकाशकी नाईं सन्मात्र तू सत्यस्वरूप है; अरु तृष्णा मिथ्यारूप है, तेरा अरु इसका क्या संग है ॥ हे रामजी ! चार प्रकारका निश्चय जीवको होता है, सो बड़े विस्तार आकारको प्राप्त होता है, चरणोंते लेकारि मस्तकपर्यंत शरीरविषे आत्मबुद्धि है, अरु मातापिताकारि उत्पन्न भया है, यह निश्चय बंधनरूप है, असम्यक्‌दर्शन भ्रांतिकारि होता है, अरु द्वितीय निश्चय यह है कि, सब भावपदार्थोंते अतीत हौं, बालके अग्रते भी सूक्ष्म हौं, साक्षीभूत सूक्ष्मते अतिसूक्ष्म हौं, यह निश्चय भी शांतिरूप मोक्षको उपजाता है, अरु जेता कछु जगज्जाल है, सो सब पदार्थोंमेंही हौं, आत्मारूप मैं अविनाशी हौं, यह तीसरा निश्चय है, सो भी मोक्षदायक है, अरु चौथा निश्चय यह है कि, मैं भी असत्य अरु जगत् भी असत्य है, इनते रहित आकाशकी नाईं सन्मात्र है, यह भी मोक्षका कारण है ॥ हे रामजी ! यह चार प्रकारका निश्चय मैंने तुझको कहा है, तिसविषे प्रथम निश्चय बंधनका कारण है, और तीनों मोक्षका कारण हैं, सो शुद्ध भावनाकारि उपजे हैं, जो प्रथम निश्चयवान् है सो तृष्णारूप सुगंधिकारिकै संसारविषे भ्रमता है,अरु तीन भावना शुद्ध जीवन्मुक्त विलासी पुरुषकी हैं. जिसको यह निश्चय है कि,

सर्व जगत् मैं आत्मस्वरूप हौं, तृष्णा अरु राग द्वेष तिसको बहुरि दुःख नहीं देता, अध ऊर्ध्व मध्य मैं आत्माही व्यापा हौं, सब मैंही हौं, मुझते इतर कछु नहीं जिसके अंतर यह निश्चय है, सो संसारके पदार्थोंमें बंधायमान नहीं होता, शून्य प्रकृति माया, ब्रह्म, शिव, पुरुष, ईश्वर सब तिसके नाम हैं, सो विज्ञानस्वरूप एक आत्मा है सदासर्वदा एक अद्वैत मैं आत्मा हौं, अपर द्वैत भ्रम चित्तमें नहीं सदा विद्यमान सत्ता व्यापकरूप हौं, ब्रह्मते आदि तृणपर्यंत जेता कछु जगज्जाल है, सो सर्व पारिपूर्ण आत्मतत्त्व भरि रहा हौं, जैसे समुद्रविषे तरंग बुद्बुदे सर्व जलरूप हैं तैसे सर्व जगज्जाल आत्मस्वरूपही है, सत्यस्वरूप आत्मते इतर द्वैत कछु वस्तु नहीं, जैसे समुद्रते इतर बुद्बुदे तरंग कछु नहीं, जैसे स्वर्णते इतर कछु भूषण नहीं, तैसे आत्मसत्ताते कोऊ पदार्थ भिन्न नहीं, द्वैत अरु अद्वैत जो जगतरचनाविषे भेद है, सो परमात्मा पुरुषकी फुरना शक्ति है, सोई द्वैत अरु अद्वैतरूप होइकरि भासता है, यह अपना है, यह अपरका है, यह भेद सर्वदा सबविषे रहता है, अरु पदार्थोंके उपजने मिटनेविषे सुखदुःख भासता है, तिनको मत ग्रहण करौ, भावरूप जो अद्वैत आत्मसत्ता है, तिसीका आश्रय करौ, भ्रमद्वैतको त्यागिकरि अद्वैत पूर्णसत्ता होहु, संसारके जो कछु भेद भासते हैं, तिनका मत ग्रहण करौ, यह भूमिकाकी भावना जो भेदरूप है, सो दुःखदायी जानौ, जैसे अंध हस्ती नदीविषे गिरता है। बहुरि उछलता है, तैसे तुम पदार्थोंविषे मत गिरौ, तुम पूर्णस्वरूप हौ, महात्मा पुरुषको रागदोषका कछु संभव नहीं होता, सर्वगत आत्मा एक अद्वैत निरंतर उदयरूप सर्वव्यापक है, एक अरु द्वैतते रहित भी है, अरु सर्वरूप भी वही है, निष्किंचनरूप भी वही है, न मैं हौं, न यह जगत् है, सब अविद्यारूप है, ऐसे चिंतहु, अरु इसका त्याग करहु, अथवा ऐसे चिंतहु कि ज्ञानस्वरूप सत्य असत्य सब मैंही हौं, तुम्हारा जो स्वरूप है, सो आनंदरूप सर्वका प्रकाशक अजर अमर निर्विकार निष्क्रिय निराकार परम अमृतरूप है, बहुरि कैसा है, जो निष्कलंक जीवशक्तिका जीवनरूप है, सर्व कलनाते रहित कारणका कारण है, निरंतर उद्योत ईश्वर विस्तृतरूप है

अनुभवस्वरूप सब अनुभवका बीज है, अपना आप आत्मपद उचितस्वरूप ब्रह्म मैं अरु मेरा भावते रहित है, ताते अहं अरु इदं कलनाको त्यागिकारि अपने अंतर यह निश्चय धरहु, अरु यथाप्राप्त कियाको करहु, तुम अहंकारते रहित शांतरूप होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णोपदेशो नाम सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिनका हृदय मुक्तस्वरूप है, ऐसे जो महात्मा पुरुष हैं, तिनका यह स्वभाव है कि, असम्यक् दृष्टि देहाभिमानकारि नहीं रहते, लीलाकारि जगत् कार्यविषे विचरते हैं, अरु जीवन्मुक्त शांतस्वरूप हैं, जगत्की गति जो है, सो आदि अंत मध्यविषे विरसरूप है, अरु नाशरूप है, तिसते शांतरूप है, सबप्रकार जो अपना कार्य है, सो करता है, सो सब वृत्तिविषे स्थित हुए हृदयसों ध्येयवासना त्यागी है, निरालंबतत्त्वका आश्रय किया है, सबविषे उद्वेगते रहित सर्व अर्थविषे संतुष्टरूप है, विवेकरूपी जो वन है, तिसविषे सदा विचरते हैं, बोधरूपी बगीचेविषे स्थित हैं, सबते अतीत पदका अवलंबन किया है, पूर्णमासीके चंद्रमावत् अंतःकरण शीतल भया है, संसारके पदार्थकारि कदाचित् उद्वेगवान् नहीं होता, उद्वेग अरु असंतुष्टत्व दोनोंते रहित है सो संसारविषे दुःखी कदाचित् नहीं होता सब शत्रुओंके मध्य स्थित होइकारि युद्ध करै, अथवा दया करता दृष्ट आवै, बड़े भयानक कर्म करता दृष्ट आवै; तो भी वह जीवन्मुक्त है, संसारविषे दुःखी नहीं होता, सदा सुखी रहता है, न किसी पदार्थविषे आनंदमान् होता है; न किसीविषे कष्टमान् होता है, न किसी पदार्थकी इच्छा करता है, न शोक करता है, मौनविषे स्थित यथाप्राप्त कार्य करता है, संसारविषे दुःखते रहित सुखी होता है, जो कोई पूँछता है, तो यथाक्रम ज्योंका त्यों कहता है, अरु पूछेविना मूक जड़ वृक्षवत् हो रहता है इच्छा अनिच्छाते मुक्त संसारविषे दुःखी नहीं होता सबको हितकारि बोलता है, कोमल अरु उचित वाणीकारि कहता है, यज्ञादिक कर्म भी करता परंतु संसारकार्य्यविषे डूबता नहीं हे रामजी ! जीवन्मुक्त पुरुष युक्त अयुक्त नानाप्रकारकी उग्र दिशासंयुक्त जगत्की वृत्तिको जानता है जैसे हाथविषे बेलफल होवै तैसे प्रकट जानताहै परंतु परमपदविषे आरूढ होइकारि जगत्की गतिको देखता रहता है अपना अंतःकरण शीतल अरु और जीवोंका

तत्त देखता है, स्वरूपते कछु द्वैत नहीं देखता है, परंतु व्यवहारकी अपेक्षाकारि उसकी महिमा कहा है ॥ हे राघव! जिन्होंने चित्त जीता है; अरु परमात्मा देखा है, तिन महात्मा पुरुषोंकी स्वभाववृत्ति मैंने तुझको कही है, अरु जो मूढ हैं, जिनने अपना चित्त नहीं जीता, भोगोंरूपी कीचड़विषे मग्न हैं, ऐसे गर्दभोंके जो लक्षण हैं, सो हमारे कहनेविषे नहीं आते, तिनको उन्मत्त कहिये. उन्मत्त इसप्रकार है, महा नरककी ज्वाला स्त्री है अरु वह उष्ण नरक अग्निके इंधन हैं, तिसकरि जलते हैं नानाप्रकारके अर्थोंनि मित्त अनर्थ उत्पन्न करते हैं, भोगोंकी दीनता अनर्थरूप है, तिसकरि उनके चित्त हत भए हैं, संसारके आरंभ करि दुःखी होते हैं, जो नानाप्रकारके कर्म करते हैं, तिनके फल हृदयविषे धारते हैं, तिन कर्मके अनुसार सुखदुःख भोगते हैं, ऐसे जो भोगलंपट हैं, तिनके लक्षण हम कहनेको समर्थ नहीं ॥ हे रामजी! जो ज्ञानवान् पुरुषकी पूर्वदृष्टि कही है, तिसीका तुम आश्रय करो, हृदयसों ध्येय वासनाको त्यागहु; जीवन्मुक्त होइकरि जगतविषे विचरौ अन्तरते संपूर्ण इच्छाको त्यागिकरि वीतराग निर्वासनिक होहु, बाह्य सब आचारवान् होइकरि लोकोंविषे विचरहु, सर्व दिशा अवस्थाका भलीप्रकार विचारकरि तिनविषे अतुच्छपद होवै, तिस को आश्रय करौ, अरु लोकोंविषे विचरौ, अंतर सर्व पदार्थोंते निरस अरु बाह्य इच्छाके सन्मुख होहु, अंतर शीतल रहहु, बाह्य तपायमान होहु ऐसे होइकरि लोकोंविषे विचरौ, बाह्य सब कार्यका आरंभ करौ, अरु हृदयकारि सब आरंभते विवर्जित होहु, बाह्य कार्योंका कर्त्ता अरु अंतरते सदा अकर्त्ता ऐसे होइकरि लोकोंविषे विचरहु ॥ हे रामजी! अब तू ज्ञानवान् हुआ है, सब पदार्थोंकी भावनाका अभाव भया है, जैसे इच्छा होवे, तैसे विचरहु, जो इंद्रियोंका इष्ट पदार्थ हो आवै, तब कृत्रिम हर्षवान् होना; अरु दुःख आय प्राप्त होवै, तब शोक करना, कृत्रिम क्रियाका आरंभ करना, अरु हृदयविषे सारभूत रहना, बाह्य अरु कृत्रिमका अर्थ एक है, अंतरत्यागी बाह्य कर्त्ता ऐसे होइकरि जगतविषे विचरौ, बाह्य क्रिया करहु, अंतर अहंकारते रहित आकाशवत् निर्मल रहौ, कार्य कलनाते रहित होइकरि जगतविषे विचरहु, आशारूप फाँसीते मुक्त होइकरि इष्ट अनिष्टविषे हृदयमें सम रहना अरु बाह्य कार्य करते लोकोंविषे

विचरो, इस चेतन पुरुषको न वास्तवते बंध है, न मोक्ष है, मिथ्या इंद्रजालवत् बंध मोक्ष संसारका वर्त्तना है, सब जगत् भ्रांतिमात्र है, प्रमादकरिकै जगत् भासता है, जैसे तीक्ष्ण धूपकरिकै मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे अज्ञानकरिकै जगत् भासता है, आत्मा अबंध सर्व व्यापकरूप है तिस सर्वात्माको बंध कैसे होवै, जो बंध नहीं, तौ मुक्त कैसे कहिये, आत्मतत्त्वके अज्ञानकरि जगत् भासता है, तत्त्वज्ञानकरि लीन हो जाता है, जैसे जेवरीके अज्ञानकरिकै सर्प भासता है, जेवरीके जाननेते सर्प लीन हो जाता है ॥ हे रामजी! तू तो ज्ञानवान् हुआ है, अपनी सूक्ष्म बुद्धि करिकै निरहंकार भया है अब आकाशकी नाईं निर्मल स्थित होहु, तू असत्यरूप है, तौ संपूर्ण मित्र भ्रात तैसेही हैं, तिनकी ममताको त्यागकरि जो आप कछु न हुआ, तौ भावना किसकी करैगा? अरु जो तू सत्यस्वरूप है, तौ अत्यंत सत्य आत्माकी भावनाकरि दृश्य जगत्की भावनाते रहित होहु यह जो जगत्विषे अहं मम भोगवासना है, सो प्रमाद करिकै भासती है, अहं मम बांधवोंका कर्म शुभ आदिक जो जगज्जाल भासता है, सो आत्माका संयोग इनसाथ कछु नहीं, इनकरि तू काहेको शोकवान् होता है तू आत्मतत्त्वकी ऐसी भावना कर तेरा संबंध किसीके साथ नहीं. यह प्रपंच भ्रममात्र है जो निराकार अजन्मा पुरुष होवै तिसको बांधव पुत्र दुःख सुखका क्रम कैसे होवै स्वतः अजन्मा निराकार निर्विकार है तेरा संबंध किसीसे नहीं इनका शोक तू काहेको करता है, शोक करनेका स्थान वह होता है, जो नाशरूप होवै सो न कोऊ जन्मता है, न मरता है, जो जन्म मरण भी मानिये तौ आत्मा तिसको सत्ता देनेहारा है, इस शरीरके आगे भी अरु शरीरके पाछे भी होवैगा, आगे जो तुम्हारे बांधव बडे बुद्धिवान् सात्विक गुणवान् अनेक व्यतीत भये हैं, तिनका शोक, काहेको नहीं करता? जैसे वे थे, तैसे ये भी हैं, जो प्रथम थे, सो अब भी हैं, तू शांतरूप है, ताते मोहको प्राप्त क्यों होता है, जो सत्यस्वरूप है तिसका न कोऊ शत्रु है, न नाश होता है, ताते तूं शोक करनेको योग्य नहीं जो तू ऐसे मानता है, अब मैं हौं, आगे न होऊँगा; तौ भी वृथा शोक क्यों करता है? तेरा संशय नष्ट भया है, कष्टसंयुक्त काहेको बनता अपनी प्रकृतिविषे हर्षशोकते रहित होइकरि विचरहु, संसारके सुख दुःखविषे समभाव रहहु, सर्वत्र

परमात्मा व्यापकरूप स्थित है, तिसते इतर कछु नहीं, तू आत्मा आनंद स्वच्छ आकाशवत् विस्तृतरूप है, अरु नित्य शुद्ध प्रकाशरूप है, जगत्के पदार्थोंनिमित्त क्यों शरीरको सुखाता है, सर्व पदार्थजातविषे एक आत्मा व्यापक होता है जैसे मोतीकी मालाविषे एक सूत्र तागा व्यापक होता है, तैसे आत्मा अनुस्यूत है, ज्ञानवानोंको सदा ऐसेही भासता है, अरु अज्ञानीको ऐसे नहीं भासता, ताते ज्ञानवान् होइकरि सुखी होहु, अरु यह जो संसरणरूप संसार भासता है, सो प्रमादकरि सारभूत होगया है, अरु तू ज्ञानवान् शांतबुद्धि है, दृश्य भ्रममात्र संसारका क्या रूप है, भ्रम अरु स्वप्नमात्रते इतर कछु नहीं, स्वप्नविषे क्या क्रम अरु क्या वस्तु है ? सब मिथ्याही है, तैसे यह संसार है. सर्वशक्त जो सर्वात्मा है, तिसविषे जो भ्रममात्र शक्ति है, तिसकरि यह संसार माया उठी है, सो न सत्य है, वास्तवते पूछै तौ केवल ज्ञानस्वरूप एक आत्मसत्ताही स्थित है, जैसे सूर्य प्रकाशता है, तिसको न किसीको वेध है, न किसीकेसाथ स्नेह है, सर्वरूप सर्वत्र सर्वदा सर्वका ईश्वर है, तिस सत्ताका आभास संवेदन स्फूर्त्ति है तिसकरि नानारूप जगत् भासता है, कई भिन्नाभिन्नरूप निरंतरही उत्पन्न होते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, तैसे देहधारी जैसी वासना करता है, तिसके अनुसार जगतविषे विचरते हैं, उपजते हैं, और चक्रकी नाईं भ्रमते हैं, स्वर्गविषे जो स्थित जीव हैं, सो नरकको जाते हैं, अरु जो नरकविषे स्थित हैं, सो स्वर्गको जाते हैं, योनिते योन्यंतर अरु द्वीपते द्वीपांतरको जाय प्राप्त होते हैं, अज्ञानकरिकै धैर्यवान् कृपणताको प्राप्त होता है, अरु कृपण धैर्यको प्राप्त होता है, इसप्रकार भूत उछलते हैं, अरु गिरते हैं, अज्ञानकरिके अनेक भ्रमको प्राप्त होते हैं, आत्मसत्ता एकरूप स्थित है, स्थिर स्वच्छ अपने आपविषे अचल है, दुःखभ्रम तिसविषे कोऊ नहीं पाता, जैसे अग्निविषे बर्फका कणका नहीं पाता, तैसे जो आत्मसत्ताविषे स्थित हैं, तिनको दुःखक्लेश कोऊ नहीं होता, उनका हृदय शीतल रहता है, सो आत्मसत्ताकी वड़ाई है, संसारविषे यही अवस्था है, जो वडे वडे ऐश्वर्यकरि संपन्न भाग्यवान् दृष्ट आते थे, सो कितनेक दिन पीछे नष्ट होते देखे हैं, तू अरु मैं इत्यादिक भावना आत्माविषे मिथ्या भ्रमकरिकै भासती है, जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है,

तैसे यह बांधव हैं, यह अन्य है, यह मैं हौं, इत्यादिक मिथ्या दृष्टि है, सो तेरी अब नष्ट भई है, संसारकी जो विचारदृष्टि है, जिस कारि जीव नष्ट होते हैं, तिसको मूलते काटिकारि तुम जगत्‌विषे क्रिया करौ, जैसे ज्ञानवान् जीवन्मुक्त संसारविषे विचरते हैं तैसे विचरौ भारवाहककी नाईं भ्रमविषे नहीं वर्तना जहां नाश करने, हारी वासना उठै, तहां यह विचार करहु कि, यह पदार्थ मिथ्या हैं, तब वासना शांत हो जावैगी, यह बंध है, यह मोक्ष है यह पदार्थ नित्य है, इत्यादिक गिनती लघुचित्तविषे उठती है, उदारचित्तविषे नहीं उठती, उदारचित्त जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनके आचरणको विचारता हुआ देहदृष्टि नष्ट हो जावैगी, ऐसे विचार कि, जहां मैं नहीं सो पदार्थ कोऊ नहीं, सब मैंही हौं, ऐसा पदार्थ कोई नहीं, जो मेरा नहीं, सब मराही है, ऐसे विचारकारि देहदृष्टि तेरी नष्ट हो जावैगी ऐसा जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो किसी संसारके पदार्थकारि उद्वेगको प्राप्त नहीं होता, अरु किसी पदार्थके अभाव हुएते आतुर भी नहीं होता, वह चिदाकाशरूप सर्वको सत्य स्थितरूप देखता है, आकाशकी नाईं आत्माको व्यापक देखता है, भाई बांधव भूतजातको अत्यंत असत्यरूप देखता है, नानाप्रकारके अनेक जन्मविषे भ्रमकारिके अनेक बांधव हो गए हैं, वास्तवते त्रिलोक अरु बांधवविषे भी बांधव वही है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनं नाम अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रसंगऊपर एक पुरातन भाईयोंका इतिहास है, बडे भाईने छोटे भाईसे कहा है एक मुनीश्वरके दो पुत्र थे, यह बांधव है, यह अन्य है, इसी प्रसंगकेऊपर एक कथा है, सो बांधव अरु मोक्ष आदिक जो नानाप्रकारकी कलना है, तिसको दूर करनेहारी है, पवित्र अरु आश्चर्यरूप कथा है, सो तुम श्रवण करो ॥ हे रामजी ! इसी जंबुद्वीपविषे किसी स्थानविषे महेंद्रनामा एक पर्वत है, तहां कल्पवृक्ष है, तिनकी छायाके नीचे देवता किन्नर आय विश्राम करते हैं तिस पर्वतके बडे शिखर ऊर्ध्वको गए हैं, ब्रह्मलोकपर्यंत प्राप्त भए हैं तिसके ऊपर देवता सामवेदकी ध्वनि करते हैं अरु गायन करते हैं, किसी ओरते जलकारि पूर्ण बडे मेघ विचरते हैं, कहूं पुष्पकारि पूर्ण लता हैं, कहूं जलके झरने बहते हैं, कंदरोंकेसाथ उछलते हैं, मानों समुद्रके तरंग जाते हैं, कहूं पक्षी शब्द करतेहैं,

कहूं कंदराविषे सिंह गर्जते हैं, कहूं कल्पवृक्ष कदंबवृक्ष हैं; कहूं अप्सरागण विचरते हैं, गंगाका प्रवाह चला जाता है, किसी स्थानविषे महासुंदर रत्नमणि रमणीय विराजते हैं, तहां गंगाके तटपर स्नाननिमित्त मुनीश्वर विश्राम करता भया; सो कैसा तट है, सुंदर वृक्ष अरु स्वर्णके कमलकरि शोभता है, तहां महातपस्वी ज्ञानवान् उदारबुद्धि मुनि दीर्घतपा भया है, तपकी मानों मूर्त्ति स्थित है, मुनि स्त्रीसंयुक्त गंगाके तटपर शोभता भया, तिसके दो पुत्र थे, महासुंदर चंद्रमाकी नाईं तिनका मुख था, पुण्य अरु पावन जिनका नाम तिन संयुक्त तटपर रहने लगा, जब केताक काल व्यतीत भया, तब पुण्य नामक जो पुत्र था, सो ज्ञानवान् होता भया, अरु पावन अर्धप्रबुद्ध भया, जैसे संध्याकी पूर्व अवस्थामें कमल अर्धोन्मीलित होता है, तैसे सो पुण्यगुणोंकरि पावनसों अधिक होता भया; अरु पावन लोलुप अवस्थाविषे रहा, पुण्य ज्ञानवान् भया, जब कालचक्रके फिरते हुए केतेक वर्षगण व्यतीत भए,तब दीर्घतपाका शरीर जर्जरीभूत हो गया, शरीरकी क्षणभंगुर अवस्था देखिकारि वृत्ति देहते विरक्त करता भया. अर्थ यह कि, विदेह होनेकी इच्छा करता भया, तब दीर्घतपाको पुर्यष्टका कलनारूप शरीरको त्यागत भई, जैसे सर्प कंचुकीको त्याग देवै, तैसे पर्वतकी कंदराविषे जो आश्रम था, तिसविषे शरीरको उतारि दिया, तब कलनाते रहित अचैत्य चिन्मात्र सत्ता स्वरूपविषे स्थित भया, रागद्वेषते रहित जो पद है, तिसविषे शरीरको त्यागिकारि प्राप्त भया, जैसे धूम्र आकाशविषे जाय स्थित होवै, तैसे चिदाकाशविषे स्थित भया, तब मुनीश्वरकी स्त्री भर्त्ताका शरीर प्राणोंते रहित देखत भई, जैसे दंडते कमल काटा होवै, तैसे चित्तविना शरीरको देखत भई, चिरपर्यंत योगकर्म किया था, तिसकारि अपने शरीरको त्यागने लगी, तब प्राण अरु पवनको वश करिके शरीरको त्यागत भई, जैसे भँवरा कमलिनीको त्यागै तैसे त्यागिकारि भर्त्ताके पदको प्राप्त भई, जैसे आकाशविषे चंद्रमा अस्त होता है, अरु तिसकी प्रभा तिसके पाछे अदृष्ट होवै, तैसे दीर्घतपाकी स्त्री दीर्घतपाके पाछे अदृष्ट भई, जब दोनों विदेहमुक्त भए, तब पुण्य जो बड़ा पुत्र था, तिसके दैहिक कर्मविषे सावधान होइकारि कर्म करने लगा, अरु पावन मातापिताते रहित दुःखको प्राप्त भया,

शोककरिकै चित्त उपहत व्याकुल होगया, वनकुंजोंविषे भ्रमने लगा, जब पुण्य माता पिताकी देहादिक क्रिया कर रहा, तब जहां पावन शोककारि विलाप करता था तहां आया, अरु शोक संयुक्त भाईको देखिकरि कहत भया ॥ पुण्य उवाच ॥ हे भाई! शोक गणको क्यों प्राप्त भया है, जो वर्षाकालके मेघवत् आंसुओंका प्रवाह चला जाता है, ऐसा रुदन तू करता है ॥ हे बुद्धिमान्! तू किसका शोक करता है, तेरे पिता अरु माता तौ आत्मपदको प्राप्त भये हैं, जो मोक्षपद है, सोई सर्व जीवोंका स्थान है, अरु ज्ञानवान्का स्वरूप है, यद्यपि सबका अपना आप स्वरूप एकही है, तौ भी ज्ञानवान्को इसप्रकार भासता है, अरु अज्ञानीको ऐसे नहीं भासता, सो तौ वह ज्ञानवान् थे, अपने स्वरूपको प्राप्त भये हैं, तिनका शोक तू किसनिमित्त करता है, यह क्या भावना तुझने बांधी है, मोक्षदायक जो संसारविषे शोक है, सो तू करता नहीं अरु जो शोक करने योग्य नहीं सो करता है, न वह तेरी माता थी, न वह तेरा पिता था, न तू उनका पुत्र था अरु कई तेरे माता पिता हो गए हैं, अरु कई पुत्र हो गए हैं, असंख्यवार तू इनका पुत्र हुआ है, अरु असंख्य पुत्र उनने उत्पन्न किये हैं, जैसे नदी अनेक तरंगोंको उत्पन्न करती है, तैसे अनेक तेरे पिता माता हुए हैं, अरु तू उनका पुत्र होइकारि मरगया है, जैसे पत्र फूल फल लता वृक्षमें लगते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, ऐसे पुत्र मित्र बांधवके समूह तेरे जन्मजन्मके बीति गए हैं, जैसे ऋतुऋतुविषे बड़े वृक्षोंकी शाखामें फल होते हैं, अरु नष्ट हो जाते हैं, तैसे जन्म होते हैं, अरु नष्ट होते हैं, तू काहेको मातापिताके स्नेहकारि शोक करता है, अपर जो तेरे सहस्रों माता पिता होइकारि बीति गए हैं, तिनका शोक काहेको नहीं करता जो तू इस जन्मके बांधवोंका शोक करता है, तौ उनका भी शोक कर ॥ हे महाभाग! जो प्रपंच तुझको दृष्ट आता है सो जाग्रत् भ्रम है, परमार्थते न कोऊ जगत् है, न कोऊ मित्र हैं, न कोउ बांधव है जैसे मरुस्थलविषे बड़ी नदी भासती है, परंतु तिसविषे जलका एक बूँद भी नहीं पाता तैसे वास्तवते जगत् कछु नहीं पाता, जो बड़े लक्ष्मीवान् तुझको भासते हैं छत्र चामरों संपन्न शोभते हैं सो यह लक्ष्मी चंचलस्वरूप है केते दिनोंते अभाव हो जाते हैं ॥ हे पुत्र! तू परमार्थदृष्टिकरिकै विचारि

देख न तू है, न जगत् है, यह दृश्य भ्रांतिरूप है, इसको अंतरते त्याग इस मायादृष्टिकारि वारंवार उपजता है अरु बिनशता है यह जगत् अपने संकल्पते उपजा है, इसविषे सत् पदार्थ कोऊ नहीं अज्ञानरूप मरुस्थल है तिसविषे जगत्‌रूपी नदी है; तिसते शुभ अशुभरूपी तरंग उपजते हैं; बहुरि नष्ट हो जाते हैं॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे पावनबोधवर्णनं नाम एकोनविंशतितमः सर्गः ॥ १९ ॥

पुण्य उवाच ॥ हे भाई ! कई माता; कई पिता हो होकरि मिटि गए हैं जैसे वायुसों धूलिके कण उड़ते हैं तैसे बांधव हैं न कोऊ मित्र है न कोऊ शत्रु है, संपूर्ण जगत् भ्रांतिरूप है, तिसविषे जैसी भावना फुरती है, तैसेही हो भासती है, बांधव मित्र पुत्र आदिकोंविषे स्नेह होता सो मोहकरि कल्पित है, अपने मनकरि मातापितादिक संज्ञा कल्पी है, प्रपंचविषे जैसी संज्ञा कल्पता है, तैसी हो भासती है. जहां बांधवकी भावना होती है, तहां बांधव भासता है, जहां औरकी भावना होती है, तहां और हो भासता है, अरु जो अमृतविषे विषकी भावना होती है, तौ अमृत भी विष हो जाता है, कछु अमृतविषे विष नहीं, भावनारूप भासताहै तैसे न कोऊ बांधवहै न कोऊ शत्रु है, विद्यमान सर्वकाल एक सर्वगत सर्वात्मा पुरुष स्थित है तिसविषे अपनी अरु औरकी कल्पना कोऊ नहीं अरु जेते कछु देहादि हैं सो रक्तमांसादिक समूह करि रचे हैं तिनविषे अहं सत्ता सो कौन है ? अहंकार अरु चित्त बुद्धि मन कौन है, परमार्थदृष्टिकारि यह तौ कछु नहीं विचार कियेते न तू है, न मैं हौं, पुण्य अरु पावन दोनों मिथ्या भ्रमकरि भासते हैं एक अनंत चिदाकाश आत्मसत्ता सर्वदा है, तिसविषे तेरी माता कौन है, अरु पिता कौनहै, सर्व मिथ्या भ्रमक ज्ञानकरि भासते हैं एक अनंत चिदाकाश आत्मसत्ता सर्वदा है, तिसविषे तेरी माता कौन है, अरु पिता कौनहै, सर्व मिथ्या भ्रमकरिकै भासता है, वास्तवते कछु नहीं, शरीरकरि देखिये, तौ जेते कछु शरीर हैं, सो पंचतत्त्वोंकरि रचे जडरूपहैं, तिनविषे जो चेतन है, सो तौ एकरूप है, तिसविषे अपना अरु पराया कौन है, इस भ्रमदृष्टिको त्यागिकरि तत्त्वका विचार कर, मिथ्या भावनाकरिकै माता पिताके निमित्त क्यों शोकवान् हुआ है, जो सम्यक् दृष्टिको आश्रय करिकै तिस स्नेहका शोक कर्त्ता है, तौ और जन्मोंके तेरे बांधव मित्र हैं, तिनका शोक क्यों नहीं करता, अनेक पुष्पलताविषे तू मृगपुत्र हुआ था, तिस जन्मके तेरे अनेक मित्र बांधव

थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता, अनेक कमलोंसंयुक्त तालावमें हस्ती आय विचरे थे, तहां तू हस्तीका पुत्र था, तिन हस्ती बांधवोंका शोक क्यों नहीं करता, बड़े वनविषे वृक्ष हुए थे, तेरे साथ फल पत्र हुए थे,अनेक वृक्ष तेरे बांधव थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता, बहुरि नदी तालावविषे मत्स्य हुए थे, तिन मत्स्य जातिके बांधव थे, तिनका शोक क्यों नहीं करता, बहुरि दशार्ण देशविषे काक वानर हुआ, तुषार्ण देशविषे तू राजपुत्र हुआ बहुरि वनकाक हुआ, वंगदेशविषे तू हाथी भया, विराज देशविषे तू गर्दभ हुआ, सावल देशविषे सर्प भया, अरु वृक्ष हुआ, वंग देशविषे गृध्र हुआ, मालवदेशविषे पर्वतविषे पुष्पलता हुआ, मंदराचल पर्वतविषे गीदड़ हुआ, कौशल देशविषे तू ब्राह्मण भया, वंग देशविषे तीतर हुआ, तुषार देशविषे घोड़ा भया, बहुरि कीट अवस्थाविषे अनेक वार भया, बहुरि एक नीचग्रामविषे बछरा हुआ, पंचदश मास तहां रहा, बहुरि एक वनविषे तडाग था, तहां कमलपुष्पविषे भ्रमर भया, सो तू मेरा भाई है, इत्यादिक अनेक जन्म तू पायेहैं, जंबूद्वीपविषे तू अनेकवार उत्पन्न भया है ॥ हे भाई ! इसप्रकार वासनापूर्वक वृत्तांत मैंने कहाहै,जैसी वासना हुईहै तैसे जन्म तू पायाहै, सो सूक्ष्म निर्मल बुद्धिकरि देखता हौं कि, ज्ञानविना तू अनेक जन्म पाया है, तिन जन्मोंको जानिकै किस किस बांधवका शोक करैगा; अरु किसका स्नेह करैगा, जैसे वह बांधव थे, तैसे यह भी जानि ले, अरु मेरे भी अनेक बांधव हुए हैं जिनजिनविषे जन्म पाया है, अरु बीतिगए हैं, तैसे सर्व मेरे स्मरणविषे आते हैं, अरु अब मुझको अद्वैत ज्ञान भया है ॥ हे भाई ! त्रिरागदेशविषे मैं तोता भया, तड़ागके तटपर हंस भया हौं, पंखीविषे काक हुआ हौं, बहुरि बेलि हुआ हौं, वंगदेशविषे वृक्ष हुआ, इस वन पर्वतविषे वड़ा उष्ट्र होइकरि विचरा हौं, पौंड्रदेशविषे राजा हुआ हौं, सह्याचल पर्वतकी कंदराविषे गीदड हुआ हौं, सो तू वहां बड़ा भाई भया, तहां मैं मृग होइकरि दश वर्ष रहा, बहुरि पंचमास मृग रहा, सो तेरा भ्राता होइकरि रहा, सो तेरा बड़ा भ्राता हौं, इसप्रकार ज्ञानते रहित वासना कर्मके अनुसार जन्मविषे भ्रमते फिरे हैं, मैं तुझको सर्व कहा है, सब मुझको स्मरणविषे आता है, इसप्रकार जगज्जालकी स्थिति मैं तुझको कही है, तेरे मेरे अनेक जन्मके माता पिता

भाई मित्र भए हैं, तिनका शोक तू क्यों नहीं करता ! यह संसार दुःखसुखरूप अप्रमाण भ्रमरूप है, इस कारणते सबको त्यागिकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, सब प्रपंच भ्रांतिरूप है, इसकी वासना त्याग, जब अहंकार वासनाको त्याग करै, तब तिस पदको प्राप्त होवैगा, जहां ज्ञानवान् प्राप्त होते हैं, ताते हे भाई ! यह जो जीवभाव है, जन्ममरण ऊर्ध्व जाना बहुरि गिरना यह जो व्यवहार है, तिसविषे बुद्धिवान् शोकवान् नहीं होता, दुःखके निवृत्ति अर्थ अपने स्वरूपका स्मरण करते हैं, सो स्वरूप भावअभावते रहित जरामरणते रहित नित्य शुद्ध परमानंद है, तू तिसका स्मरण कर, मूढ मत होहु, तुझको न सुख है, न दुःख है, न जन्म है, न मरण है, न माता है, न पिता है, तू एक अद्वैत रूप आत्मा है, और किसीका साथ संबंध नहीं, काहेते कि, इतर कछु नहीं ॥ हे साधु ! यह जो नानाप्रकारका संसारविषयसंयुक्त यंत्र है, अज्ञानरूप नटुआ इसको ग्रहण करता है, इष्ट अनिष्टकरि बंधायमान होता है, जो आत्मदर्शी पुरुष हैं, तिनको कछु क्रिया स्पर्श नहीं करती, केवल सुखरूप है, अरु जो अज्ञानी है, सो देह इंद्रियोंके गुणोंविषे तद्रूप हो जाता है; इष्ट अनिष्टकरि सुखदुःखका भोक्ता होता है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो देखनेहारे साक्षीभूत होते हैं, कर्ता हुआ भी अकर्तारूप है, जैसे दीपक प्रकाशरूप होइकरि रात्रिको सब जगत्के अर्थ सिद्ध करता है, अरु अपनी इच्छाते रहित है, ताते अकर्ता है, तैसे ज्ञानवान् देह, इंद्रियोंके कर्म करता भी अकर्ता है, इष्टअनिष्टकी प्राप्तिविषे रागद्वेषते रहित है, जैसे दर्पणविषे प्रतिबिंब आइ पड़ता है, परंतु दर्पण भले बुरे रंगकरि रंजित नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् रागद्वेषकरिकै रंजित नहीं होता, सब इच्छाते अरु भयकलनाते रहित स्वच्छ आत्मसत्ता सदा प्रफुल्लितरूप है, पुत्र कलत्र बांधवोंके स्नेहते जिसका हृदयकमल रहित है, सर्व इच्छा अहं ममते रहित अपने स्वरूपविषे संतुष्टवान् होता है, ताते मिथ्या देहादिकोंकी भावनाको त्यागिकरि अपने नित्य शुद्ध शांत परमानंदस्वरूपविषे तू भी स्थित होहु, तू परब्रह्मरूप है, अरु अति निर्मलरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे पावनबोधो नाम विंशतितमः सर्गः ॥ २० ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार पुण्यने पावनको बोध उपदेश किया, तब पावन बोधको प्राप्त भया,

जैसे प्रातःकालविषे पृथ्वी प्रकाशवान् होती है, अरु तम नष्ट हो जाता है, तैसे पावन [illegible] बोध [illegible] भया, तब दोनों ज्ञानवान्के पार
गामी होइकरि बनविषे विचरने लगे, निरिच्छित आनंदित पुरुष चिरकालपर्यंत [illegible]रत भ[illegible] बहुरि दोनों विदेहमुक्त निर्वाणप
दको प्राप्त हुए, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे प्रारब्ध कर्मके क्षीण हुएते दोनों विदेहमुक्त भए ॥ हे रामजी ! इस
प्रकार तू भी जान, जैसे वह मित्र बांधव धनादिकके स्नेहते रहित होइकरि विचरैं, तैसे तुम भी स्नेहते रहित होइकरि विचरो, जैसे उन्होंने
विचार किया, तैसे तू भी कर इस मिथ्यारूप संसारविषे किसकी इच्छा करै, और किसका त्या[illegible] करै, ऐसे विचारकरि अनंत इच्छा अरु
तृष्णाका त्याग करना यह औषध है इच्छा तृष्णाकी पालना औषध नहिं काहेते जो पालनेकरि पूर्ण कदाचित् नहीं होती, जेता कछु
जगत् है, सो चित्तते उत्पन्न भया है, चित्तके नष्ट हुएते संसारदुःख नष्ट हो जाता है, [illegible] काष्ठके पावनेकरि अग्नि बढता ज[illegible]ता है,
अरु काष्ठोंते रहित शांत हो जाता है, तैसे चित्तकी चितवनाकरिकै जगत् विस्तारको [illegible]ता है, चितवनाते रहित शांत हो जाता
है ॥ हे रामजी ! ध्येय वासनावान् त्यागरूप रथपर आरूढ होइकरि होहु, अरु करुणा [illegible]या उदा[illegible]संयुक्त होइकरि लो[illegible]विषे
विचरहु, इष्ट अनिष्टविषे रागद्वेषते रहित होहु, यह ब्रह्मस्थिति तुमको कही, निष्काम निर्दोष स्वस[illegible]थ, [illegible]रि बहुरि [illegible]को
प्राप्त नहीं होता, इसका परम आकाशही हृदय मात्र विवेक है, बुद्धि इसकी सखी है, जिसके [illegible]विषे आते हैं, [illegible] बुद्धि [illegible] मुझ[illegible]
परम व्यवहार करते भी संकटको प्राप्त नहीं होते, ताते तू परमविवेक अरु बुद्धिको संग [illegible]खीविषे काक हुआ हौं, [illegible]हुरि बोलि
दुःखकरि मोहित न होवैगा, नानाप्रकारके दुःख संकट स्नेह आदिक विकाररूप समुद्र है, तिसके[illegible]षे राजा हुआ हौं, सह्याचल पर्वतकी
है और कोऊ उपाय नहीं सो धैर्य क्या है दृश्य जगतसों वैराग्य अरु सच्छास्त्रका विचार अ[illegible]बहुरि पंचमास मृग रहा, सो तेरा भ्राता
प्राप्ति होती है, सो आत्मपद त्रिलोकीके ऐश्वर्यरूपी रत्नोंका भांडार है, जो त्रिलोकीके ऐश्व[illegible]न्मविषे भ्रमते फिरे हैं, मैं तुझको सर्व
अभ्यास बड़े गुणोंकरि चित्तके धारणे[illegible] पाता है, तबलग यह पुरुष जगतको [illegible]विषे उपजता [illegible] तेरे मेरे अनेक जन्मके माता पिता

नहीं होता तबलग कष्ट है, जब आत्मविवेकसों मन पूर्ण होता है, तब सर्व जगत् अमृतरूप भूप है, इस कारणते सबको त्यागिकरि सर्व चर्मसों वेष्टित होजाती है, तैसे पूर्णपद इच्छा तृष्णाके त्यागनेकरि पाता है, जैसे शर वासनाको त्याग करै, तब तिस पदको होता है, तैसे इच्छाते रहित पुरुष निर्मल होता है, जिन पुरुषोंके हृदयविषे आशा फुरती र्ध्व जाना बहुरि गिरना यह जो व्यव है, जैसे अगस्त्यमुनीने समुद्रको पान किया तब समुद्र जलते रहित शून्य हो गया, तैसे [illegible] करते हैं, सो स्वरूप भावअभावते हो जाता है, जिस पुरुषके चित्तरूपी वृक्षविषे तृष्णारूपी चंचल मर्कटी रहती है, तिसको [illegible] न सुख है, न दुःख है [illegible] होती है, अरु जिसका चित्त तृष्णाते रहित है, तिस पुरुषको तीनों जगत् म[illegible]लकी डोडीवत् [illegible] देते कि, इतर [illegible] सुगम हो जाते हैं अरु महाकल्प अर्धनिमेषवत् हो जाता है ॥ हे रामजी ! ऐसा शीतल चंद्रमा अरु [illegible] भी नहीं, ऐसा शीतल केलेका वृक्ष अरु चंदन भी नहीं, जैसा शीतल चित्त तृष्णाते रहित होता है, पूर्ण[illegible]सीका [illegible]मा अरु क्षीरसमुद्र भी ऐसा सुंदर नहीं होता, अरु लक्ष्मीका मुख भी ऐसा नहीं होता, जैसा इच्छाते रहित मन शो[illegible]यमान होता है, जैसे चंद्रमाकी [illegible]भाको मेघ आच्छादि लेता है, अरु जैसे शुद्ध स्थानोंको अपवित्र लेपन मलिन करता है [illegible] अहंतारूप पिशाचिनी पुरुषोंको मलिन करती है, चित्तरूपी जो वृक्ष है, तिसके बड़े टास दिशा विदिशा पसर रहे हैं, सो आशारूप हैं, जब विवेकरूपी कुहाडेसे तिसको काटै तब अचित्त पदकी प्राप्ति होवै, अरु जिनकी अनेक शाखा हैं, तिसको जब काटै तब एक स्थानरूपी चित्त रहै, अविवेक अधैर्य शाखा तृष्णासंयुक्त हैं; सो अनेक शाखा बहुरि होवैगी, तब आत्मधैर्यको धरहु, जो चित्त वृद्धताको न प्राप्त होवै, उत्तम धैर्यकरिकै चित्त जब नष्ट हो जावैगा, तब अविनाशी पदको प्राप्त होवैगा । हे रामजी ! उत्तम हृदयरूपी क्षेत्र है, तिसविषे जब चित्तकी स्थिति होती है, तब आशारूपी दृश्यको नहीं उपजने देती, ब्रह्मरूप शेष रहता है, जब तुम्हा[illegible] चित्त[illegible]निते रहित अचित्तरूप होवैगा, तब मोक्षरूप जो विस्तृत पद है, सो प्राप्त होता है, अरु चित्तरूपी उलूक पक्षी है, तिसर्क[illegible] तृष्णाह[illegible] है, ऐसा पक्षी जहां विचरता है,

तहाँ अमंगलको विस्तारता है, जहां उलूकपक्षी विचरते हैं, तहाँ उजाड़ होती है, विवेकादि जन ताते रहित हो गये हैं; ताते तू चित्तकी वृत्तिते रहित होउ, ऐसे होइकारि विचरैगा, तब अचिंत्य पदको प्राप्त होवैगा, जैसी २ वृत्ति फुरती है, तैसा तैसा रूप जीवको हो जाता है, इसकारणते चित्त उपशमके निमित्त तुम यही वृत्ति धरो, जिसकरि आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे महात्मा पुरुष ! जिसको संसारके पदार्थोंकी इच्छा ईषणा उपशम हुई है, अरु भावअभावते मुक्त भया है चित्त जिसका, सो उत्तम पदको पाता है, अरु जिसका चित्त आशारूपी फाँसीसे बांधा है, सो मुक्त कैसे होवै, आशासंयुक्त कदाचित् मुक्त नहीं होता, अरु सदा बंधायमान् रहता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे तृष्णाचिकित्सोपदेशो नाम एकविंशतितमः सर्गः ॥ २१ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो मैंने तुमको उपदेश किया है; तिसको विचारो, हे रघुकुलआकाशके चंद्रमा ! बलवंत बुद्धिसों मेरे वचनोंको विचारिकरि निर्मल ज्ञानको प्राप्त होहु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! सर्व धर्मोंके वेत्ता ! तुम्हारे प्रसादते जो कछु जानने योग्य था, सो जाना है, अरु पाने योग्य पद पाया है, निर्मल पदविषे विश्राम किया है, कि भ्रमरूपी मेघते रहित शरत्कालके आकाशवत् निर्मलचित्त भया हौं, मोहरूपी अहंकार नष्ट हो गया है, अमृतकरिकै हृदय पूर्णमासीके चंद्रमावत् शीतल भया है, संशयरूपी मेघ नष्ट हो गया है, परंतु तुम्हारे वचनरूपी अमृतको पान करता तृप्त नहीं होता, अरु जिसप्रकार बलिको विज्ञानबुद्धि भेद प्राप्त भया है, सो बोधकी वृद्धिके निमित्त मुझको ज्योंका त्यों कहो, नम्रीभूत शिष्यप्रति कहते हुए बड़े खेद नहीं मानते, ताते प्रगट कर कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव ! बलिका जो उत्तम वृत्तांत है सो मैं कहता हौं, सो तू श्रवण कर, तिसकरि निरंतर बोधको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! इस जगत्की किसी एक दिशाविषे जिसका पाताल नाम प्रसिद्ध है, सो इस लोकके अधः पृथ्वीविषे स्थित है, तिस पातालविषे बलि राजा रहता था, महाक्षीरसमुद्रकी नाईं सुंदर उज्वल स्थान है, कहूं महासुंदर नागकन्या विराजती हैं, कहूं विषधर सर्प विराजते हैं, सहस्र शीश जिनके, कहूं दैत्यपुत्र विराजते हैं, कहूं कट कट शब्द होते हैं, कहूँ सुंदर सुखके स्थान हैं, कहूं जीवोंके परंपरासमूह ॥ ३०१

नरकोंविषे जलते हैं, कहूं दुर्गंधके स्थान हैं, सप्त पाताल हैं, सर्वविषे जीव स्थित हैं कहूं रत्नकरि खचित स्थान हैं, कहूं देवता अरु दैत्य जिसके चरणोंको शीशपर धरते हैं,ऐसे भगवान् कपिलदेव बैठे हैं, कहूं सुगंधित रत्नका बाग है, ऐसे पातालविषे दो भुजाकरि पालित करी है पृथ्वी जिसने, ऐसा दानवोंविषे श्रेष्ठ विरोचनका पुत्र राजा बलि होता भया, सर्व देवता विद्याधर अरु किन्नर जिसने लीलाकरिकै जीते हैं, अरु त्रिलोकी अपने वश कर छोड़ी है, सब टहलुएवत् हो रहे हैं, सर्व देवतोंका राजा जो इंद्र है, सो तिसके चरणसेवनकी वांछा करता है, अरु त्रिलोकीविषे जो जाति जातिके रत्न हैं, सो सब तिसके विद्यमान रहते हैं, सब शरीरोंकी रक्षा करनेहारा, अरु भावनाके धर्मोंको धरनेहारा, विष्णुदेव जिसका द्वारपाल है, अरु ऐरावत हस्ती, जिसके गंडस्थलसे मद झरता है; सो इंद्रका हस्ती तिसकी वाणी सुनि भयमान होता है, जैसे मोरकी वाणी सुनिकरि सर्प भयमान होता है, ऐसा तिसका तेज, जैसे सप्त समुद्रोंका जल कुहिड क्षीर शोष लेती है, जैसे प्रलयकालके द्वादश सूर्यकरि समुद्र सूखने लगता है, अरु ऐसे यज्ञ करे जिसके क्षीर घृतकी आहुतीका धुवाँ मेघबादल होइकरि पर्वतोंपर विराजे, अरु जिसकी दृढ दृष्टिसों देखनेकरि कुलाचलपर्वत भी नम्रीभूत हो जावै, जैसे फलोंकरि पूर्ण लता नमती है, तैसे अरु लीला करिकै भुवनको विस्तारसहित जीता है त्रिलोकीको जीतिकरि दश कोटि वर्षपर्यंत राजा बलि राज्य करता भया, तब एक दिन राजा बलि सुमेरुके शिखर जैसे ऊँचे झरोखेविषे जाय स्थित भया, सो राजा बलिने युगोंके समूह व्यतीत हुए देखे हैं, देवता दैत्य उपजते अरु मिटते जिसने अनेक वार देखे हैं, त्रिलोकीके भोग भोगे हैं, सो भोगोंते उद्वेग पाया, तब ऊंचे झरोखेमें एकलाही बैठिकरि संसारकी स्थितिको चिंतवत भया, सो इस बड़े राज्य चक्रवर्त्तीकरि मुझको क्या प्रयोजन है यद्यपि त्रिलोकीका राज्य बड़ा है, तौ भी क्या आश्चर्य है, इसविषे मैं चिरकाल भोग भोगता रहा हौं, परंतु शांति प्राप्त न भई, अरु यह भोग आपातरमणीय हैं, उपजिकरि बहुरि नष्ट हो जाते हैं, भोगोंकरि शांतिसुख प्राप्त नहीं भया, अरु वारंवार मैं वही कर्मव्यवहार करता हौं, बहुरि दिन, रात्रि, बहुरि वही क्रिया करनी, तिसविषे लज्जा भी नहीं आती, अरु

वही स्त्री आलिंगन करनी, बहुरि भोजन करना, पुष्पोंकी शय्यापर शयन करना, क्रिया करनी, यह कर्म बड़ेको लज्जाका कारण है, तिस तिसमें निरस व्यवहार करना, जो एकबार निरस हुआ अरु उस कालमें तृप्त हुआ, बहुरि वारंवार दिनदिनविषे करते हैं, यह मैं मानता हौं, और बुद्धिमानोंको हरने योग्य लज्जाका कारण है, जीवोंके चित्तविषे वृथा संकल्प विकल्प उठते हैं, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते हैं, अरु मिटते हैं, तैसे संकल्प इच्छाजाल उठते हैं, अरु मिटते हैं, सो उन्मत्तकी नाईं जीवोंकी चेष्टा है, यह तौ हाँसी करने योग्य बालकोंकी लीला है, मूर्खताकरि अनर्थोंको पसारती है,इसविषे जो कछु वडा उदार फल होवै सो मैं नहीं देखता, इसविषे भोगोंते इतर कार्य कछु नहीं पाता, जो कछु इसते रमणीय अरु अविनाशी होवै, तिसको शीघ्रही चिंतन करौं, ऐसे विचारि करि कहने लगा, बालि जो हैं दैत्योंका राजा, सो अपने मनविषे जगत्‌को नाशवान् जानिकरि तिसी क्षणमें स्मरण करने लगा कि, मैंने जो प्रथम भगवान् विरोचनसों पूँछा था, मेरा पिता विरोचन आत्मतत्त्वका ज्ञाता था, जिसते लोकोंका आदि अंत न था. अर्थ यह कि, सर्व लोकोंविषे गमन किया था, तिससों मैंने प्रश्न किया था ॥ हे भगवन् महात्मा ! जहां सर्व दुःखोंका अरु सर्व सुखोंका अंत हो जाता है, अरु सर्व भ्रम शांत हो जाता है, सो कौन स्थान है सो मुझको कहौ, जहां मनका मोह नाश हो जाता है, अरु सर्व इच्छाते मुक्त होता है, रागद्वेषते रहित जिसविषे सर्वदा विश्रामवान् होता है, बहुरि क्षोभ नहीं रहता, अरु हे तात ! वह कौन पद है, जिसके पायेते और पावना कछु नहीं रहता, अरु जिसका दर्शन देखेते और देखना कछु नहीं रहता, यद्यपि अत्यंत जगत्‌के भोगपदार्थ हैं, तौ भी सुखदायक नहीं भासते हैं. काहेते कि क्षोभ करते हैं, अरु योगीश्वरोंके मन भी मोहिकरि गिर पडते हैं ॥ हे तात ! जो सुख सुंदर विस्तीर्ण आनंद है, सो तैसा मुझको कहौ, तिसविषे स्थित हुआ मैं सदा विश्राम पाऊंगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे विरोचनवर्णनं नाम द्वाविंशतितमः सर्गः ॥ २२ ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! एक अतिविस्तीर्ण विपुल देश है, तिसविषे अनेक सहस्र त्रिलोकियां बसती हैं, अरु जहां न समुद्र है, न जलधारा है, न पर्वत है, न वन है, न तीर्थ है, न नदियां हैं,

न तालाब हैं, न पृथ्वी है, न आकाश है, न नंदनवन है. न पवन है, न अग्नि है, न चंद्रमा है, न सूर्य है, न लोक है, न देश है, न देवता, न दैत्य, न यक्ष, न राक्षस हैं. न वन हैं, न कमलोंकी शोभा है, न काष्ठ तृणभूत हैं, न चर, न अचर, न जल, न अग्नि, न दिशा हैं, न ऊर्ध्व, न अध, न मध्य है, न प्रकाश है, न तम है, अहं नहीं, न विष्णु इंद्र रुद्रादिक हैं, सो एकही है, अरु महानता नानाप्रकार प्रकाशको धरनेहारा है, अरु सर्वका कर्त्ता सर्वव्यापक है, अरु सर्वरूप है, सो तूष्णींभावसों स्थित है. तिसने सर्व मंत्रियोंसहित एक मंत्री संकल्प किया, सो मंत्री जो न बनै तिसको शीघ्रही बनाय लेता है, जो बनै तिसको न बनावै रंचक ... समर्थ है, आपते कछु नहीं भोगता, अरु जाननेको समर्थ है, केवल राजाके अर्थ सर्व कार्यका कर्त्ता है, यद्यपि आप जड़ अज्ञ है, तौ भी राजाके बलकरिकै तनुतासों ज्ञाता अरु कार्य करता है, यही सब कार्योंको करता है, तिसका महीपति जो राजा है, सो एकताविषे केवल अपने आपविषे स्थित है ॥ बलिरुवाच ॥ हे प्रभु ! आधिव्याधि दुःखते रहित जो प्रकाशवान है, सो देश कौन है ? अरु प्राप्ति किस साधनसों है ? अरु आगे किसने पाया है ? अरु ऐसा मंत्री कौन है ? अरु महाबलिराजा कौन है ? जो जगज्जालसंयुक्त हमने भी नहीं जीता. हे देव ! यह जो अपूर्व आख्यान तुमने कहा, सो आगे श्रवण भी नहीं किया था, मेरे हृदय आकाशविषे संशयरूपी बादर उदय भया है, सो वचनरूपी पवनकरिकै निवृत्त करहु ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! तिस देशविषे मंत्री भगवान् अनेक कल्प देवता अरु असुरगण होइकरि एक क्षणभी वश नहीं होता, सहस्रनेत्र जो इंद्र है, तिसके वश नहीं होता, यम कुबेर नहीं वश कर सकते, देवता असुरोंकरि भी जीता नहीं जाता, मुसल, वज्र, चक्र, गदादिक षडंग तिसकरि चलाये कुंठित हो जाते हैं, जैसे पाषाणपर चलाये कमल कुंठित होजाते हैं, सो मंत्री अस्त्र अरु शस्त्रकरि वश नहीं होता, बड़े युद्ध कर्मोंकरि नहीं पाता, देवता दैत्य सर्वको तिसने वश किया है, विष्णुपर्यंत देवता हिरण्यकशिपु आदिक असुर डारि दिये हैं, जैसे प्रलयकालका पवन सुमेरुके कल्पवृक्षको गिराइ देता है, नारायणते लेकरि देवता भी वश किये हैं, जैसे आकाशका बटलोईविषे निवास हो जाता है, तिसके प्रमादकरि इस

त्रिलोकीको वश कर चक्रवर्त्ती राजावत् स्थित है, सुरअसुरोंके समूह तिसकरि भासते हैं, यद्यपि गुह्य है, गुणहीन है, दुर्मति अरु दुष्ट अहंकार क्रोध है, सो तिसकरि उदय होता है, देवता अरु दैत्यके समूह बहुरि बहुरि उपजते हैं, सो इसकी क्रीडा है; ऐसा मंत्रोंसंयुक्त मंत्री है ॥ हे पुत्र ! जब तिसके राजाको वश करिये तब तिसके मंत्रीको वश करना सुगम होता है, राजाको वश कियेविना मंत्री वश नहीं होता, कबहूँ अंतर रहता है, कबहूँ बाह्य जाता है, जिस कालमें राजाकी इच्छा होती है कि, मंत्री अपनेको जीतै तब यत्नविना जीति लेता है, ऐसा बलि मह्ल है, जिसकरि त्रय जगत् उल्लासको प्राप्त भए हैं, कैसा मंत्री मानो सूर्य है. तिसके उदय भयेते त्रिलोकीरूपी कमलोंकी खानि विकासको प्राप्त होती है, अरु तिसके लय हुएते जगतरूपी कमल लय हो जाता है ॥ हे पुत्र ! जब जीतनेकी तुझको शक्ति है, तब तू पराक्रमवान् है, जब मोहते रहित एकत्र बुद्धि होवै, तब तिसकरि एकके जीतनेको समर्थ होवैगा, तब धैर्यवान् है, अरु सुंदर वृत्ति तेरी है, काहेते कि तिसके जीतनेते जो नहीं जीता, तिसपरि जति पाता है, अरु जो तिसको नहीं जीता, अरु अपर लोक सब जीते हैं, तौ भी जीते अजित हो जावैगा, तिस कारणते जो तू अनंत सुख चाहता है, जो नित्य अविनाशी है तौ उसके जीतनेनिमित्त यत्नसों स्थित होहु, अरु बड़े कष्ट चेष्टाकरिकै भी तिसको वश कर, सुर जो हैं देवता, असुर जो हैं दैत्य, अरु यक्ष मनुष्य अरु महासर्प किन्नरोंसंयुक्त अति बली हैं, तौ भी वश सर्व ओरते यत्न विना वश होते हैं, ताते उसको वश कर ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिवृत्तांतविरोचनगाथानाम त्रयोविंशातितमः सर्गः ॥ २३ ॥ बलिरुवाच ॥ हे भगवन् ! किस उपायकरि तिसको जीतिये ? अरु ऐसा महावीर्यवान् मंत्री कौन है, अरु राजा कौन है, यह वृत्तांत सब मुझको शीघ्र कहौ, जो उपाय करौं ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! स्थितहुएको भी त्यागने योग्य है, ऐसा मंत्री जिस उपायकरि जीतिये, सो भली प्रकार कहता हौं, तू श्रवण कर, तिस युक्ति ग्रहण कियेते शीघ्रही वश होता है, युक्तिविना वश नहीं होता, जैसे बाघको युक्ति करि वश करता है तैसे जो पुरुष युक्तिकरि मंत्रीको वश करता है, तिनको राजाका दर्शन होता है, तिसकरि परमपदको पाता है, जब

राजाका दर्शन होता है, तब मंत्री वश हो जाता है, तिस मंत्रीको वश कियेते बहुरि राजाका दर्शन होता है, जबलग राजाको न देखा, तबलग मंत्री वश नहीं होता, अरु जबलग मंत्रीको वश नहीं किया, तबलग राजाका दर्शन नहीं होता, राजाको देखेविना मंत्री जीतना कठिन है, मंत्रीके जीतेविना राजाको देखना कठिन है, तिसकारणते दोनोंका इकट्ठा अभ्यास करि राजाका दर्शन अरु मंत्रीका जीतना अपने पुरुष प्रयत्नकरि शनैःशनैः अभ्यासते होता है, दोनोंके संपादनकरि यह पुरुष शुभताको प्राप्त होता है, जब तू अभ्यास करैगा, तब तिस देशको प्राप्त होवैगा, यह अभ्यासका फल है ॥ हे दैत्यराज ! जब तिसको पावैगा, तब रंचक शोक भी तुझको न रहैगा, सब यत्नोंते शांत हो जावैगा, नित्य प्रफुल्लित प्रसन्न रहैगा जो साधुजन हैं, सो सर्व संशयते रहित तिस देशविषे स्थित होते हैं ॥ हे पुत्र ! सुन, वह देश तुझको प्रगट कर कहता हौं, देश नाम मोक्षका है, जहां सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं, अरु राजा तिस देशका आत्मभगवान् है, जो सर्व पदोंते अतीत है, तिस महाराजाने मंत्री मनको किया है, सो मन परिणामको पाइकरि सर्व ओरते विश्वरूप भया है, जैसे मृत्तिकाका पिंड घटभावको प्राप्त भया है, जैसे धूम्र बादरको धरता है, तैसे मनने विश्वरूप धरा है, तिस मनको जीतेते सब सुख विश्वकेपर जीत पाता है, मनको जीतना कठिन है, परंतु युक्तिसों वश होता है ॥ बलिरुवाच ॥ हे भगवन् ! तिस मन वश करनेकी युक्ति मुझको कहौ, जिसकरि दारुण मनको जीतौं ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, अरु गंध जो विषय हैं, तिनकी प्रतिभा जो रस हैं, तिनकी सर्वदा सर्व ओरते आस्था त्यागनी. अर्थ यह कि, नाशवंत भ्रमरूप जानना, यह मनके जीतनेकी परमयुक्ति है, मनरूपी हस्ती विषयरूपी रस मदसों मस्त है, सोई युक्तिकरि शीघ्र दमन हो जाता है, युक्ति कठिन है, अति दुःखते प्राप्त होती है, परंतु अपने अभ्यासकरि सीखनेसों प्राप्त होती है, क्रमकरि अभ्यास किए विषयते विरक्तता सर्व ओरते प्रगट होती है, जैसे रसवान् पृथ्वीते लता उपजती हैं, तैसे जो शठ जीव हैं, सो इसकी वांछा करते हैं, परंतु अभ्यासविना नहीं. प्राप्त होती, अभ्यासवान्को यह युक्ति प्रगट होती है, ताते अभ्याससहित युक्तिका आश्रय करौ, जबलग

इन विषयोंते पुरुषको विरक्तता नहीं उपजती, तबलग संसाररूपी अटवीके दुःखोंविषे भ्रमता है, सो विषयते विरक्तता अभ्यासविना किसीको प्राप्त नहीं होती, जैसे किसी पुरुषको देशांतरको जाना होवै, सो जब मार्गविषे चलता है, तब पहुँचता है चलनेके अभ्यास विना नहीं पहुँचता, तैसे जब आत्मा ध्येयको पुरुष निरंतर धरता है, तब विषयोंविषे अप्रतीति अभ्यासवान्की वृत्ति होती है, जैसे जलरूप अभ्यासकारिकै वेलिको सिंचता है, तब लता वृद्ध होती है, ऐसे ऐसे पुरुषार्थकारि सर्व कार्योंको प्राप्त होता है, इतर नहीं होता, यह निश्चय किया है, जो क्रिया आपकारि आप करिये; तिसका फल अवश्य प्राप्त होता है, सो लोकोंविषे दैव कहाता है, जो अवश्य होना है, तिसकी जो नीति है, सो दूर नहीं होती, सोई दैव शब्द कहिये, नीति कहिये, जो अपने पुरुषार्थका फल पाता है, जैसे मरुस्थलविषे भ्रमकारि जल भासता है, सम्यक्ज्ञानते भ्रम निवृत्त हो जाता है, तिस दैव अरु नीतिको अपने पुरुषार्थकारि जीतौ, जैसा पुरुषार्थकारि संकल्प दृढ़ करता है, तैसाही भासता है, जैसे आकाशको नीलता ग्रहण करती है, सो नीलता कछु है नहीं, तैसे सुखदुःख देनेहारा अपर कोऊ नहीं, जैसा संकल्प करता है, तैसा हो भासता है, अरु जैसी नीति होती है, तैसा संकल्प करता है, सोई नीतिसाथ मिलिकारि कदाचित् कर्म करता है, तिसकारि इस जगत् कोशविषे जीव शरीर धारिकारि फिरता है, जैसे आकाशविषे पवन फिरता है सो कदाचित् नीतिसों अरु कदाचित् नीतिते रहित फिरता है, तैसे दोनों सीढ़ियां मनविषे होती हैं, आकाशरूपी मनविषे नीति अनीतिरूपी वायु फुरता है; तिसकारण जबलग मन है, तबलग नीति है, अरु दैव है, मनते रहित न नीति है, न दैव है, मनके अस्तभए जो रहता है, सो तैसेही है, जीव पुरुषसों पुरुषार्थकारि जैसा संकल्प इस लोकविषे दृढ़ [illegible]को है, सो कदाचित् अन्यथा नहीं होता ॥ हे पुत्र ! अपने पुरुषार्थविना यहां कछु सिद्ध नहीं होता, ताते परम पुरुषार्थकारि विष[illegible]ये, विरक्त होहु, जबलग विरक्तता नहीं उपजती तबलग परमसुखके देनेहारी मोक्षपदवी संसारभयका नाशकर्त्ता नहीं प्राप्त होती, जन्तुके विषयोंविषे मोहकारण प्रीति है, तबलग संसारदशा डोलायमान करती है, दुःखदायक होती है, सर्पकी नाईं विषको पसारती है, जब

अभ्यास कियेविना निवृत्त नहीं होती ॥ बलिरुवाच ॥ हे सर्व असुरोंके ईश्वर ! भोगोंते विरक्तता चित्तविषे कैसे स्थित ह... को न
जीवोंको दीर्घ जीनेका कारण है ॥ विरोचन उवाच ॥ हे पुत्र ! जैसे शरत्कालमें महालतामें फूलसों फल परिपक्व होता है तैसे ...विना
वलोकनहारे पुरुषको भोगोंते विरक्तता प्रगट होती है आत्माके देखनेकारि विषयोंकी प्रीति निवृत्त हो जाती है हृदयविषे स्थित ...रु
होती है जैसे कमलोंके उदरविषे सुंदर शोभा स्थित होती है तैसे बीज लक्ष्मी स्थित होती है; ताते सूक्ष्म बुद्धि विचारवेत्ताने आ... तू
वको देखिकारि विषयोंकी प्रीति करी है सो सब ओरते निवारहु प्रथम दो भाग दिनके भोग कर्मदेहके कार्य करहु, एक भाग शा... श्री
श्रवण विचार करहु, एक भाग गुरुकी सेवा टहल करहु; जब कछु विचार संयुक्त मन होवै तब द्वै भाग वैराग्यसंयुक्त शास्त्रोंको विचारहु
अरु द्वै भाग ध्यान अरु गुरुके पूजनविषे रहो. इस क्रमकरि जीव ज्ञानकथाके योग्य होता है, क्रमकरि निर्मलभावको ग्रहण करता
है, शनैःशनैः उत्तम पदकी भावना होती है, शास्त्रोंके अर्थविचारविषे चित्तरूपी बालकको परचावहु, जब परमात्माविषे ज्ञान प्राप्त
होता है, तब कर्म फाँसीते छूटि जाता है, जैसे चंद्रमाके उदय हुएते चंद्रकांतमणि द्रवीभूत होता है, तैसे शीतल हो विराजता है,
बुद्धिके विचारसों सर्वदा शम आत्मदृष्टि देखनी अरु तृष्णाका बंधमान त्यागना यह परस्पर कारण है परमात्माके देखनेकारि तृष्णा
दूर हो जाती है अरु तृष्णाके त्यागकारि आत्माका दर्शन होता है; जैसे नौकाको मल्लाह ले जाता है अरु नौका मल्लाहको ले जाती
है तैसे परमात्माका दर्शन होता है, अरु भोगोंका त्याग होता है, इसकारि परब्रह्मविषे अनंत विश्रांति नित्य उदय होती है सो
मोक्षरूप आनंद उदय होता है तिसका अभाव कदाचित् नहीं होता; सो आनंद जीवोंको आत्मविश्रांतिविना नहीं प्राप्त होता, न
तपोंकारि, न दानोंकारि, न तीर्थोंकारि होता है, जब आत्मस्वभावका दर्शन होता है, तब भोगोंते विरक्तता उपजती है, सो आत्मस्व
भावका दर्शन अपने प्रयत्नविना और किसी युक्तिकारि नहीं प्राप्त होता है ॥ हे पुत्र ! भोगोंका त्याग करना, अरु परमार्थदर्शनका यत्न
करै, तब ब्रह्मपदविषे विश्रांत परमानंद मोक्षको प्राप्त होता है, ब्रह्माते आदि काष्ठपर्यंत इस जगत्विषे ऐसा आनंद कोई नहीं पाता,

जैसा परमात्माविषे स्थित भयेते पाता है,ताते पुरुषप्रयत्नका आश्रय करौ,दैवको दूरते त्यागौ, इस मार्गको रोकनेहारे भोग हैं तिनकी निंदा बुद्धिमान् करते हैं, जब भोगोंकी निंदा दृढ भई, तब विचार उपजा है, जैसे वर्षाकाल गएते सर्व दिशा शरत्कालकी निर्मल हो जाती हैं, भोगोंकी निंदाते विचार अरु विचारते भोगोंकी निंदा, यह परस्पर होते हैं, जैसे समुद्रकी अग्निसे धूम उदय होता है, सो वादलरूप होइकरि वर्षणेसों समुद्रको पूर्ण करता है, अरु जैसे मित्र आपसों परस्पर कार्य सिद्धकरि देता है, ताते प्रथम तौ दैवका अनादर करौ, पुरुषप्रयत्नकरि दंतोंसों दंत मरोड भोगोंकी प्रीति त्यागौ, पुरुषार्थकरि प्रथम अविरोध उपजावहु, सो गुणवान् अपने जन्म अरु कल्याणमूर्त्तिको अर्पण करहु, भोगोंते असंग होइकरि निंदा करहु, तव विचार उपजैगा; शास्त्रज्ञानको बहुरि संग्रह करौ, तव परमपदकी प्राप्ति हो जावैगी॥ हे दैत्यराज ! समय पाइकरि जब तू विषयोंते विरक्तचित्त होवैगा,तव विचारके वशते परमपदको पावैगा; अपने आपविषे जो पावन पदहै, तिसविषे भलीप्रकार अत्यंत विश्राम पावैगा; बहुरि कल्पना दुःखविषे न गिरैगा; अंग देशाचारके कर्मकरि अल्पधन उपजावना, बहुरि निंदाकरि साधुसंग लगावना, तिनके संगकरि वैराग्य अरु विचारसंयुक्त हुएते तुझको आत्मलाभ होवेगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपाख्याने चित्तचिकित्सोपदेशो नाम चतुर्विंशतितमः सर्गः॥२४॥

वलिरुवाच ॥ इसप्रकार मुझको पूर्व पिताने कहा था, अब मैं स्मृति दृष्टिकरि प्रसन्नताको प्राप्त भया हौं अरु भोगोंते, विरक्तता उपजी है, जो शांत अरु शम निर्मल अमृतरूपी शीतल सुखविषे स्थित होऊं, धन एकत्र करता है, तौ नाश हो जाता है, बहुरि आशा उपजती है, बहुरि धनकरि पूर्ण होता है, बहुरि स्त्रियोंकी वांछा उपजती है, बहुरि अंगीकार करते हैं, अब मैं विभूतिकी स्थितिकरि खेदवान् भया हौं, अहो आश्चर्य है, इस रमणीय पृथ्वीते समशीतल चित्त होता हौं, दुःख सुखकी दशाते रहित सर्व शांतिको प्राप्त होता हौं जैसे चंद्रमाके मंडलविषे स्थित हुआ शमशीतल होता है, तैसे अंतरते हर्षवान् शीतल होता हौं, दुःखरूपी विभूति ऐश्वर्यते रहितहुआ अक्षोभ होवैगा, यह सव मनरूपी बालककी दिन दिन प्रति कला है, अंगोंसों अंग मांससों मांस, प्रथम मैं स्त्रीसों

चढ़ता था मोहकारि मेरी प्रीति वढि गई थी जो कछु दृष्ट देखनेयोग्य था सो मैंने देखा है सो यह शोक है, जो कछु भोगने योग्य था सो चिरकालपर्यंत अखंड भोगा है, सर्व भूतजातको वश कर रहा है तासों क्या भोगनीक हुआ वहुरि २ तिनविषे वही चेष्टाकारि और और देखै, इसकारि चित्त अपूर्व पदार्थको नहीं देखता वही वही जगतके पदार्थ हैं, ताते अपनी बुद्धिकारि सर्वसों निश्चय त्याग कारि पूर्ण समुद्रवत् अपने आपकारि आपविषे स्वच्छ स्वस्थ स्थित होहु, पाताल पृथ्वीविषे स्वर्गविषे स्त्रियां अरु रत्नपन्नगादिक सार हैं सो भी तुच्छ हैं, समय पाइकारि काल ग्रास लेता है एते कालपर्यंत वालक था जो तुच्छ पदार्थ मनके रचे हुए हैं तिनकी इच्छासों दुःखकारि देवतोंकेसाथ दोष करता था, तिनके दुःखोंके त्यागनेकारि क्या महात्माका अनर्थ होवैगा वडा कष्ट है कि, मैंने चिरकाल अनर्थविषे अर्थबुद्धि करी थी अज्ञानरूपी मदकारि मत्तता था जैसे वालक कूकरोंको सेवता है चंचल तृष्णाकारिकै इस जगत्विषे क्या नहीं किया जो कार्य पाछे तापको वढ़ावते हैं सो मैंने किये हैं, अब पूर्व तुच्छ चिंताकारि क्या मुझको है वर्तमान चिकित्सा पुरुषार्थकारि सफल होवैगा जैसे समुद्र मथनेकारि अमृत प्रगट भया है तैसे अपरिमितरूप आत्माकी भावनाकारि अव सर्व ओरते सुखी होवैगा मैं कौन हौं इस आत्माका दर्शन युक्ति गुरूते पूछौंगा अज्ञानके नाशनिमित्त शुक्र भगवान्का चिंतन करौं जो प्रसन्न होइकारि उपदेश करैगा; तिसकारि अनंत विभव अपने आपविषे आपकारि स्थित होवैगा निष्काम पुरुषोंका उपदेश मेरे हृदयविषे फलैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वलिचिंतासिद्धांतोपदेशो नाम पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतनाकारि बलि नेत्रोंको मूंदत भया, अरु शुक्रजीका ध्यान किया, कैसा शुक्र है, आकाशविषे मंदिर है जिसका, सर्वत्र पूर्ण जो चिन्मात्र तत्त्व है, सदा तिसके ध्यानविषे स्थित है, ऐसे भार्गवका आवाहनरूप ध्यान करत भया, तब शुक्रजी जानता भया, कि हमारे शिष्य वलिने हमारा चिंतन किया, तब चिदात्मस्वरूप भार्गव अपने देहको तहां ले आवत भए, जहां रत्नके झरोखेविषे वलि वैठा था, तब बलि उज्ज्वल प्रभारूप गुरुको देखिकारि उठा, अरु चित्त प्रफुल्लित हो आया, जैसे सूर्यमुखी कमल

सूर्यको देखिकारि प्रफुल्लित होते हैं, तैसे रत्न अर्घ्य पाद्य पुष्पोंकरि चरणवंदना करत भया, रत्न करि अर्घ्य दिया, बडे सिंहासनपर बैठाइकरि कहत भया ॥ बलिरुवाच ॥ हे भगवन् ! तुम्हारी कृपाते मेरे हृदयते जो प्रतिभा उठती है सो स्थिर होइकारि मुझको प्रश्न विषे जोडती है । जैसे सूर्यकी प्रतिभा जीवको कार्यविषे जोडती है, तैसे अब मैं भोगोंते विरक्त भया हौं, सो कैसे भोग हैं, जो मोहके देनेहारे हैं, अरु तत्त्वज्ञानकी इच्छा करता हौं, जिसकारि महामोह निवृत्त हो जाता है, इस ब्रह्मांडविषे स्थिर वस्तु कौन है, और केताक तिसका प्रमाण है, इंद्र क्या है, अरु अहं क्या है, मैं कौन हौं, तुम कौन हो ? अरु यह लोक क्या है ? इन प्रश्नोंका उत्तर कृपा कर कहो ॥ शुक्र उवाच ॥ हे दैत्यराज ! बहुत कहनेकारि क्या है, मैं आकाशविषे गमनकिया चाहता हौं, ताते सर्वका सार संक्षेपते मैं तुझको कहता हौं, सो श्रवण कर, जो चेतन तत्त्व है, अरु विस्तृतरूप है, इदं यह सर्व चेतनमात्र है, अरु चेतनही प्रमाण है, तू भी चेतनस्वरूप है, मैं भी चेतन हौं, यह लोक भी चेतनरूप है, यह सबका सार है, इस निश्चयको अंतर दृढ कर धरैगा, तब निर्मल निश्चयात्मक बुद्धिकरि अपनेको आप करि देखैगा, अरु तिसते विश्रांतिवान् होवैगा ॥ हे रामजी ! जब तू कल्याणमूर्ति है, तब इसी कहनेकरि सब सिद्धांतको प्राप्त होवैगा, सबका सार चिदात्मा है, तिसको पावैगा, अरु जो कल्याणमूर्ति नहीं, तौ बहुरि कहना भी निरर्थक होता है, भस्मविषे आहुतिकी नाईं होता है, चेतनको जो चैत्यकलाका संबंध है, सोई बंधन है, तिसते जो मुक्त है सोई मुक्त है अरु आत्मतत्त्व चेतनस्वरूप चैत्यकलनाते रहित है, यह सर्व सिद्धांतका संग्रह है ॥ हे राजन् ! इस निश्चयको धारि निर्मल बुद्धि सों अपने आपकारि आपको देखौ, यह आत्मपदकी प्राप्ति है; अब मैं आकाशको जाता हौं; सप्त ऋषिसाथ कोऊ देवताका कार्य है, तिसनिमित्त जाता हौं, जबलग यह देह है, तबलग मुक्त बुद्धिको यथाप्राप्त कार्य त्यागने योग्य नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे कहिकारि बड़े वेगसाथ आकाशको शुक्र चला, जैसे समुद्रते तरंग उठिकारि लीन हो जावै तैसे शुक्रजी अंतर्धान हो गए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बल्युपदेशो नाम षड्विंशतितमः सर्गः ॥ २६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! देवता अरु दैत्यकरि पूजे

योग्य भृगुपुत्र शुक्र है, तिसके गमन कियेते बलवानोंविषे श्रेष्ठ जो है बलि, सो मनविषे चिंतवता भया कि, भगवान् शुक्रजी क्या कह गए ? त्रिलोकी चिन्मात्ररूप है, मैं भी चेतन हौं, दिशा भी चेतनरूप हैं, परमार्थते आदि जो चेतन सत्स्वरूप है, तिसते भिन्न कछु नहीं, यह जो सूर्य है, तिसमें चेतन होवै नहीं तौ सूर्यका सूर्यत्वभाव भासे नहीं, अरु यह जो भूमि है, तिसको चेतन चेतै नहीं तौ भूमिविषे भूमित्वभाव कोऊ नहीं पाता, यह जो दश दिशा हैं, इनको चेतन चेतै नहीं तौ दिशाविषे दिशात्वभाव कोई नहीं रहता, पर्वतविषे पर्वतता भी चेतनविना नहीं, यह जगत्विषे जगद्भाव आकाशविषे आकाशता शरीर लक्षण कोऊ चेतनविना न पाइये. इंद्रियां भी चेतन हैं, मन भी चेतन है, अंतर बाह्य चेतन है, चिदात्माही अहं त्वं भावरूप होइकारि स्थित है, मैं चेतन हौं, सब इंद्रियां संयुक्त विषयोंका स्पर्श मैं करता हौं, अरु कदाचित् कछु किया नहीं, अरु काष्ठ लोष्ट तुल्य शरीरसाथ मेरा क्या है, संपूर्ण जगत् मैं आत्मा चेतन हौं, आकाशविषे एक मैं आत्मा हौं, सूर्यविषे भी मैं हौं;और भूतपिंजरविषे भी चैतन्य आत्मा हौं, देवता दैत्यविषे भी मैं चैतन्य आत्मा हौं, स्थावरजंगमका चेतन आत्मा मैं हौं, आत्मा एक अद्वैत चेतन है, और द्वैतकलना नहीं पाती, जो इस लोकविषे द्वैतका असंभव है; तौ शत्रुकौन है, अरु मित्र किसको कहिये, बलि है नाम जिसका ऐसा जो शरीर है तिसकाशीश काटा तौ आत्माका क्या काटा जो सर्व लोकोंविषे आत्मा पूर्ण है जब चित्त दुःखको चेतता तब है, दुःखी होता है चेतनते रहित दुःखको नहीं पाता तिस कारणते जो दुःखदायक भाव अभाव पदार्थ भासते हैं, सो सर्व चेतन आत्मरूप है, चेतनत्त्वते भिन्न कछु नहीं है सब ओरते आत्मा पूर्ण है, आत्माते इतर जगत्का कछु व्यवहार नहीं, न कोउ दुःख है न कोऊ रोग है न मन है, न मनकी वृत्ति है, एक शुद्ध चेतनमात्र आत्मा तत्त्व है, और विकल्पकलना कोई नहीं, सब ओरते चेतनस्वरूप व्यापक है, नित्य आनंद अद्वैतरूप विकल्पकलना कोई नहीं, सर्वते अतीत हौं, अंशांशीभावते रहित, चेतनसत्ता हौं, अरु चेतन आदिक नामते भी रहित हौं, चेतन आदिक नाम भी मेरे व्यवहार के निमित्त कल्पे हैं, जो चेतन आत्माकी [illegible]रणशक्ति है, सोई विस्तारकरि

जगत्रूप होइकारि भासती है, द्रष्टादर्शनते मुक्त केवल अद्वैतरूप है प्रकाशप्रकाशकभावते रहित निराभास हौं, द्रष्टा परमेश्वररूप हौं, न मैं कर्ता हौं, न भोक्ता हौं.मैं केवल द्रष्टा निरामयरूप हौं कलनाकलंकते रहित हौं, इनते पर हौं अरु यह स्वरूप भी मैं हौं, यह मेरेविषे आभास मात्र है, मैं उदित नित्यरूप हौं, आभासते भी रहित मैं एक प्रकाशरूप हौं, स्वरूपकरिकै मेरा जो चित्त है सो दृश्यके रागते रहित मुक्तरूप है, जो प्रत्यक्ष चेतन मेरा स्वरूप है, तिसको नमस्कार है, चित्त जो है दृश्य तिसते रहित है, युक्ति अयुक्ति सर्वका प्रकाश स्वरूप मैं हौं मुझको नमस्कारहै चित्तते रहित मैं चेतन हौं, सब ओरते शान्तरूप हौं, फुरणेते रहित भलीप्रकार शान्त जो मैं संवित् मात्र विस्ताररूप हौं, आकाशकी नाईं मैं अनंत सूक्ष्मते सूक्ष्म हौं, दुःखसुखते मुक्त हौं, संवेदनते रहित असंवेदनरूप हौं, चैत्यते रहित चेतन हौं,जगत्के भाव अभाव पदार्थ मुझको छेदि नहीं सकते, अथवा यह जगत्के पदार्थ छेदते हैं सो भी मुझते भिन्न नहीं, छेद मैं हौं, छेदन हारा भी मैं हौं जो स्वभावभूत वस्तुकरि वस्तु ग्रहण होतीहै, अथवा नहीं होती, तौ भी किस करि किसका नाश होवै ? मैं सर्वदा सर्व प्रकार सर्वशक्तिरूप हौं, संकल्पविकल्पकारि अब क्या है, मैं एकही चेतन अजडरूप होइकारि प्रकाशता हौं, जेते कछु जगज्जाल हैं, सो सब मैंही हौं, मुझते इतर कछु नहीं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार चिंतवता हुआ राजा बलि तत्त्वका वेत्ता, तब ॐकारकी धर्ममात्रा तुरीयापदकी भावनासों ध्यानविषे स्थित भया, भलीप्रकार संकल्प तिसके शांत हो गए हैं, सब कलना चित्त चैत्यते रहित निःसंग होइकारि स्थित भया, बहुरि कैसा भया जो ध्याता है अहंकार, अरु जो ध्यान है मनकी वृत्ति, अरु जो ध्येय है, जिसको ध्याता था सो तिनोंते रहित हुआ, मनते सर्व वासना नष्ट हो गईं, जैसे वायुते रहित अचलरूप दीपक प्रकाशता है, तैसे बलि शांतरूप पदको प्राप्त भया, मन शांत हो गया, रत्नोंके झरोखेविषे बैठ दीर्घकाल बीत गया, जैसे स्तंभविषे पुतली होवै, तैसे सर्व ईषणाते रहित समाधि स्थित रहा, सब क्षोभ दुःख विघ्नते रहित निर्मल चित्त शरत्कालके आकाशवत् हो रहा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे बलिविश्रांतिवर्णनं नाम सप्तविंशतितमः सर्गः ॥ २७ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार दैत्यराजा समाधिविषे स्थित

भया, अरु केताक काल व्यतीत भया, तब बांधव मित्र टहलुए मंत्री थे सो रत्नोंके झरोंखेविषे देखने चले कि, राजा बलिको क्या भया, ऐसे विचारिकारि किंवाडोंको खोलि ऊपर जाय चढे, कुकह अरु देवादि मंत्री, अरु मंडलेश्वर राजा, अरु यह ग्रीवादिक बांधव सुहृद् बालक थे सो ऊपर चले गए, यक्ष, विद्याधर, अरु नाग एक ओर हो खडे हैं, रंभा अरु तिलोत्तमादिक अप्सरागण हाथोंविषे चमर ले खडी हैं, नदियां समुद्र पर्वत आदिक मूर्ति धारिकारि स्थित भए हैं, रत्न आदिक भेट लेइकारि सर्व प्रणाम निमित्त खडे भए, त्रिलोकीके उदरवर्ती जो कछु थे, सो आय स्थित भये, अरु राजा बलि ध्यानविषे स्थित था, मानो चित्रकी मूर्ति लिखछोडी है, पर्वतवत् स्थित है, तिसको देखिकारि दैत्य प्रणाम करत भए, केई देखिकारि शोकको प्राप्त भये, केई आश्चर्यवान् भए, केई आनंदवान् भए, केई भयको प्राप्त भए, तब देखिकारि मंत्री विचारत भए कि, राजाको क्या दशा प्राप्त भई है, तब राजाके निमित्त भार्गव शुक्रजीका चिंतवन करत भया जो गुरु है, सर्वका वेत्ता है, तब चिंतवन कियेते भार्गव जिसका बडा प्रकाश है, सो झरोंखे विषे आय प्राप्त भया जैसे गंधर्वनगर देखनेविषे आते हैं, तैसे आए, तिसको देखिकारि सब दैत्यगण पूजन करत भए, अरु बडे सिंहासनपर गुरुको आरूढकिया, अरु बलिको ध्यान स्थित देखिकर शुक्रजी अतिप्रसन्न भए जो पद मैंने उपदेश किया था, तिसविषे विश्राम पाया, देखा बडा आनंद है, जो विचार करिकै बलिने परमपद पाया है, भ्रम इसका अब नष्ट भया है, क्षीर समुद्रवत् इसका प्रकाश है, ऐसे देखिकारि शुक्रजी कहत भए ॥ शुक्र उवाच ॥ बडा आश्चर्य है, जो दैत्यराज अपने विचारकारि निर्मल आत्मप्रकाशको पाया है अब भगवान् सिद्ध भया है, अपने स्वरूपविषे विश्रांतिको पाया है, जो सब दुखोंते रहित पद है, तिसविषे स्थित भया, चिंता भ्रम इसका क्षीण भया है, मोहरूपी कुहिड नष्ट भई अब इसको मत जगाउ. यह आत्मज्ञानको प्राप्त भया है यत्न क्लेश इसका दूर हो गया है, जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है, अब मैं इसको जगावता नहीं, सो

आपही चिरकालते जागैगा, काहेते जो प्रारब्ध अंकुर इसका रहता है, यह उठिकरि अपना राज्यकार्य करैगा, दिव्य सहस्र वर्षते यह जागैगा, अब तुम इसको मत जगावौ, अपने राज्यकार्यविषे जाय वर्तौ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार शुक्रजीने कहा, तब सुनकर सूखे वृक्षकी मंजरीः जैसे हो गया तब शुक्रजी अंतर्धान हो गया, अरु दैत्य अपने राजा वैरोचनकी सभाविषे जाइकरि अपने अपने व्यवहारविषे जाय वर्तै, और खेचर भूचर पातालवासी थे सो अपने अपने स्थानको गए. देवता, दिशा, पर्वत समुद्र, नाग किन्नर, गंधर्व सब अपने व्यवहारविषे जाय वर्तै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठेः उपशमप्रकरणे बलिविज्ञानप्राप्तिर्नाम अष्टाविंशतितमः सर्गः ॥ २८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब दिव्य सहस्र वर्ष व्यतीत भये तब दैत्यराजा समाधिते उतरा, नौबत नगारे बाजने लगे, देवता दैत्य बड़े जयजय शब्द करने लगे, नगरवासी प्रबुद्ध भए देखिकरि बड़ी प्रसन्नताको प्राप्त भए, जैसे सूर्यके उदय हुएते कमल खिलि आते हैं, तैसे खिलि आए, जबलग दैत्य न आये, तबलग राजा चिंतवता भया, बडा आश्चर्य है, जो परमपदकी ऐसी रमणीय पदवी शांतरूप शीतल है तिसविषे स्थित होइकरि मैं परमविश्राम पाया हौं, ताते बहुरि उसी पदका आश्रय करौं, तिसीविषे स्थित होऊं, राज्यविभूतिसे मेरा क्या प्रयोजन है, ऐसा आनंद शीतल चंद्रमाके मंडलविषे भी नहीं पाता, जैसा अनुभवविषे स्थित हुएते पाता है ॥ हे रामजी! इसप्रकार चिंतनाकरि बहुरि समाधि करने लगा, जो गलित मन होवै, तब दैत्यसेना मंत्री भृत्य बांधव आय वेष्टित भए, जैसे चंद्रमाको मेघ घेरि लेता है, तैसे घेर करकै दैत्य प्रणाम करने लगे, बड़े पर्वतोंकी नाईं अचल आकार जो है बलिराजा, सो मनविषे विचरता भया, सो कैसा राजा है कि, क्षीण भएहैं संकल्प जिसके सो विचारता भया कि, मुझको त्यागनेयोग्य क्या है, अरु ग्रहण करने योग्य क्या है, त्याग तिसका करता है, जो अनिष्ट दुःखदायक होवै अरु ग्रहण तिसका करता है, जो आगे न होवै, सो आत्माते व्यतिरेक कछु नहीं , तिसविषे ग्रहण त्याग किसका करौं, अरु मोक्षकी इच्छा भी मैं किसकारणते करौं, काहेते जो बंध होता है, तौ तिसते मोक्षकी इच्छा करता है, सो बंध नहीं

तौ मोक्षकी इच्छा कैसे होवै ? यह बंध अरु मोक्ष बालकको क्रीड़ा कही है, न बंध है, न मोक्ष है, यह कल्पना भी मूढ़ताविषे है सो मूढता मेरी नष्ट भई है, अब मुझको ध्यान विलाससे क्या प्रयोजन है, अरु ध्यानकरि क्या है, अब मुझको न परमतत्त्वकी इच्छा है, न कछु ध्यानसे प्रयोजन है. अर्थ यह कि, न विदेहमुक्तिकी इच्छा है, न जगत्‌विषे स्थित रहनेकी इच्छा है, न मैं मरता हौं न जीता हौं, न सत्य हौं न असत्य हौं, न सम हौं न विषम हौं, न कोऊ मेरा है, न कोऊ अपर है, अद्वैतरूप मैं एक आत्मा हौं, सो मुझको नमस्कार है, इस राजक्रियाविषे मैं स्थित हौं, तौ भी मैं आत्मपदविषे स्थित हौं, सदा शीतल हौं, ध्यान दिशाकरि मुझको सिद्धता नहीं, न राजकार्य विभूतिकरि कछु सिद्ध होता है, जय अजय सो न मैं यह कछु हौं, न मेरा कछु है, ताते राजकार्य करि मेरा कछु प्रयोजन नहीं, मैं आकाशवत् होइ रहता हौं, जो मैं न कछु इच्छा करौंगा, न राज्य करौंगा, तौ भी मेरा कार्य कछु सिद्ध नहीं होता, ताते जो कछु प्रकृत आचार है, तिसीको मैं करौं, बंधनका कारण अज्ञान है, सो मेरा अज्ञान नष्ट भया है, कोऊ क्रिया मुझको बंधनरूप नहीं, ताते जो कछु प्रकृत आचार है, तिसको करौं ॥ हे रामजी ! इसीप्रकार निर्णय करिके बलि दैत्योंकी ओर देखता भया, तब देवता अरु दैत्य सब शीशकरि प्रणाम करत भए, तब दृष्टि करिकै तिनकी प्रणाम वंदना अंगीकार करत भए, जैसे पवन पुष्पोंकी सुगंधि लेता है, तब राजा बलिने ध्येय वासनाको मनते त्याग कीनी अरु राज्यके कार्य करता भया. ब्राह्मण; देवता, गुरुका पूजन करता भया, जिस जिसप्रकार सो जिस जिसका पूजन करना था सो यथायोग्य किया ; और जो कोऊ अर्थी थे मित्र बांधव टहलुए, तिनका अर्थ पूर्ण करता भया, अरु ललना जो स्त्रियां थी, तिनको नानाप्रकारके वस्त्र भूषण देता भया; जो शासना दंड देनेयोग्य दुष्ट थे, तिनको दंड करता भया, बहुरि यज्ञका आरंभ किया, तिस यज्ञविषे स्वरगणोंको पूजता भया. शुक्रजीते आदि ले जो बड़े मुख्य देवता यज्ञ कराने निमित्त बैठे थे, सो शुक्र कैसा था, जिसने भोगविलासको क्षणभंगुर जाना है सो अरु सबको वांछित सिद्धताके निमित्त प्राप्त किया है, अपना शरीर ऐसा जो है हरि विष्णु, भोगोंते अचाह है चित्त जिसका,

तिसने इंद्रके अर्थ सिद्ध करनेनिमित्त, कैसे हैं इंद्र; जिसके वह क्रमकारि बड़ा भया है, तिस विष्णु भगवान्ने कर्ममात्र छलको धारा, तिसकारि बलिराजाको वंचित कर लिया, तब बांधिकारि पातालविषे स्थित किया, जैसे वानरको बांधते हैं तैसे बांधा, अबलग पातालविषे स्थित है, बहुरि इंद्र होवैगा, अब जीवन्मुक्त स्वस्थ वपु सदा ध्यानस्थित ईषणाते रहित पुरुष पातालविषे है ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्त पुरुष जो बलि है, सो संपदा आपदाविषे समचित्त विचरता है, संपदाविषे हर्ष नहीं, आपदाविषे शोक नहीं, दुःखसुख विषे समचित्त है जिसका, जैसे मूर्तिका लिखा सूर्य उदय अस्तते रहित होता है, अनेक जीवोंका उपजना अरु लय होना बलि देखता भया, अरु दश करोड वर्षपर्यंत तीनों लोकोंका कार्य करता भया, बड़े विषयभोग भोगे, अंत भोगोंको विरस जानिकारि तिसका मन विरस हुआ, विचारकारि तृष्णा नष्ट हो गई, मन उपशम हुआ है, हेयोपादेयकी चेष्टा नानाप्रकार बलिने देखी, पदार्थोंके भाव अभावविषे मन शांतिको न प्राप्त भया, अब भोगोंकी अभिलाषा त्यागिकारि आत्मारामी भया, नित्य स्वरूपविषे स्थित पाताल कोटरमें विराजता है ॥ हे रामजी ! इस बलिको बहुरि इस जगत्का इंद्र होना है, संपूर्ण जगत्का कार्य करना है, अनेक वर्ष आज्ञा चलावैगा, परंतु इंद्रपदको पाइकारि तुष्टवान् न होवैगा, अपने ऐश्वर्यपदके गिरनेकारि खेदवान् भी न होवैगा, सर्व पदार्थ विभूतिके उदय अस्तविषे अमर होवैगा, आकाशकी नाईं दोनोंविषे रागद्वेषते रहित अचल रहैगा, यह बलिके विज्ञान प्राप्तिका क्रम वृत्तांत कहा है, इसी दृष्टिको आश्रय करि तुम भी स्थित होहु, बलिकी नाईं अपने विवेककारि नित्यतृप्त आत्म निश्चयको धारौ कि, सर्व मैं हौं, इस निश्चयकारि निर्द्वंद्वपदको प्राप्त होवैगा; अपने पुरुषार्थकारि बलिकी नाईं निश्चयको धारिकारि परमपदको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! दशकरोड वर्ष तीन लोकका राज्य बलि भोगता भया, अंतमें विरक्तताको प्राप्त भया ॥ तैसे तू भी भोगोंते विरक्त होहु, यह भोग तुच्छ हैं, इनको त्यागिकारि परमपदविषे प्राप्त होहु, यह जो दृश्य प्रपंच नाना प्रकारके विकारसंयुक्त भासता है, सो न कोउ तेरा है, न तू किसीका है, जैसे पर्वत अरु शिलाविषे बड़ा भेद है, तैसे जिस पुरुषका

मन संसारकी ओर धावता है, सो मनकी वृत्तिविषे डूबता है, जब तू मनको हृदयकोटरविषे धरैगा, तब सब जगत्का प्रकाश होवैगा, तू आत्मस्वरूप है, तौ अपना क्या अरु पराया क्या ? यह सब मिथ्या कल्पना है, तू सबका आदिपुरुषोत्तम है, तूही साकाररूप पदार्थ है, तूही सब ओर पूर्ण है, सब जगत्‌विषे चेतनरूप है, स्थावर जंगम जगत् सब तुझकरि परोया है, जैसे सूतकरि मणिके परोये हैं, नित्य शुद्ध उदित बोधस्वरूप है, भ्रांतिते रहित है; जन्म आदिक सर्व रोगके नाशनिमित्त आत्मविचारकरि बलात्कारसों भोगोंका त्यागकरि सर्वका भोक्ता होहु । तू केवल स्वरूप जगत्का नाथ है, चैतन्य सूर्य प्रकाशरूप सर्वदा स्थित है, सर्व जगत् तेरे प्रकाशकरि प्रकाशता है, सुखदुःखकी कल्पना तेरेविषे कोई नहीं, तू शुद्ध सर्वात्मा सर्वप्रकाशक है, इष्टअनिष्टको त्यागिकरि केवल अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, इष्टअनिष्टके त्यागते निरंतर सत्यता उदय होती है, तिस सत्यताको हृदयविषे धारिकैार फिर जन्ममरण भी नहीं आता, जिस जिस पदार्थविषे मन लगै, तिसते निकासिकरि आत्मतत्त्वविषे जोड़हु, जब इसप्रकार तू दृढ़ अभ्यास करैगा, तब मन जो उन्मत्त हस्ती है, सो बाधा जावैगा, तब सर्व सिद्धांतके परमसारको तू प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! तू मूढोंकी नाईं मत होहु, मूढ जीव सब चेष्टा मिथ्याही करता है, मिथ्या चेष्टाकरि जिनकी बुद्धि नष्ट भई है अरु अविद्यारूपी धूर्तते विके हैं, तिनके तुल्य न होहु, यह जगत् अणुमात्र भी कछु है नहीं, बड़ा विस्ताररूप जो दृष्ट आता है, सो निर्णयकरि देखा है, जो मूढ़ताकरिकै भासा है, मूढ़ता परम दुःखरूप है, इसते अधिक दुःख कोऊ नहीं आत्मारूपी सूर्यके आगे आवरणकर्त्ता अज्ञानरूपी मेघहै, तिसको विवेकरूपी पवनकरि नाशकरौ, तब आत्माका साक्षात्कार होवैगा, वैराग्य अरु अभ्यासकरि साक्षात्कार होवैगा, आत्मविचारके अभ्यास अरु विषयोंते वैराग्यविना आत्माका साक्षात्कार नहीं होता, वेदरूप वेदांतशास्त्रहै, अरु जो द्रष्टा तर्कयुक्त है, तिनकरि भी अपने विचारविना साक्षात्कार नहीं होता, आत्मविचारकरि पुरुषार्थकरि आत्माकी प्रसन्नता होती है, अरु बुद्धिकी निर्मलतासों बोधकरि प्राप्ति होती है, ताते संकलपविकलपते रहित होइकारि चेतनतत्त्वविषे स्थित होहु,

विस्तृत व्यापकरूप जो आत्मतत्त्व है, तिसकी स्थिति मेरे वचनोंकरि ग्रहणकरि सर्व संकल्प तेरे लीन हो गए हैं, संवेदनरूपी भ्रम शांत भया है, संसार कौतुकरूपी कुहिड़ तेरी नष्ट हो गई है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वल्युपाख्यानसमाप्तिवर्णनं नाम एकोनत्रिंशातितमः सर्गः ॥ २९ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! अब तू विज्ञानप्राप्तिके कारण और क्रम सुन, जैसे दैत्य असुर प्रह्लादको आत्माकी सिद्धता भई तैसे तू भी होहु, पातालकोटरविषे एक हिरण्यकशिपु दैत्य होता भया; सो कैसा था, जिसने देवतोंके इंद्र भगाए हैं, विष्णुजीके समान जिसका पराक्रम, अरु संपूर्ण भुवन भोग जिसने वशकारि छोड़े थे, सर्व देवता दैत्यको वश करिकै जगत्का कार्य करता भया, दैत्योंका ईश्वर अरु तीनों भुवनोंका ईश्वर भया, समय पाइकारि पुत्रोंको उत्पन्न किया, जैसे वसंतऋतु अंकुरको उत्पन्न करती है. बड़ा ऐश्वर्यवान् होइकारि वृद्ध भया, सर्व दिशाविषे सूर्यकी नाईं प्रकाश किया, आकाशको ग्रहण करि चिरकालपर्यंत प्रकाश आच्छादि लिया, तिसके पुत्रविषे बड़ा पुत्र प्रह्लाद होता भया, सो प्रह्लाद सबसों अधिक प्रकाशवान् भया, तिस पुत्रकरि हिरण्यकशिपु शोभता भया, जैसे सर्व सुंदर लताकरि वसंतऋतु शोभती है, तैसे अपने बल अरु पुत्रोंकी सुंदरता अरु ईश्वर भंडार तिनोंकरि हिरण्यकशिपु शोभता भया, इन लोकोंको अपने वश किया, जैसे प्रलयकालविषे सूर्य सब लोकोंको तपाता है, तैसे तपाने लगा, दुष्ट क्रीड़ाकरि देवतोंको दैत्य दुःख देवैं, तब सब देवता मिलिकरि विष्णुकी शरण गए, अरु विनती करी कि, यह हिरण्यकशिपु महादुष्ट है, तिसका नाश करौ, अरु हमारी रक्षा करौ, वारंवार दुखावनेकरि महापुरुष भी क्रोधवान हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार देवतोंने प्रार्थना करी, तब विष्णुदेवने कहा, अब तुम जाओ, मैं तिसको पुत्रके हेतुकरि मारौंगा, ऐसे कहिकरि अंतर्धान हो गया; अरु हिरण्यकशिपु अपने ऐश्वर्यकी शिक्षा प्रह्लादको देवै, परंतु वह ग्रहण न करै, बहुतप्रकार करि उसको ताडना भी देवै, तौ भी उसकी शिक्षाका प्रह्लाद अंगीकार न करै, वह ईश्वर विष्णुजीकी आराधनाविषे रहै, इसकारणते ताडनाका दुःख प्रह्लादको कछु न होवै, तब दैत्य अपने हाथमें खड्ग लेकरि

कहने लगा ॥ हे दुष्ट ! तेरा ईश्वर कहां है, जिसका तू आराधन करता है; अब मुझविना ईश्वर अपर कौन है; तब प्रह्लादने कहा, मेरा ईश्वर सर्वव्यापक है, तब हिरण्यकशिपुने कहा, इस स्तंभविषे कहां है, जो है तो दिखाय दे, न दिखावैगा तो तुझको मारौंगा. तब सर्वव्यापक जो विष्णु सो स्तंभसों भासने लगे, बड़े शब्द होने लगे, तिस स्तंभको फोडिकारि भुजा अरु वज्रको तोडनेहारे बड़े नखों संयुक्त विष्णु प्रगट भये, महाभयानकरूप, बड़े हस्तीके समान दंत, ऐसे स्थित जैसे बिजलीका प्रकाश होवै, अरु अग्निकी नाई कुंडल प्रकाश, अरु दो भुजा मानो ब्रह्मांड खपरके तोडनेहारी हैं, मुखते श्वास जो निकसता है, सो पर्वतोंका चूर्ण करनेहारा है, अरु कोपरूपी अग्नि प्रलयकालकी अग्नितेभी अधिक है, अरु बड़े सूर्यवत् प्रकाश करै, ऐसे महाभयानक नरसिंहरूप विष्णुदेवने करिकै हिरण्यकशिपुको नखोंसे विदारण किया; अरु ऐसा कोपवान् रूप धरा, जिसकरि दैत्योंके स्थान जलने लगे, अरु दृष्टिकरि मानो, पर्वत चूर्ण होते हैं, अरु नरसिंहरूप वायुके चलनेकरि दैत्य उडते हैं, अरु दैत्यके समूह कई मारे, कई भाग गए, दिशा विदिशाको दौडि गए, जैसे वायुके मारे मच्छर उड जाते हैं, पाताल छिद्रमें कछु नाशहो गये, प्रलयकालवत स्थान शून्यहो गए, मानो अकाल प्रलय आयाहै, दैत्य नाश हो गए, दैत्योंका नाश कर बहुरि विष्णुदेव अंतर्धान होगए, कछुक दैत्य बांधव टहलुए रहे थे, सो प्रह्लादके निकट आए, मुख कुँभलाय गए, जैसे जलते रहित कमल होता है, भाई बांधव मिलिकर प्रल्हादको समुझावने लगे, प्रल्हादने मिलि करि पिताकी परिदेवना करी, बहुरि उठिकरि सब कर्म किये, संशयकरि दैत्य भी बैठे, अरु विचारकरि शोकवान् हो, सब दैत्य सूखकर चित्रकी पुतली हो गए, जैसे दग्ध वृक्ष सूखि जाता है, अरु रसते रहित हो जाता है, तैसे हिरण्यकशिपुविना दैत्य शोकवान् महादुःखी भए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे हिरण्यकशिपुवधवर्णनं नाम त्रिंशतितमः सर्गः ॥ ३० ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब हिरण्यकशिपुके मारणेकारि दैत्य बहुत दुःखी भए, तब प्रह्लाद मौनवान् होइकारि चिंतवता भया, पाताल कोटर विषे सब दैत्य मिलिकारि चिंतासंयुक्त बैठे तिनसे प्रह्लाद कहत भया कि, अब अपनी रक्षाके निमित्त कौन उपाय करिये, हमारे दैत्यके

नाश करनेहारा विष्णु तौ बड़ा बली है, जिसके नख तीक्ष्ण खड्गकी धारावत हैं, जैसे सिंह मृगोंको मारता है, तैसे हमको मारता है, पाताल कोटरविषे दैत्य शांतिवान् कदाचित नहीं होते हैं, जब दैत्य वर्धमान होते हैं, तब विष्णु आय नाश करता है, जैसे कमलोंपर पर्वत आय पडै, तैसे चूर्ण करता है, बडे आकाश गौरव शब्द करनेहारे दैत्य उपजि उपजि नष्ट हो जाते हैं, जैसे जलविषे तरंग उपजि उपजि नष्ट हो जाते हैं, तैसे अंतर बाहिर हमको कष्ट देता है, हमारा शत्रु बड़ा दृढ है, बड़ा अपूर्वतम आय बढा है, हमारा हृदय तमकरि पूर्ण हो गया है, संपदा नष्ट हो गई है, जो हमारे पिताकरि देवता चूर्ण भए थे, तिनका बल हमते अधिक हो गया है हमारी स्त्रियोंको वश करि ले गए हैं, जैसे मृगको व्याध ले जाता है, अरु धन लक्ष्मी हमारा सब ले गए हैं, हम दीन हो रहे हैं, जैसे जलविना कमल कुँभलाइ जाता है, तैसे हम बांधवविना भए हैं, हमारे घरोंविषे धूलि उड़ती है, जो बड़े स्थान मिलिकारि खचित किए थे, सो शून्य हो गए, जो हमारे स्थान बड़े कल्पवृक्ष थे, सो उखाडिकारि नंदनवनविषे जाय लगाये हैं, नरसिंहजीकी सहायताकारि ऐसा बल देवता पाये हैं, हमारे वृक्ष स्थान नरसिंहजीने जलाय दिए हैं, जो देवतोंकी स्त्रियोंके मुख दैत्य देखते थे, सो अब दैत्योंकी स्त्रियोंके मुख देवता देखते हैं, कल्प मंदार वृक्षोंके समूह दैत्योंके स्थानविषे थे, अरु सुमेरु पर्वतविषे विराजेथे, सो स्थान अब शून्य हो गए, धूलि उड़ती है, सुमेरु दुर्लभ हो गएहैं, जो दैत्योंकी स्त्रियां अपने स्थानविषे बैठी थीं, सो अब देवांगनोंके शिरपर चमर करती हैं, अरु वह हास्यविलास करती हैं, यह बड़ा कष्ट है, हमको आपदाने दीन किये हैं. हे दैत्यो! हमको और उपाय कोई दृष्ट नहीं आता, जब उसही विष्णुकी शरणको जावैं, तब सुखी होवैं, वह कैसा पुरुषहै, जिसके दो भुजारूपी वृक्षकी छायाविषे देवता विश्राम करतेहैं, विष्णुके प्रतापकारि तपायमान भी नहीं होता, जैसे हिमालय पर्वत कदाचित् तपायमान नहीं होता, तैसे जो पुरुष विष्णुकी शरण जाता है, सो तपायमान नहीं होता, ताते हम भी उसीकी शरणको प्राप्त होवैं, तुम देखते हो कि, जो देवांगना असुरोंकी स्त्रियोंका पूजन करती थीं, सो अब अपनेको पुजावने लगी हैं, हम दैत्योंकी स्त्रियोंके मुख कुँभलाय गये हैं, जैसे बर्फकी वर्षाकारि कमल

सूखि जाता है, तैसे हमारे मंडप टूटि गए हैं, नील मणिनके स्तंभ थे, सो गिर पडे हैं, दैत्यसेना जो आपदाके समुद्रविषे डूबतीथी, तिसके रक्षा करने को वडा समर्थ था, डूबने न देता था, जैसे क्षीरसमुद्रविषे मंदराचलको कच्छपरूपने डूबने न दिया, तैसे हमारे पितादि जो वडे वडे वली रक्षा करनेहारेथे, तिनको विष्णुजीने मारि चूर्ण किये, जैसे प्रलयकालका पवन पर्वतोंको चूर्ण करता है, उनका मित्र सुहृद् होता है, ऐसे मधुसूदनकी गति अति विषम है, दैत्योंकी भुजारूपी दंड हैं, तिनके काटनेहारा कुठार है, तिनकी साह्यताकारि इंद्रादिक देवता दैत्यसेनाको जीतने मारने लगे हैं जैसे वालकको वानर मारै, यह पुंडरीकाक्ष विष्णुको जीतना कठिनहै, जो यह शस्त्रोंविना होवै, तौ भी हमारे शस्त्र इनको छेदि नहीं सकते, वज्र भी छेदि नहीं सकता, महापराक्रमी है, युद्धका इसने वड़ा अभ्यास किया है, यह पर्वतोंसे युद्ध करता रहताहै जो हमारा पिता वड़ा वली था, जिसने त्रिलोकीके राज्य अरु सब देवता वश किए थे तिसको इसने मार डारा तौ हमको मारनेविषे क्या यत्न है ? यह महावली है, इसको जीतना नहीं होता, ताते एक उपाय मैं तुमको कहता हौं, तिसकारि विष्णु प्रगट वश आवैगा, सो यह उपाय है, जो विष्णु सर्वात्मा है, सर्वका प्रकाशक है अरु सबका कारण है, तिसकी हम शरणहैं और हमारी गति आश्रय कोऊ नहीं ॥ हे दैत्यो! उसते अधिक इस त्रिलोकीविषे कोऊ नहीं, जगत्का उत्पत्ति, स्थिति, प्रलयकर्ता वही देवताहैं, उसके ध्यानविषे लागौ, एक निमेष भी तिसके ध्यानते उतरौ नहीं, मैं भी उसके ध्यानविषे लगता हौं, सो नारायण अजन्मा पुरुष है, मैं सदा तिसके परायण हौं, सवप्रकार नारायण मैं हौं, "ॐनमोनारायणाय" यह मंत्र सब अर्थोंका सिद्धकर्ता है, इस मंत्रके ध्यान जाप करते हुए हमारे हृदयविषे आय स्फुरणरूप होवैगा सो कैसा हरि है, सबका आत्मा हरि है, पृथ्वी भी हरि है, यह सब जगत् हरि है, मैं भी हरि हौं, आकाश भी हरि है, सबका आत्मा भी हरि है, अविष्णु जो होइकारि विष्णुको पूजन करते हैं, सो पूजनेका फल नहीं पाते अरु जो विष्णु होइकारि विष्णुका पूजन करते हैं, सो परम उत्तम फलको पाते हैं ताते मैं विष्णुरूप होइकारि स्थित होता हौं; मैं अनंत आत्मा आकाश हौं, गरुड़पर आरूढ हौं अरु स्वर्णके भूषण पहिरे हैं,

मेरे हस्तरूप वृक्षकरि जीवरूप सब पक्षी विश्राम पातेहैं, यह मेरी चतुर्भुजाहैं, भुजा विषे बहुरि पटेहरे हैं, जब मैंने क्षीरसमुद्र मथन कियाथा, तबके यह परस्पर घसाए हैं, अरु यह मेरे पार्षद स्थित हैं, सुंदर चमर हस्तविषे हैं, इसको क्षीरसमुद्रते उपजाये हैं, अरु त्रिलोकीरूपी वृक्षकी यह सुंदर मंजरी है, महाधवल मनको हरणहारी है, यह मेरे पार्षदविषे माया है, जिसने अनंत जगज्जाल निरंतर उत्पत्ति प्रलय कीनी है, अरु इंद्रजालकी विलासनी है, यह मेरे पार्षदविषे जो शक्तिहै जिसने लीला करिकै त्रिलोकी खंड वशकियाहै, जैसे कल्पवृक्षलता फुलती है, तैसे मेरे पार्षदविषे फुलती है, शीत उष्ण यह दो मेरे नेत्र हैं, संपूर्ण जगत्को प्रकाशते हैं, चंद्रमा अरु सूर्य तिनके नाम हैं, यह मेरा नील कमलवत् देह हैं, महासुंदर श्याम मेघवत् है, महाप्रकाशरूप है, यह मेरे हस्तविषे पांचजन्य शंख है, जिसकी फुरणरूप ध्वनि है, सो क्षीरसमुद्रते निकसा है, यह नाभिकमल है, जिसते ब्रह्मा उत्पन्न भयाहै, अरु इसविषे निवास करताहै, जैसे भ्रमर कमलविषे निवास करता है, तैसे यह मेरे हस्तविषे कुमोदकी गदा है, सुमेरुके शिखरवत् रत्नोंकी वनी हुई है, दैत्य दानवोंके नाश करनेहारी है, ज्वालाके पुंजवत् जिसका तेज है, यह मेरे हाथोंविषे महाप्रकाशरूप सुदर्शनचक्र साधुओंको सुख देनेहारा है, यह मेरे हाथोंविषे अग्निके समूहवाला कुठार है, सो दैत्यरूपी वृक्षोंको काटनेहारा है, अरु साधुओंको आनंददायक है, यह मेरे हाथविषे सारंग धनुष्य है, महाप्रकाशवत् जिसकी ध्वनि है, यह मेरे पीतवर्ण वस्त्र हैं, यह वैजयंती माला है, कौस्तुभ मणि मेरे कंठविषे है, ऐसा मैं विष्णु देव हौं, अनंत जगत्की उत्पत्ति लय हो गई है, सबोंके धारनहारा मैं हौं, कई वीत गये हैं, कई होवेंगे, यह पृथ्वी मेरे चरण हैं, आकाश मेरा शीश है, तीनों लोक मेरा वपु है, दशों दिशा मेरे वक्षस्थल हैं, मैं साक्षात् विष्णु हौं, नील मेघवत् मेरी कांति है, गरुडपर आरूढ-शंख, चक्र, गदा, पद्मके धारनेहारा मैं हौं, दुष्ट है चित्त जिनका, सो हमको देखिकरि भाग जाते हैं, यह सुंदर शीतल चंद्रमावत् मेरी कांति है, पीतवस्त्र श्याम वदन गदाधारी है, लक्ष्मी मेरे वक्षस्थलविषे है, अच्युतरूपी विष्णु मैं हौं, वह कौन है जो मेरेसे विरोध करनेको समर्थ होवै ? मैं त्रिलोकीको जलावनेको समर्थ हौं, जो मेरेसाथ युद्ध करनेको सन्मुख होवै, तिसको

अपने नाशका कारण है, जैसे अग्निविषे पतंग जलि मरते हैं, तैसे मेरा ऐसा तेज है, जिसकी दृष्टि संहारनेको कोऊ समर्थ नहीं है, मैं विष्णु ईश्वर हौं. ब्रह्मा, इंद्र, यमादिक नित्य मेरी स्तुति करते हैं. अरु तृण, काष्ठ, स्थावर, जंगम जेता कछु जाल है, तिस सबके अंतर व्यापकरूप हौं त्रिलोकीविषे मैं प्रकाशरूप हौं, अजन्मा हौं, भयको नाशकर्ता हौं, ऐसा मेरा स्वरूप है, तिसको मेरा नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादविज्ञानवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३१ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस प्रकार प्रह्लाद नारायणस्वरूप अपना करिकै चिंतवता भया, बहुरि पूजनके निमित्त वैष्णवनको चिंतवता भया, मनविषे दूसरी मूर्ति विष्णुकी करी प्राण पवननकरि संपन्न अरु गरुडपर आरूढ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, चार शक्तिकरि संपन्न, अरु शंख चक्र गदा पद्म हस्तविषे, श्याम अंग चतुर्भुज चंद्रमा अरु सूर्य जिसके नेत्र ऐसा लक्ष्मीधर महासुंदर आनंदके देनेहारे विशाल नेत्र हैं जिसके, शार्ङ्ग धनुष्य हस्तविषे वडा प्रकाशरूप है, ऐसी मूर्ति विष्णुकी पूजताभया पारिवारसंयुक्त भलीप्रकार पूजन किया, वड़े रत्नोंसंयुक्त प्रह्लादमन करि पूजता भया माधव कमलाधरको रत्नोंका अर्घ्य दिया अरु चंदनका लेपन धूप दीप विचित्र नानाप्रकारके भूषणोंकरि अरु मंदार कल्पवृक्षोंके कमलोंकरि रत्नमणिके गुच्छे नानाप्रकारके पुष्पोंकरि, अरु पिस्ता खजूरी बादाम आदिक मेवाकरि, भक्ष्य भोज्य चोष्य लेह्य चार प्रकारके भोजन, नानाप्रकारके स्वाद अरु वस्त्र भूषणकरि पूजन किया, बहुरि अपना आप विष्णुको अर्पण किया, परमभक्तिको प्राप्त भया, अरु जिसप्रकार मनकरि पूजन किया, तिसी प्रकार अंतःपुरविषे विष्णुकी मूर्ति देखिकरि पूजत भया, इसप्रकार दिन दिनप्रति विष्णुका पूजन करत भया, जिसप्रकार प्रह्लाद मनकी चिंतवनाकरि पूजा करै, तिसप्रकार और भी दैत्य मानसी पूजा करते भये, तिनको प्रह्लादने शिखाया, तिस पुरविषे सब दैत्य वैष्णव हो रहे, कल्याणमूर्ति विष्णुभक्त हो गये, जैसा राजा होता है, तैसी तिसकी प्रजा होती है, इसविषे कछु आश्चर्य नहीं, तब यह वार्ता देवलोकविषे प्रगट भई कि, दैत्योंने विष्णुका दोष त्याग कियाहै, अरु भक्त हुए हैं, तब देवता आश्चर्यको प्राप्त भये, इंद्रादिक अमरगण चिंतवत भये कि, यह क्या हुआ ? दैत्योंने

विष्णुभक्ति ग्रहण करी है, इनको प्राप्ति कैसे भई है, ऐसे आश्चर्यवान् होइकरि विष्णुके निकट दैत्योंकी वार्ता कहने निमित्त क्षीरसमुद्रको गये। यह तौ अपूर्व वार्ता हुई है, दैत्य कहां अरु विष्णुकी भक्ति कहां, विष्णुके निकट जाय कहते भये॥ देवा ऊचुः॥ हे भगवन्! यह तुमने क्या माया पसारी है, जो दैत्य सर्वदा विरोध करते थे, सो तुम्हारे साथ तन्मयरूप हो रहेहैं, कहां वह दुर्वृत्ति पर्वतको चूर्ण करनेहारे दैत्य, अरु कहां तुम्हारी भक्ति, जो अनेक जन्मोंकरि भी दुर्लभ है॥ हे जर्नादन! तेरी भक्ति कहां अरु उनकी वृत्ति कहां, यह तौ अपूर्व वार्ता भई है, जैसे समयविना पुष्पोंकी माला नहींशोभती, तैसे पात्रविना तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती यह हमको सुखदायक नहीं भासती, जैसा जैसा कोऊ होता है, तैसे तैसे स्थानविषे शोभता है, जैसे काचविषे महामणि नहीं शोभती, तैसे दैत्योंविषे तुम्हारी भक्ति नहीं शोभती. जैसा गुण किसीविषे होता है, सो तैसी पंक्तिविषे शोभता है, अपरविषे स्थित हुआ नहीं शोभता है, जो सदेश नहीं होता, तौ दुःखदायक होता है जैसे अंगोंविषे वस्त्र दुःखदायक होता है, तैसे पदार्थ क्रमकरि प्राप्त होता है, सो जैसा गुणवान् होवै तैसा प्राप्त होता है, वह शोभा पाता है, विपर्यय होवै तब शोभा नहीं पाता, जैसे कमलिनी जलविषे शोभती है, मरुस्थलविषे नहीं शोभती तैसे कहां वह अधम नीचजन भयानक कर्म करनेहारे, अरु कहां तेरी आश्चर्यभक्ति, जैसे कमलिनी पृथ्वीपर नहीं शोभती, तैसी तेरी भक्ति दैत्योंविषे नहीं शोभती, तैसे भक्ति हमको उनविषे सुखदायक नहीं भासती॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे विविधव्यतिरेकोनाम द्वात्रिंशत्तमः सर्गः॥ ३२॥ ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! जब इसप्रकार शब्दकरि देवता कहने लगे, तब माधव आयकरि बोले, जैसे मेघ मोरको कहै, तैसे गंभीरवाणी करि बोलत भये॥ ॥ श्रीभगवानुवाच॥ हे देवगण! तुम शोक मत करो, प्रह्लाद मेरा भक्त है, शत्रुको नाश कर्ता यह प्रह्लादका अंतका जन्म है, अब मोक्षको प्राप्त होइकरि बहुरि जन्म न पावैगा, जैसे भूना बीज बहुरि अंकुर नहीं लेता तैसे इसको बहुरि जन्म नहीं होवैगा॥ हे देवगण! जो गुणवान् होवै, अरु गुणोंको त्यागिकरि दोष ग्रहण करै, तब यह कर्म अनर्थरूप होताहै, अरु जो प्रथम गुणोंते रहित निर्गुण होवै बहुरि तिनको

त्यागिकरी गुण ग्रहण करै, शास्त्रमार्गविषे विचरै तौ यहसुखदायक होता है. प्रह्लादकी विचित्र चेष्टा तुमको सुखदायक होवैगी, अबतुम अपने स्थानोंको जाओ, प्रह्लाद मेरा भक्त है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहिकारि भगवान् क्षीरसमुद्रविषे अन्तर्धान हो गये, देवता नमस्कार करिकै अपने स्थानको गए, अरु प्रह्लादकेसाथ दोषभावनाका त्याग करत भये, अरु बड़ेके चित्तसों दोष त्यागनेते औरोंके मन भी विश्रामको पाते हैं. प्रह्लाद दिनदिनविषे अपने घरप्रति जनार्दनकी मनसा वाचा कर्मणा भक्ति करत भया, समय आइकरि दैत्योंविषे भक्ति बडी हो गई, परम विवेकको प्राप्त भये, अरु विषयभोगते वैराग्यवान् भये, देखिकरि आनंदी न होवै, जैसे सूखे वृक्षविषे टास होता है, तिसविषे पक्षी प्रीति नहीं करते, तैसे वे विषयोंसाथ प्रीति नहीं करै, सुंदर स्त्रियोंसे न रमै, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको जाननेहारे मृग रमणीय देखिकरि प्रसन्न नहीं होते, तैसे शास्त्रार्थ कथनविना और दृश्यविषे तिनको प्रीति न उपजै यह भोग रोगरूप है, तिनविषे उनका चित्त विश्रामवान न होवै, राग न करै, परंतु मुक्तकर्त्ता जो आत्मबोध है, सो प्राप्त नहीं भया, मुक्तिफलके तुल्य आय स्थित भये हैं. भोगोंकी अभिलाषको त्यागिकरि निर्मल हो रहे हैं, परम समाधिको नहीं प्राप्त भये, चित्त मध्य अवस्थाविषे डोलायमान रहै, भोगोंते वैराग्य अरु ईश्वरकी भक्तिविषे स्थित भये, तब श्याममूर्ति जो विष्णुदेव हैं, सो प्रह्लादकी वृत्तिको विचारिकारि पातालविषे प्रह्लादके गृहपूजास्थानविषे महाप्रकाश सुंदररूप प्रगटे, तिसको देखिकरि प्रह्लाद विशेष पूजाको करता भया, प्रल्हाद प्रेमकरि गद्गद हो गया, चरण वंदनाकारि पूजन बहुत किया बहुरि ऐसे कहते भये ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ हे ईश्वर ! त्रिलोकीविषे सुंदर मूर्ति सबके धारनेहारे अरु सब कलंक हरनेहारे प्रकाशस्वरूप अशरणोंके शरण अजन्मा अच्युत मैं तेरे शरण हौं ॥ हे नीलोत्पल कमलोंके पर्वत शरत्कालके निरुपमश्यामरूप असंग चित्त करिकै धरनेहारे मैं तेरी शरण हौं ॥ हे निर्मलरूप ! केलेवत् कोमल अंग, श्वेत कमलकी नाईं श्वेत शंख हस्तविषे है, अरु नाभिकमलविषे भँवरा रूप ब्रह्मा स्थित है, वेदका उच्चाररूपी गुरगुर शब्द कर्ता है, अरु हृदयकमलविषे विराजनेहारे जलके ईश्वररूप मैं तेरी शरण हौं, श्वेत नख तारागणवत्

प्रकाशरूप हैं, हँसता मुख चंद्रमाके मंडलवत् है, हृदयरूपी मणि सबका प्रकाशक है, शरत्कालके आकाशवत् निर्मल विस्तृतरूप मैं तेरी शरण हौं ॥ हे त्रिभुवनरूपी! कमलनियोंके प्रकाशनेहारा चंद्रमा मोहरूपी अंधकारके नाशकर्ता सूर्य है, अजड चिदात्मा संपूर्ण जगत्के कष्ट हरनेहारे मैं तेरी शरण हौं ॥ हे नूतन विकसितरूप कमलपुष्पोंकारि भूषित अंग अरु स्वर्णवत पीतांबरधारी, महासुंदर स्वरूप मैं तेरी शरण हौं ॥ हे ईश्वर ! लीला कारिकै सृष्टिके उत्पत्ति स्थिति नाश करनेहारे परमशक्ति शंकर योगिवत् दृढ देह मैं तेरी शरण हौं अरु दामिनीवत् प्रकाशरूप सबको संहार कर जलविषे बालकरूपधारी वटके नीचे शयन करने हारे मैं तेरी शरण हौं, देवतारूप कमलोंके प्रकाश करनेहारे, सूर्यमंडल दैत्यपुत्ररूपी कमलिनियोंके तुषाररूपी बर्फ जलावनेहारे, अरु हृदयरूप कमलोंके आश्रयभूत मैं तेरी शरण हौं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार अनेक गुणोंकारि अष्ट श्लोक प्रह्लादने कहे, तब नीलोत्पल कमलवत् देह जिसका है, ऐसा परमात्मा पुरुष प्रसन्न होइकारि प्रह्लादको कहता भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादाष्टकानंतरं नारायणागमन वर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशतितमः सर्गः ॥ ३३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे गुणनिधि दैत्यकुलके शिरोमणि! जो तुझको वांछित फल है सो माँग, बहुरि जन्मदुःखके शांतिनिमित्त जिसकरि तुझको जन्मदुःख न होवै सो माँग ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ हे सर्वसंकल्पके फलदायक सर्व लोकोंविषे व्यापकरूप ! जो वस्तु दुर्लभतर है सो शीघ्रही मुझको कहौ अरु देहु ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे पुत्र! सब भ्रमका नाश करनेहारा अरु परम फलरूप ब्रह्मते विश्रांति होती है सो आत्मविवेककी समताकारि प्राप्त होती सो आत्म विवेक तुझको होवैगा ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार दैत्येंद्रको कहिकारि विष्णु अंतर्धान हो गए, तरंग समुद्रते गुरगुर शब्द कारिकै उठै, अरु गुप्त हो जावै, तैसें विष्णुजीके देखकारि प्रह्लादने पुष्पांजलि दीनी, पूजा करिकै श्रेष्ठ आसन बिछाया, तिसपर आप पद्मासन धारि बैठे, उत्तम शास्त्रोंका पाठ विधिसंयुक्त करने लगे, पाठकारि चिंतनाकरी कि, विष्णुने मुझसे क्या कहा है, यह कहा था, कि तुझको विवेक होवैगा सो संसारके समुद्र तरनेनिमित्त शीघ्रही विचार करौ. इस संसार आडंबरविषे मैं कौन हौं जो बोलता

हौं स्थित हौं यह जंतु तो मैं नहीं यह असत्य उपजा है, जडरूप पवनकरि स्फुरणरूप होता है सो मैं कैसे होऊं ? यह देह भी नहीं, क्षणक्षणविषे कालकरि लीन होता है, यह जड़रूप है सो मैं नहीं, यह श्रवणरूपी जड है सो मैं नहीं, अरु शब्द सुनते हैं सो शब्द शून्यते उपजा है, सो भी मैं नहीं, अरु त्वचा इंद्रिय भी मैं नहीं इसका क्षणक्षणाविषे विनाशस्वभाव है प्राप्त हुआ न हुआ, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह आप जड़ है इसके जाननेहारा चेतनतत्व है, चेतनके प्रमादकरि यह विषय उपलब्ध होते हैं, ताते न मैं त्वचा इंद्रिय हौं, न स्पर्श विषय है, यह जड़ात्मक है अरु यह जो चंचलरूपी जिह्वा इंद्रिय तुच्छहै अल्प जल अणु जिसके अग्रविषे स्थितहैं सो रसको ग्रहणकर्ता है वह रस भी आत्मसत्ताकरिकै लब्धिरूप होता है आप जड है ताते यह जड़रूप जिह्वा अरु रस मैं नहीं अरु यह जो दृश्यके दर्शनविषे लीन है विनाशरूप नेत्र सो मैं नहीं अरु न मैं इनका विषयरूप हौं यह जड है अरु यह जो नासिका पृथ्वीका अंश हैं सो केवल आत्माके आधारहै अरु आप जड है इसके जानने हारा चेतन है सो न मैं नासिका हौं, न गंध हौं, मैं अहं ममते रहित हौं मनके मननते रहित शांतरूप हौं, अरु यह पंच इंद्रियां मेरे विषे नहीं, मैं शुद्ध चेतनरूप हौं कलनाकलंकते रहित हौं मैं चित्तते रहित चिन्मात्र हौं, सर्वका प्रकाशक सबके अंतर बाहिर व्यापकरूप हौं निःसंकल्प निर्मल शांतरूप हौं, आश्चर्य है, अब मुझको अपना स्वरूप स्मरण आता है, प्रकाशरूप चेतन अनुभव अद्वैत अपने अनुभव चेतन करिकै स्थित हौं सूर्य घटपटादिक सब पदार्थोंमें प्रकाशता है, जैसे उत्तम तेज दीपककरि भासै, तैसे चेतन अनुभवकरि इंद्रियोंकी वृत्ति स्फुरणरूप होती है, जैसे तेजकरि चिनगारे स्फुरणरूप होते हैं, तैसे सर्वज्ञ अनुभव सत्ताकरिकै मनकी मननरूप शक्ति फुरती है, जैसे सूर्यके तेजकरि मरुस्थलविषे मृगतृष्णाकी नदी फुरती है, तैसे अनुभवसत्ता करिकै पदार्थ भासते हैं, जैसे दीपकमें शुक्लादि रंग भासते हैं, तैसे यह पदार्थोंविषे अहं आदिक पदार्थ भासते हैं, जाग्रतवत् सब पदार्थोंका प्रकाशक है सबको अनुभव करिकै भासता है, सबके अंतर आत्मभावकरिकै स्थित है, जैसे बीजाविषे अंकुर स्थित होता है, तैसे चेतनरूप दीपकके प्रकाशकरि विकल्परूपी पदार्थोंकी शक्ति

भासती है, उष्णरूप सूर्य है, अरु शीतल रूप चंद्रमा है, घनरूप पर्वत है, द्रवतारूप जल है, इसप्रकार अनुभवसत्ताते पदार्थ प्रगट होते हैं, जैसे सूर्यके प्रकाशकारि घटपटादिक होते हैं. ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र इन सर्वके कारणरूप जगतविषे स्थित हैं, अरु इनका कारण अनुभवतत्त्व है। आदिअंतते रहित हैं, अरु सब कारणोंको कारण हैं जैसे वर्फते शीतलता उपजती है, तैसे अनुभवते जगत् उदय होता है, चित्त चैत्य दृश्य दर्शन कलनाते रहित सत्ता प्रकाशरूप आत्मा मेरा मुझको नमस्कार है, इसविषे सर्व भूतोंकी उत्पत्ति स्थिति होइकरि बहुरि लय होते हैं, सो निर्विकल्प चेतन सर्वका आश्रयरूप आत्माहै जो इस चित्तकरि अंतर कल्पितरूप हो जाता है सोई होता है, आत्माते रहित सत्य भी असत्य हो जाता है, जो चेतन संवित विषे कल्पिरूप होताहै,सो पदार्थ अपने स्वरूपको पाता है कि, यह ऐसे है, अरु जो चित्तसंवितविषे कल्पितरूप नहीं होता, सो सत्य भी असत्यरूप हो जाता है, यह घटपटादि पदार्थका समूह भासता है, सो विस्तृतरूप चिदाकाश दर्पणविषे प्रतिबिंबित होता है; सो अनुभवसत्ता सर्व भूतोंका आदर्शरूप है, जिनका चित्त नष्ट हो जाता है, तिन संत पुरुषोंको ऐसे दृढ भाव प्राप्त हैं, परम आकाशरूप आत्माविषे अभ्यास करि तन्मय हो जाता है; सो अनुभवसत्ता पदार्थोंके वृद्ध होनेकारि वृद्ध नहीं होती, अरु नष्ट होनेकारि नष्ट नहीं होती, पदार्थोंके भाव अभावविषे सत्ता सामान्य ज्योंकी त्यों है, जैसे सूर्यके प्रतिबिंबविषे घट सत्य होवै, अथवा असत्य होवै, सूर्य ज्योंका त्यों है संसाररूप नानाप्रकारकी विचित्ररचना है, सो ऐसे आत्माविषे स्थित है, जैसे विचित्र गुच्छेसे युक्त वृक्षोंकी पंक्तिकी विचित्र रचना पर्वत ऊपर स्थित होती है, तैसे संसार रूप दृश्य नानाप्रकारकी मंजरीको धरनेहारा आत्मसत्ता वृक्ष है, जेते कछु भूतगण त्रिलोकीके उदरविषे वर्तते हैं, सो आत्मासाथ अभिन्नरूप हैं ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सर्वका प्रकाशक आत्मा है, सो अनुभवसत्ता आदि अंतते रहित है, सर्वरूप जिसका आकार है, स्थावर जंगम सर्व जगद्भूतजात अंतर अनुभवरूप स्थित हैं, सो एक अनुभव आत्मा मैं हौं, द्रष्टा दर्शन दृश्य सर्वरूप आत्मा मैं हौं, सहस्र नेत्र सहस्र हस्त मेरे हैं, मैं चिदाकाशरूप हौं, सूर्य देहकारि आकाशविषे विचरता हौं, पवनदेहकरि मैं

वहता हौं वायु वाहनपर आरूढ हौं, अरु मैं विष्णुरूप शंख चक्र गदा पद्मके धारनेहारा हौं, सर्व सौभाग्य देखनेहारा हौं सर्व दैत्योंको भगावता नाशकर्त्ता मैंही हौं, मैं नाभिकमलते उत्पन्न हुआ पद्मासनकरि निर्विकल्प समाधि स्थितरूप ब्रह्मा हौं अरु मन वृत्तिरूपको प्राप्त भया, मैंही त्रिनेत्र आकार लिया है, गौरी मेरी अर्धांगना है, सृष्टिके अंगविषे सर्वको संहार करता हौं, जैसे कोऊ अपने अंगोंको संकोचि लेवै, तैसे मैं संहार करता हौं, त्रिलोकीरूपी मढी है, इंद्ररूप होइकरि मैं तिसकी पालना करता हौं, कर्मोंके अनुसार जैसा कोऊ तप करै, तैसा फल देता हौं तृण वल्लीविषे गुच्छे रस होइकरि स्थित हौं; मैंही उत्पत्ति कर्त्ता हौं, मैंही चेतनरूप हौं जगत् आडंवर लीलाके निमित्त विस्ताररूप मैंनेही किया है; जैसे मृत्तिकाके खिलौने वालक रचि लेता है तैसे; अरु मेरेविषे सर्व कर्म अर्पण कर सर्व शांतिको प्राप्त होता है; मुझते रहित कछु वस्तु नहीं, सत्तास्वरूप मैं आदर्श हौं, सव पदार्थ मेरेविषे प्रतिबिंबित होते हैं, तव यह असत्यरूप भी सत्यताको प्राप्त होता है, ताते मुझते भिन्न कछु नहीं; पुष्पोंविषे सुगंधि मैं हौं, पत्रोंविषे सुंदरता छवि मैं हौं, पुरुषविषे अनुभव मैं हौं, स्थावर जंगमरूप जो जगत् दृष्ट आता है, सो सब मैं हौं सव संकल्पते रहित परम चैतन्य हौं, अहं त्वं आदिकते पर हौं, जलविषे रसशक्ति मैं हौं, अग्निविषे उष्णता, बर्फविषे शीतलता मैं हौं, जैसे काष्ठविषे अग्नि, तैसे सर्वविषे स्थितहौं, सव पदार्थोंविषे मैं परमात्मा व्यापक हौं, सबको अपनी इच्छाकरि उपजाता हौं, जैसे दूधविषे घृतशक्ति, जलविषे रसशक्ति, सूर्यविषे प्रकाशशक्ति है, तैसे चेतनस्वरूप मैं सब पदार्थोंविषे स्थित हौं, त्रिकालका जगत् सब मेरेविषे स्थित है, सो मैं चित्तके उपचार फुरनेते रहित शुद्धस्वरूप हौं, सर्वको भरणपोषणहारा हौं, मैंही वैराट राजा होइकरि स्थित भया हौं, त्रिलोकीका राज्य मुझको अपूर्व प्राप्त भया है, कैसा राज्य है, शस्त्रोंविना देवके दल विना निरिच्छित विस्तृत राज्यप्राप्ति है, वडा आश्चर्य है, मैं बड़ा विस्तृतरूप हौं, मैं अपने आपविषे सामता नहीं, जैसे कल्पांतरके वायुकरि उछला समुद्र आपविषे नहीं समाता, तैसे मैं अनंतरूप आत्मा अपनी इच्छाकरि आप प्रकाशता हौं, जैसे क्षीरसमुद्र अपनी उज्ज्वलताकरि शोभता है; तैसे मैं अपने आपकरि शोभता हौं, यह जगत्रूपी

मटकी महा अल्परूप है, जैसे बिलविषे हस्ती नहीं समाता, तैसे मैं अपने आपविषे विस्तृतरूपकारि जगत्‌विषे नहीं समाता, कोटि ब्रह्मांडविषे व्यापक हौं, ब्रह्मलोकते परे जो तत्त्वोंका अंत आता है, तिसते भी परे मैं अनंतरूप हौं, यह मैं हौं, यह मैं नहीं, यह मेरे विषे निर्बलता थी, सो तुच्छरूप है, मैं तौ आदि अंतते रहित चेतन आकाश हौं, मेरेविषे परिच्छिन्नता मिथ्या भासती थी, मैं तू यह वह आदिक मिथ्या भ्रमहै, देह क्या, अरु पर क्या, अपर क्या, मैं तौ सर्वव्यापक चेतनहौं, तत्त्वहौं, मेरे पितामह बडे नीच बुद्धिहीन थे, जो ऐसे ऐश्वर्यको त्यागिकारि तुच्छ ऐश्वर्यविषे खचित भए, कहां यह महादृष्टि सर्वका कर्त्ता ब्रह्मवपु, अरु कहां वह संसारभ्रमका राज्य दुःखदायक अनित्यरूपी सुखभोग ? अनंत सुख परम उपशम स्वभाव शुद्ध चेतन दृष्टि अब मेरेविषे भई है, सब भाव पदार्थोंविषे चैत्यते रहित मैं चेतन आत्मा स्थित हौं अब मुझको नमस्कार है मेरी जय हुई है, जीर्णरूप संसारभ्रमते निकसा हौं, ताते जीत पाई है, पानेयोग्य आत्मपद पाया है, जीवितसार्थक भया है, ऐसा उत्तम शम राज्य जो चक्रवर्ती है, तिसविषे नहीं रमता, निरंतर बोधको त्यागिकरि दुःखरूपी काजोंविषे रमते हैं, काष्ठ जल मृत्तिकाकरि संयुक्त जो पृथ्वी है, तिसको पाइकरि जो मुलायमान भएहैं, तिनको धिक्कार है, वह कीट हैं, यह द्रव्य ऐश्वर्य अविद्यारूप है, अरु अविद्याकरि उपजा है, अरु अविद्यारूप इसका बढ़ना है, इसविषे गुण क्या है, जिसनिमित्त यत्न करते हैं, इस जगत्‌रूपी मढ़ीविषे केतक वर्षविषे हिरण्यकशिपु राज्यसुख भोगते भए, परंतु उपशम जो शांतिसुख है, तिसको प्राप्त कछु न भये इसने एक जगत्‌का राज्य किया है, परंतु जो सो जगतों का राज्यसुख होवै, तौ भी अनास्वाद है, वह जो समतारूप आत्मानंद है, सो नहीं प्राप्त होता, जब तिस आत्मानंदके स्वादका यत्न होवै, तब प्राप्त होवै अन्यथा नहीं होता, जिस पुरुषको बड़े ऐश्वर्य इंद्रियोंके सुख प्राप्त भएहैं, अरु समतासुखते रहितहैं जब जानिये कि तिसको कछु ऐश्वर्यसुख नहीं प्राप्त भया अरु जिनको कछु ऐश्वर्यसुख नहीं प्राप्त भया, अरु समता सुखसंयुक्तहै, तब उस को सब कछु प्राप्त भया जानिये, यह परम अमृतकरि संपन्न है, अखंडित सुख जो आत्मा है, तिस परमसुखको प्राप्त भया है, सो आनंदरूप है,

अरु जो अखंड पदको त्यागिकरि परिच्छिन्नताको प्राप्त है, सो मूढ है, अरु जो पंडित ज्ञानवान् है, सो परिच्छिन्नताविषे नहीं प्रीति करता जैसे ऊंट दूसरे पदार्थोंको त्यागिकरि कंटकोंके पास धावता है, और पशु नहीं जाता मूढविना ऐसा कौन अज्ञानी है, जो आत्मसुखको त्यागिकर जले हुये राज्यसुखविषे रमता है, अमृतको त्यागिकरि कंटक नीमका पान करे, मेरे पितामह जो वडे थे, सो सब मूढ भए, इस परम अमृतरूप दृष्टिको त्यागिकरि राज्यकंटकविषे प्रीतिवान् भएहैं, कहां फूल फलादिककरि संयुक्त नंदनवनकी भूमिका, अरु कहां जले हुए मरुस्थलकी भूमिका, तैसे कहां यह बोधदृष्टि शांतरूप अरु कहां भोगोंविषे आत्मबुद्धि, ताते ऐसा पदार्थ त्रिलोकीविषे कोई नहीं, जिसकी मैं इच्छा करौं, सब चेतनस्वरूप है, अनुभवकर्ता चेतनतत्त्व स्वच्छ समभाव निर्विकारहै, सर्वदा सर्वविषे सर्व ओरते स्थितहै, जैसे है तैसा पाया जाता है, ज्ञानवान्को प्रत्यक्ष है, सूर्यविषे प्रकाशशक्ति है, चंद्रमाविषे अमृत स्रवणकी शक्ति है, ब्रह्माविषे महत्शक्ति है, इंद्रविषे त्रिलोकपालनकी शक्ति है, सब ओरते पूर्ण लक्ष्मीशक्ति विष्णुजीकी है, शीघ्र मनकर्त्ता शक्ति मनकी है, बलवान्शक्ति पवनविषे है, दाहकशक्ति अग्निविषे है, जलविषे रसशक्ति है, अरु मौन करिकै महातपकी सिद्धताशक्ति, अरु विद्याशक्ति बृहस्पतिविषे है, देवताविषे विमानोंपरि आरूढ होइकरि आकाशमार्ग गमन करनेकी शक्ति है, पर्वतोंविषे स्थिरताशक्ति, वसंतऋतुविषे पुष्प शक्ति, सर्व कालविषे मेघोंकी शांतशक्ति, यक्षोंविषे ममत्वशक्ति, आकाशविषे निर्लेपताशक्ति, वर्फविषे शीतलताशक्ति, ज्येष्ठ आषाढविषे तप्तशक्ति है, इत्यादिक देश, काल, क्रियारूप नानाप्रकारके आकार विकार त्रिकालके उदरविषे स्थित हैं, सो सर्वशक्ति स्वच्छ निर्विकार चेतनकी है, कलनारूप कलंकते रहित है, सो इसप्रकार हो भासता है, सोई आत्मतत्त्व सम पदार्थ जातिविषे व्यापक भया है, जैसे सूर्यका प्रकाश सर्व ओरते समान उदय होता है, तैसे सर्व देश पदार्थोंका भंडार सर्वका आश्रयभूत है, त्रिकाल तिसविषे कल्पितरूप होते हैं, जैसा अनुभव तिसविषे होता, तैसा तत्काल हो भासता है, जैसे जैसे चेतनतत्त्वविषे देश काल क्रिया द्रव्यका फुरना होताहै तैसा तैसा भासता है, अरु आत्माविषे

त्रिकालोंकी सम प्रतिभा फुरी है, तिसविषे बहुरि अनंतकालकी प्रतिभा हुई है, शुद्ध चेतनतत्त्वविषे सर्व ओरते पूर्ण है, त्रिकालके स्मरणविषे दृश्यसंयुक्त भासता है, तौ चेतनतत्त्व शेष रहता है, अरु इसको त्रिकालका ज्ञान होता है, मधुर कटुक आदिक भिन्नाभिन्नसों एकसमता भासती है, जैसे मधुरता पान करनेहारे जो जीव हैं, तिनको मधुरता भासतीहै, अपरको नहीं भासती, तैसे सब जो संकलपना है, सबको भोंगताहै, सूक्ष्म चेतनहै, सत्तास्वरूप सर्व पदार्थोंका अधिष्ठानहै, तिसकेसाथ अनागत होइकारि द्वैत जगत् भासता है, नानाप्रकारकी जो पदार्थ लक्ष्मी है, अत्यंत दुःखको प्राप्त करती है, जब त्रिकालका अनुभव होता है, तब सबही सम भासता है, भाव पदार्थोंविषे जो पदार्थ हैं, सो ईश्वरके हैं, तिन भाव पदार्थोंको त्यागिकारि अभावकी भावना करनी तिसकरि दुःख सब नष्ट हो जाते हैं, संतुष्टता प्राप्त होती है, ताते त्रिकालको मत देखहु, यह बंधनरूप है, त्रिकालते रहित जो चेतनतत्त्व है तिसको देखनेकारि विभाग कल्पना कालका अभाव हो जाता है, एक शम आत्मा शेष रहता है, तिसको वाणी वश नहीं कर सकती, असत्यकी नाई जो निरंतर स्थित है, तिसकी प्राप्ति होती है, अनामय सिद्धांत है, जो शून्यवादीकी नाई स्थित होता है. निष्किंचन आत्मा ब्रह्म होता है, अथवा सर्वरूप परम उपशमविषे लीन होता है, अरु जिसका अंतःकरण मलिन है, संकलपकारिकै असम्यक्दर्शी है, तिसको ज्योंका त्यों नहीं भासता जगत् भासता है, अरु जिनकी इच्छा नष्ट भई है, परमपदका अभ्यास करते हैं; तिनको आत्मतत्त्व भासता है, अरु जो किसी जगत्के पदार्थकी वांछा करते हैं, किसीका त्याग किया चाहते हैं हेयोपादेय फांसीसे बांधे हैं, सो परमपद उपायके पानेको समर्थ नहीं होते, जैसे पेटकारि बांधा पक्षी आकाशमार्गविषे उड़नेको समर्थ नहीं होता, तैसे जे पुरुष संकल्प कलनासंयुक्त हैं, वे मोहरूपी जालविषे गिर पड़ते हैं जैसे नेत्रोंविना गिर पड़ता है, तैसे संकल्प कलनाजालकारि जिसका चित्त वेष्टित है, सो विषयरूपी गर्त्तविषे गिरा है अच्युत पदवीको प्राप्त नहीं होता, अरु मेरे पितामह केतेक दिन पृथ्वीविषे फुरिफुरि लीन हो गए हैं, सो बालक नीच थे, जैसे गर्त्तविषे मच्छर लीन हो जातेहैं, तैसे अज्ञानकारि परमतत्वको न जानते

भये, भोगोंकी वांछा जो दुःखरूप है, सो अज्ञानी करते हैं, तिसते भावअभावरूप गर्त अंधकूपविषे नष्ट होते हैं, इच्छा अरु दोषकार जो उठा है, सो रागदोषकारि बंधनमान भए हैं, जैसे पृथ्वीविषे कीट मग्न होते हैं, वह जीव तिनके तुल्य हैं, अरु मृग तृष्णारूप जग त्के पदार्थोंविषे ग्रहणत्यागकी बुद्धि जिनकी शांत भई है, सो पुरुष जीते हैं, अपर सब नीच मृतकरूप हैं, निर्मल अविच्छिन्नरूप चैतन्य चंद्रमावत् शीतलता कहां, अरु उष्णकाल कलंकसंयुक्त चित्तकी अवस्था कहां ? अब मेरे आत्माको नमस्कार है, कैसा आत्मा है, जो अविच्छिन्न प्रकाश है, प्रकाश अरु तम दोनोंका प्रकाशरूप है ॥ हे चिदात्मा देव ! मुझको तू चिरकालकारि प्राप्त भया है, परमानंद भया जो विकल्परूपी समुद्रते मेरा उद्धार किया है, जो तू है, सो मैं हौं, और मैं हौं सो तू है, तुझको नमस्कार है, अनंत शिव आत्मतत्त्वका चंद्रमा संकल्पविकल्प कलाके नष्ट हुएते सो निर्मल सदा उदितरूप है ॥ इति श्रीयो० उपशमप्रकरणे प्रल्हादो पदेशो नाम चतुस्त्रिंशतितमः सर्गः ॥ ३४ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ॐजिसका नाम है सो ब्रह्म मैं हौं, विकारते रहित हौं, जो कछु जगत् है, सो सब आत्मस्वरूप है, सत्य असत्यते अतीत है, चेतनस्वरूप है, सब जीवोंके अंतर है, सूर्यादिक प्रकाश दीपक है, अग्नि आदि कको उष्णकर्ता यही है, अरु चंद्रमाविषे शीतकर्त्ता अमृतका स्रवणा आत्मातेही है, इंद्रियोंके भोगोंका भोक्ता अनुभवरूप यही है राजा की नाईं ठाढा हौं, तौ मैं कबहूं, नहीं ठाढा, बैठा हौं, तौ मैं कबहूं नहीं, बैठा चलता हौं तौ कबहूं नहीं चलता, व्यवहार करता हौं, सदा शांत रूप हौं, कर्ता हौं तौ किसीकरि लेपायमान नहीं होता, त्रिकालोंविषे समरूप हौं, सर्वदा सर्वअवस्था विषे पदार्थोंके उपजनेविषे अरु मिटनेविषे सदा ज्योंका त्यों हौं, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सब जगत् आवृत आत्मतत्त्व स्थित है, पवन जो स्पंदरूप है तिसते भी मैं अतिसूक्ष्म स्पंदरूप हौं, पर्वत जो स्थान हैं, अचल पदार्थ तिनते भी मैं अचल हौं, आकाशते भी अति निर्लेप हौं, अरु मनको भी आत्मा चलाता है; जैसे पत्रोंको पवन चलाता है, इंद्रियोंको आत्मा फेरता है, जैसे घोडेको सवार चलाता है, अरु समर्थ चक्रवर्ती राजाकी नाईं भोग भोगता हौं, अरु अपने ऐश्वर्यकारि आप शोभता हौं, संसारसमुद्रविषे जरामरणरूपी जल है, तिसके पार

करनेहारा आत्मा है सो सबते सुलभ है, अपने आपकरि जानाजाता है, बांधवकी नाईं प्राप्त होता है, शरीररूपी कमलोंके छिद्र हैं, तिन सबोंका भँवरा है, खैंचे बुलाएविना सुलभ प्राप्त होता है, अल्प भी इसको बुलाता है, तब तिसी क्षणविषे सन्मुख होता है, इसविषे कोई संशय विकल्प नहीं, निष्कलंक परम संपदावान् है, सदा स्वस्थरूप है, रसदायक पदार्थोंविषे जैसे रसस्वाद है, जैसे पुष्पविषे सुगंधि है, जैसे तिलोंविषे तेल है, तैसे देव परमात्मा देहोंविषे स्थित है, तो भी अविचारके वशते जाना नहींजाता, जैसे चिरकालकरि आया बांधव अपने अग्र आनि स्थित होता है, तिसको नहीं पिछान सकता ॥ तैसे जब विचार उदय होताहै, तब ऐसे आत्मा परमेश्वरको जानि लेता है, जैसे किसी प्रीतम बांधवके पाएते आनंद उदय होता है, तैसे आत्मा देवके साक्षात्कार हुएते परम आनंद उदय होता है, सब बंधन नष्ट हो जाते हैं, जेती कछु दुष्ट चेष्टा हैं, सो अभाव हो जाती हैं, सब ओरते बंधन फाँसी टूटि जाती है, सब शत्रु क्षय हो जाते हैं, आशा बहुरि नहीं फुरती, जैसे पर्वतको चूहा तोडि नहीं सकता तैसे, ऐसे देवके देखते सब कछु देखा होता है, अरु सुनेते सब कछु सुना होता है, तिसके स्पर्श कियेते सब जगत्का स्पर्श होता है, इसकी स्थितिकरि सर्व जगत् स्थित भासता है यह जागृत है, सो संसारकी ओरते स्वप्न है, तिसी जागृतकरि अज्ञान नष्ट हो जाता है, जेती कछु आपदा है, तिसका कष्ट दूर होता है, आत्माके प्राप्त हुएते आत्मामय हो जाता है, सो विस्तृतरूप आत्मा दीपकवत् साक्षीभूत होता है, जगत्की स्थितिंविषे भोगोंते राग उठा है, सब ओरते आत्मतत्त्व अपना प्रकाश भासता है, अंतर शांतरूप सबको अनुभव करनेहारे सब देहोंविषे मैं स्थित हौं, जैसे मिर्चविषे तीक्ष्णता स्थित है, तैसे सबजगत्के अंतर बाहर व्याप रहा हौं, जेते कछु जगत्के पदार्थ भासते हैं, सो सबविषे ईश्वररूप सत्ता सामान्य स्थित है, आकाशविषे शून्यतारूप, वायुविषे स्पंदतारूप, तेजविषे प्रकाश, जलविषे रस, पृथ्वीविषे कठोरता, चंद्रमाविषे शीतलता है, तैसे सब जगत् अनुस्यूत एक आत्मतत्त्वही व्याप रहा है,जैसे बर्फविषे श्वेतता पुष्पोंविषे गंध होती है, तैसे सब देहोंविषे आत्मा व्यापक है, जैसे सर्वगत काल है, सर्वव्यापक आकाश है, तैसे सब

जगत् आत्मा व्यापक है, जैसे राजाकी प्रभुता सबविषे होती है, मुझते भिन्न और कलना कोऊ नहीं, जैसे धूलिके कणके आकाशको स्पर्श नहीं करि सकते, अरु कमलोंको जल स्पर्श नहीं करता; जैसे पाषाणको स्फुरणभ्रम स्पर्श नहीं करता; तैसे मेरेसाथ किसीका संबंध नहीं स्पर्श करता, सुखदुःखका संबंध देहको होता है, जो देह चिरकाल रहै, अथवा अबहीं नष्ट होवै, तौ मुझको लाभ हानि कछु नहीं, जैसे दीपककी प्रभा लोकविषे रज्जुसाथ बांधी नहीं जाती, तैसे आत्मा किसीसे आच्छाद्या नहीं जाता, सब पदार्थोंके ग्रहणविषे अबंध रूप है, जैसे आकाश किसीकरि बांधा नहीं जाता, अरु मन किसीकरि रोका नहीं जाता, तैसे परमात्माको देह इंद्रियका संबंध वास्तवते नहीं होता, जो शरीरसों टुकड़े हो जावैं, तौ भी आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घट फूटेते दूध आदिक पदार्थ नहीं रहता, परंतु आकाश कहीं नहीं जाता, ज्योंका त्यों रहता है, तैसे देहके नाश भएते प्राणकला निकसी जाती है, आत्माका कछु नहीं होता, अरु पिशाचकी नाईं उदय होइकरि भासता है, मन है नाम जिसका, तिस मनते जगत् भासा है, तिसविषे जड़ शरीरके नाशका निश्चय भया है, हमारा क्या नाश होता है, दुःखसुखते वासना जिसके मनते नाश होती हैं, सो भोगोंते निवृत्ति सुखसंपन्न होता है, ग्रहणकर्तें भोगते इंद्रियके अज्ञानकरि मूढ दुःख पाते हैं, तिसकरि दुःखसंकट पाते हैं, यह बड़ा आश्चर्य है, आत्माके अज्ञानकरि मूढ दुःख पाते हैं, अब मैं आत्मतत्वको देखा है, तिसकरि मेरा भ्रम शांत हो गया है; कछु भी किसीकरि मुझको क्षोभ नहीं, न कछु भोगोंके ग्रहण करनेकी इच्छा है, न त्यागकी वांछा है, जो जावै सो जावै, जो प्राप्त होवै सो होवै, न मुझको देहादिक सुखकी अपेक्षाहै, न दुःखकी निवृत्तिकी अपेक्षाहै, सुखदुःख आवै अरु जावै, मैं एकरस चिदानंदस्वरूप हौं, देहविषे वासना करनेते नानाप्रकारकी वासना उपजती है, सो देहभ्रम मेरो नष्ट हो गया है, यह वासना नहीं फुरती, एते कालपर्यंत मुझका अज्ञानरूपी शत्रुने नाश किया था, अब मैं आपको जाना है, अब इसको मैं चूर्ण करता हौं, इस शरीररूपी वृक्षविषे अहंकाररूपी पिशाच था, सो मैंने परमबोधरूपी मंत्रकरि दूर किया है, इस शरीररूपी वृक्षसों अज्ञानरूपी पिशाच नष्ट भया है, ताते पवित्र हुआ हौं, प्रफुल्लित

वृक्षवत् शोभता हौं, मोहरूपी दृष्टि मेरी शांत भई है, दुःख सब नष्ट भए हैं, विवेकरूपी धन मुझको प्राप्त भया है, अब मैं परम ईश्वररूप होइकारि स्थित भया हौं, जो कछु जानने योग्य था, सो जाना है, अरु जो कछु देखने योग्य था, सो देखा है, मैं तिस पदको प्राप्त भया हौं, जिसके पायेते कछु पाने योग्य नहीं रहे। आत्मतत्त्वको देखा है, अनेक रस विषय रूपी सर्प मुझको त्यागि गये हैं, मोहरूपी कुहिड नष्ट हो गई है, इच्छा रूपी मृगतृष्णा शांत हो गई है, रागदोषरूपी धूलित रहित सब ओरते निर्मल भया हौं, उपशमरूपी वृक्षकारि शीतल भया हौं, सब ओरते विस्तृतरूपको प्रात भया हौं, सबते उचित परमात्म देव परमार्थको उस तत्व करिकै परिणामकरिकै ज्ञान विचार करिकै पाया हौं, अब प्रगट देखा है, अधोगतिका कारण जो अहंकार तिसको दूरते त्यागा है, अपना स्वभावरूप जो है आत्मा भगवान् सनातन ब्रह्म, सो अहंकारके वशते विस्मरण भया था, अब चिरकाल करिकै देखा है, इंद्रियांरूपी गर्तविषे मैं गिरा था, रागद्वेषरूपी सर्प होइकारि दुःख पाया था, अरु मृत्युको प्राप्त भया था, मृत्युकी भूमिका टोएविषे तृष्णारूपी करजुएकी कुंजोंविषे रहा, कामरूपी कोयलके जहां शब्द होते थे, जन्मरूपी कूपविषे दुःख पाता था, सुखको पानेकी दिशाविषे डूबा, वासनारूपी जालविषे फँसा, दुःखरूपी दावाग्निविषे जला, आशारूपी फांसीसे बांधा हुआ कईबार जन्ममरणको प्राप्त भया था, अहंकारके वश हुएते जन्ममृत्युको प्राप्त होता है, जैसे रात्रिविषे पिशाच दिखाई देवै, अरु अधीरताको प्राप्त करै, तैसे मुझको अहंकारने किया था, सो अब है, परमात्मरूप मुझको तुमने प्रेरणाकारि अपनी मुक्ति विष्णुरूप धारिकारि विवेक उपदेश किया है, अरु जगाया है ॥ हे देव ईश्वर ! तुम्हारे बोधकारि अहंकाररूपी राक्षस नष्ट भया है ॥ हे विभु ! तिसको मैं नहीं देखता, जैसे दीपकारि तम नहीं भासता तैसे ॥ अहंकाररूपी यक्ष था, अरु मनविषे वासना थी, सो सब नष्ट भए हैं, अब मैं जानता नहीं कि, कहां गये, जैसे दीपक निर्वाण होता है, तब नहीं जानता कि, प्रकाश कहां गया। हे ईश्वर ! तुम्हारे दर्शनकारि मेरा अहंभाव नष्ट भया है, जैसे सूर्यके उदय हुएते चोरभय मिट जाता है तैसे देहरूपी रात्रिविषे अहंकाररूपी पिशाच उठा था, सो अब नष्ट भया है, अब मैं परम

स्वस्थ भया हौं, जैसे वानरोंते रहितवृक्ष स्वस्थ होता है, तैसे मैं परमनिर्वाणको प्राप्त भया हौं, शमु शांत बोधविषे मैं जागा हौं, चिरपर्यंत चोरोंते अब छूटा हौं, अंतर मेरा शीतल भया है, आशारूपी मृगतृष्णा शांत हो गई है, जैसे जलते पर्वतकी तप्तता मिटे, अरु वर्षाकारि शीतलताको प्राप्त होवै तैसे विवेकरूपी विचारकारि अहंकाररूपी तप्तता दूर हो गई है, अब मोह कहां अरु दुःख कहां, आशारूपी स्वर्ग कहां, अरु नरक कहां ? बंध अरु मुक्त कहाँ, अहंकारके होनेकारि पदार्थ भासते हैं, अहंकारके गयेते इसका अभाव हो जाता है, जैसे कंध ऊपर मूर्ति लिखी जाती है, आकाश ऊपर नहीं लिखी जाती, तैसे अहंकारसंयुक्त जो चेतन है, सो नहीं शोभता सुखदुःखादिकका पात्र होती है, जैसे मलीन वस्त्रपर केसरका रंग नहीं शोभता तैसे उसविषे ज्ञान नहीं शोभता जब अहंकाररूपी मेघका अभाव होवै, तब तृष्णारूपी कुहिड भी नहीं रहती, शरत्कालके आकाशवत् स्वच्छ चित्त रहता है, निरहंकाररूपी जल है, जिसविषे, ऐसा जो मैं आनंदमय सरोवर हौं, सो प्रसन्नतारूपी कमलोंकारि शोभता हौं ॥ हे आत्मा, तुझको नमस्कार है, इंद्रियांरूपी जिसविषे तंडुए अरु चित्तरूपी वड़वाग्नि है, दोनों जिसते नष्ट भये हैं ऐसा आत्मारूपी समुद्र है, तिस मुझ आत्माको नमस्कार है, जिसते दूर भया है अरु अहंकार मेघ शांत भई है, दावाग्नि ऐसा जो आत्मानंदरूपी पर्वत है, तिस आनंदके आश्रय मैं विश्राम पाया हौं ॥ हे देव ! तुझको नमस्कार है, प्रफुल्लित है आनंदरूपी कमल जिसविषे, अरु शांत भये हैं चित्तरूपी तरंग जिसते ऐसा मानस सरोवर मैं आत्मा हौं, तिसको नमस्कार है, आत्मारूपी हंस संवितूरूपी पंख जिसके अरु हृदयरूपी कमलोंकारि पूर्ण मानस सरोवर पर विश्राम करनहारे, तिसको नमस्कार है, कालरूपी कलनाते रहित निष्कलंक सदा उदितरूप सब ओरते पूर्ण शांत आत्मा, तुझको नमस्कार है, सदा उदित शीतल हृदयका तम दूर कर्ता सर्वव्यापक हौं, परंतु अज्ञानकारि अदृष्ट भया था, सो चेतन सूर्यको नमस्कार है, मनके मननकारि जो उपजे थे सो अब शांत भये हैं, मनको मनकारि अहंको अहंकारि छेदेते जो शेष रहे, सो मेरी जय है, भावरूप जो दृश्य पदार्थ हैं, तिनको आत्मभावकारि छेदेते, अरु तृष्णाको अतृष्णाकारि छेदेते अनात्माको आत्मविचारकारि नष्ट

कियेते, ज्ञानकरि ज्ञेयको जाननेते मैं अबके निरहंकारपदको प्राप्त भया हौं, भाव अभावक्रिया नष्ट हो गई हैं, मैं अब केवल स्वस्थित हौं, निर्भय निरहंकार निर्मन निस्पंद शुद्धात्मा हौं, मेरा शरीर जीवकी नाईं स्थित है, लीलाकरिकै मनने अहंकारको जीता है, परम उपशमको प्राप्त भया हौं, परम शांति मुझको प्राप्त भई है, मोहरूपी वेताल शांत भया है, अहंकाररूपी राक्षस नष्ट भया है, वासनारूपी कुत्सित भूमिकाते मुक्त विगतज्वर हुआ हौं, तृष्णारूपी जेवरी गंठिकरि हुआ, देह पिंजरा था, तिसविषे अहंकाररूपी पक्षीफँसा था, सो तृष्णारूपी जेवरी विवेकरूपी कातरसे काटी है, अब जाना नहीं जाता कि, शरीररूपीपिंजरते अहंकाररूपी पक्षी कहां निकस गया? अज्ञानरूपी वृक्षविषे अहंकाररूपी पक्षी रहता था तिसके जाननेकरि जाना नहीं जाता, कि कहां गया? दुराशारूपी दुर्मतिने धूसर किया था, भोगरूपी भस्मने शुद्ध दृष्टि दूर करी थी, अरु वासनाकरि हम मृतक हो गये थे, एते काल हम चित्तकी भूमिकाविषे मिथ्या अहंकारको प्राप्त भये थे, अब मैं उपजा हौं, अरु आजही मेरी बड़ी शोभा बढ़ी है, अहंकाररूपीमहामेघ था, सो नष्ट भया है, तिसविषे तृष्णारूपी समता थी, सो नष्ट भई है, निर्मल आकाशवत् शोभता हौं, अब मैं आत्मा भगवान् दखा है, अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, अनुभवरूप सदा प्राप्त है, प्रभुताके समूहके आगे अज्ञान अल्परूप है, कैसा है निस्पंदगति मनरूपी इच्छाते रहित निरिच्छित निरहंकार अरु दूरि भया है रजनी रूपी राग जिसते, अरु विगतज्वर कौतुकते रहित अरु शांत भया है मन जिसते, अरु महा आपदा दीर्घ दुःख देनेहारी क्षय भई हैं जिसते, ऐसा अद्वैत महेश्वर चित्तते रहित है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठ उपशमप्रकरणे आत्मलाभाचिन्तनं नाम पंचत्रिंशतितमः सर्गः ॥ ३५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ हे महात्मा पुरुष! तुझको नमस्कार है, तू आत्मा है, सर्व पदते अतीत चिरकालते मुझको शरण आया है, कल्याण भया है जो अब तुझको पाया ॥ हे भगवन्! तुमको देखि करि सब ओरते नमस्कार करता हौं, अंतरते तुमको आलिंगन करौंगा, त्रिलोकीविषे तुझते अन्य ऐसा बांधव कोई नहीं, तू सबते सुखदायक है, अरु सबका तूही संहार करता है सबकी रक्षा भी तूही करताहै, देनेलेनेहारा सब तूहीहै, अब तू क्या करैगा अरु कहां

जावैगा! अपनी सत्ताकारि विश्वको पूर्ण किया है, अरु विश्वरूप भी वही है, अब सब ओरते तुझको देखता हौं तूही नित्यरूप सर्वत्र है तेरे अरु मेरे विषे अनेक जन्मोंका अंतर पड़ा था, अब कल्याण हुआ जो तुझकोंदेखा है, तू अत्यंत निकट है, अरु परमबांधवरूप है, तुझको नमस्कार है कृतकृत्य स्वरूप सबका कर्ता हर्ता है, संसार तेरी नृत्य है, नित्य निर्मल स्वरूप तुझको नमस्कार है, शंख चक्र गदा पद्मके धारनेहारे तुझको नमस्कार है, अर्धचंद्रमाके धारणहारा सदाशिवरूप तुझको नमस्कार है, सहस्रनेत्र इंद्र तुझको नमस्कार है; पद्मजन्म ब्रह्मा सब देव विद्याका संबंध तूही है तेरेविषे भेद कछु नहीं तौ तुम्हारे हमारेविषे भेद कैसे होवे जैसे समुद्र अरु तरंगोंका संयोग अभेद है, तैसे तेरा अरु मेरा संयोग अभेद है, तूही अनंत विचित्ररूप है, भावअभावरूप जगत्के धरनेहारी नीति है, जगत्की मर्यादाको करती है. हेद्रष्टारूप! तुझको नमस्कार है ॥ सर्वज्ञ सर्व स्वभावरूप आत्मा देव! जन्मजन्मप्रति मैं बहुत दुःखमार्गविषे विचरा हौं तेरी मायाकारि चिरकाल दग्ध भया हौं. हे देवेश! देश अरु लोक मैं अनंत देखेहैं, दृष्टांत द्रष्टा भी अनेक देखे हैं, परंतु किसीकारि तृप्त न भया जगत्को जिस ओर देखौं तिसी ओरते काष्ठ पाषाण जल मृत्तिका आकाश दृष्ट आता था, अब तुझविना कछु और दृष्ट नहीं आता, वांछा किसकी करौं अब तुझको देखा है उपलब्ध स्वरूपको प्राप्त भया हौं, तुझको नमस्कार है, नेत्रोंकी श्यामताविषे जो पुतलियाँरूप स्थित है अरु रूपको देखता है साक्षीभूत सो अंतर कैसे नहीं देखता जो त्वचाविषे स्पर्श करता है, शीत उष्णादिकको जानता है, ऐसा सर्व अंगोंविषे व्यापक अनुभव कर्त्ता है, जैसे तिलोंविषे तेल व्यापक होता है, तिसको अनुभव कोऊ नहीं करता, जो शब्द श्रवण इंद्रियके अंतर ग्रहण करता है, तिस शब्दशक्तिको जो जाननेहारी सत्ता है, जिसविषे शब्दशक्तिका विचार होता है, जिसकारि रोम खडे होइ आते हैं, सो सत्ता दूर कैसे होवै, जो जिह्वाके अग्रविषे रसस्वादको ग्रहण करता है, तिस रसका अनुभव करनेहारी जो सत्ता है, सो दूर कैसे होवै, नासाविषे जो ग्रहणशक्ति है, जिसते गंध आती है तिसको अनुभव करनेहारी अलेप सत्ता है, सो सन्मुख कैसे न होवै? वेद, वेदांत सप्त सिद्धांत पुराण गीताकारि जो जाननेयोग्य ज्ञेय आत्मा है, तिसको

जब जाना तब विश्राम कैसे न होवै, परावर परमात्मा पुरुष है जिन भोगोंकी मैं तृष्णा करता था, सो भोग रम...य विद्यमान आनि होते हैं, तौ भी तेरे दर्शनकारि रस नहीं देते ॥ हे स्वच्छरूप निर्मलप्रकाश ! तू सूर्यभाव होइकारि प्रगट भया है, अरु तेरी सत्ताकारि चंद्रमा शीतल भया है, तेरी सत्ताकारि पृथ्वी स्थित है, तेरी सत्ताकारि देवता आकाशमार्गमें विचरते हैं, तेरी सत्ताकारि आकाशविषे आकाशभाव है, मेरी अहंता तेरेविषे तत्त्वको प्राप्त भई है, तेरे अरु मेरेमें भेद कछु नहीं, तेरेको मेरेको नमस्कार है. मैं सम, स्वच्छ, साक्षीरूप निर्विकार देशकाल पदार्थ छेदते रहित हौं, मन जब क्षोभको प्राप्त होता है, तब इंद्रियोंकी वृत्ति स्फुरणरूप होती है, प्राण अपानशक्ति जब उल्लासको प्राप्त होती है, तब देहरूपी यंत्र रहता है, कैसा यंत्र है, चर्म अस्थि आदिक जिसकेसाथ लकड़ियां अरु जेवरी हैं, इन्द्रियांरूपी घोड़े हैं मनरूपी सारथि चलानेहारा है, तिस देहरूपी रथविषे मैं चेतनरूपी स्थित हौं, परंतु मैं किसी विषे आस्था नहीं करता, देह रहै, अथवा गिरै, मुझको इच्छा कछु नहीं, मैं अब आत्मलाभको प्राप्त भया हौं, चिरकालते उपशमको प्राप्त भया हौं, जैसे कल्पके अंतविषे जगत् शांतिको प्राप्त होता है, तैसे दीर्घ संसारमार्गविषे चिरकाल भ्रमता भ्रमता अब विश्राम पाया हौं, जैसे कल्पके अंतविषे वायु चलता चलता रहजाता है ॥ हे सवरूप आत्मा ! तुझको नमस्कार है, जो तुझको अरु मुझको इसप्रकार जानते हैं ॥ हे देव ! संपूर्ण जगज्जाल जो विस्तृतरूप है, तिसको तुम कदाचित् स्पर्श नहीं किया, तुम्हारी जय है, जैसे पुष्पोंविषे गंध होती है, तिलोंविषे तेल रहता है, तैसे तुम सब देहोंविषे रहते हौ, तू सर्व जगत्का प्रकाशक दीप है, उत्पत्तिप्रलयकर्त्ता अरु सदा अकर्त्तारूप तेरी जय है, तेरे परमाणु चिद्अणु हैं, तिनविषे यह विस्ताररूप जगत् स्थित है, सो जैसे वटबीजविषे वृक्ष होता है, बहुरि अपरविषे अपर होता है, तैसे चिद्अणुविषे जगत् है, जैसे आकाशविषे एक बादरके अनेक आकार दृष्ट आते हैं, तैसे चित्तकला फुरनेकारि अनेक पदार्थ भ्रमरूप भासते हैं, इस संसारके जो क्षणभंगुररूप पदार्थ हैं, तिनकी अभावना कियेते अब भावअभावते रहित भावको देखता हौं, यह निश्चय भया है, मान मद क्रोध अरु कलुषता कठोरता आदिक विकारोंविषे महापुरुष

नहीं डूवते, अरु प्रकृति नीचजन इन दोषोंगुणोंविषे डूवते हैं, पूर्व जो मेरी महादुरात्मा नीच अवस्था थी, तिसका स्मरण करिकै हँसता हौं कि, मैं कौन था, अरु क्या जानता था ॥ हे मेरे आत्मा ! मैं तिस पदको प्राप्त भया था जहां चिंतारूपी अग्निकी ज्वाला थी जहां दग्ध हुए जीर्ण संसारके आरंभ थे, अव देहरूपी नगरविषे स्फाररूप मनोरथकी जय है, अव दुःख ग्रहण नहीं करि सकते जहां दुष्ट इंद्रियांरूपी घोडे जाते थे अरु मनरूपी हस्ती जाता था, सो अव भोगरूपी शत्रुको चारों ओरते भक्षण किया है अरु निष्कंटक राजा चक्रवर्ती भया हौं तू परम सूर्य है, परम आकाशविषे तेरा मार्ग है, उदयअस्तते रहित तू नित्यप्रकाशरूप है, सबके अंतर वाहिर तू प्रकाशता है, अव भोगोंको लीलारूप देखता हौं जैसे अकामी कामिनीको देखै, परंतु इच्छाते रहित होवै है तैसे तू ग्रहण करता है, नेत्ररूपी झरोखेविषे वैठिकारि तू रूपविषयको ग्रहण करता है, अपनी शक्तिकारि इसीप्रकार सव इंद्रियोंविषे वहीरूप धारिकारि तू शब्द स्पर्श रूप रस गंधविषयको ग्रहण करता है, ब्रह्मकोटरविषे जो देश है, तिनाविषे प्राण अपान शक्तिकारि तूही विचरता है आता है, जाता है, ब्रह्मपुरीविषे जाता है, क्षणविषे वहुरि आता है, सव जगत् देहोंविषे तू विचरता है, देहरूपी पुष्पोंविषे तू सुगंधि है, देहरूपी चंद्रमाविषे तू अमृत है, देहरूपी वृक्षाविषे तू रस है देहरूपी वर्फविषे तू शीतलता है, चिन्मयस्वरूप है, दूधविषे तू घृत है, काष्ठविषे तू अग्नि है, उत्तम स्वादोंविषे तू स्वाद है, तेजाविषे तू प्रकाश है, सर्व असर्व अर्थ कर्त्ता पूर्ण तूही है, सर्व जगत्का प्रकाशक तूही है, वायुविषे स्पंद तूही है, मनविषे मुदित तूही है, बुद्धिरूप अग्निविषे तेज सिद्धता तूही है, प्रकाशविषे तू प्रकाश है, सव पदार्थोंको सिद्धकर्ता तू दीपक है, लीन भएते जाना नहीं जाता कि, कहां गए, कई और ठौर जाय प्रकाशते हैं, जेते कछु संसारके विषे पदार्थ अरु अहं त्वं आदिक शब्द हैं, सो ऐसे हैं, जैसे सुवर्णविषे भूषण होते हैं, सो अपनी लीलाके निमित्त किये हैं, आपही तू आप प्रसन्न होता है, जैसे मंदवायुकरि खंड खंड हुएते वादरके हस्ती आदिक आकार हो भासते हैं, तैसे तू भौतिक दृष्टिकरिकै भिन्न भिन्नरूप भासता है ॥ हे देव ! ब्रह्माण्डरूपी मोती हैं, तिनाविषे तू निरिच्छित व्यापक है, अरु भूतोंरूपी जो अन्न हैं तिनका तू खेत है

चेतनरूपी रसकारि बढानेहारा है, अरु तू अस्तकी नाईं स्थित है, अर्थ यह इंद्रियोंके विषयते रहित अव्यक्तरूप है, अरु सब पदार्थोंका प्रकाशक है, जो पदार्थ शोभासंयुक्त विद्यमान होते हैं, अरु तेरी अवस्था उसविषे नहीं होती, तब वह अस्त होता है, जैसे सुंदर स्त्री भूषणोंसहित अंधेके आगे स्थित होवै तौ वह अस्तभूत होती है, तैसे विद्यमान पदार्थ होवै, अरु तू न कल्पै तौ अस्त हो जाता है, जैसे दर्पणविषे मुखका प्रतिबिंब होता है, तिसको देखिकारि अपनी सुंदरताविना प्रसन्न कोई नहीं होता ॥ हे आत्मा ! तेरे संकल्पविना देह त्रुटित हो जाता है, काष्ठ लोष्ठवत् होता है, जब पुर्यष्टका शरीरते अदृष्ट होती है, तब सुखदुःख आदिक क्रम नष्ट हो जाता है, किसीका ज्ञान नहीं होता, जैसे तमविषे कोऊ पदार्थ दृष्ट नहीं आता, तेरे देखनेकारि सुखदुःख आदिक स्थित होते हैं, जैसे सूर्यकी दृष्टिकारि प्रातःकाल शुक्लवर्णकारि प्रकाश आता है, जब अपने स्वरूपको प्राप्त होता है, तब अज्ञानरूप सब विकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे प्रकाश कारि अंधकार नष्ट होता है, तब पदार्थ ज्योंका त्यों भासता है, तैसे अज्ञानके नष्ट भयेते आत्मा ज्योंका त्यों भासता है, यह जो मनरूप तू है तेरे उपजनेकारि सुखदुःखकी लक्ष्मी उपजि आती है, तेरे अभाव हुएते सर्व नष्ट हो जाता है, स्वरूपते तू अनामयरूप है, क्षणभंगुर देहविषे जो मनने आस्था करी है, सो महासूक्ष्म अणु निमेषके लक्षभाग जैसा सूक्ष्म है, सुखदुःखादिककी भावनाकारिकै अनीश्वरताको प्राप्त भया है, तेरे प्रमादकारि स्फुरणरूप होता है, अरु तेरे देखनेकारि सर्व लीन हो जाता है, यह जो पुर्यष्टका तेरा रूप है तिसके देखनेकारि क्षणविषे पदार्थजात भासति आते हैं, जैसे नेत्रोंके खोलनेकारि रूप भास आता है, अरु अंतर्धान मनके मरनेकारि सर्व नष्ट हो जाता है, बहुरि किसीकारि ग्रहण नहीं होता, जो वस्तु क्षणभंगुर है, तिसते कछु कार्य सिद्ध नहीं होता, जैसे बिजलीके प्रकाशकारि कोऊ कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे अंतर्धान होनेकारि देहते कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, जो उपजिकारि तत्काल नष्ट हो जाता है, तिसते कार्य क्या सिद्ध होवै, देहादिक जड़ नाशवंत है, अरु जो सबको प्रकाशता है, सदा निर्विकार सच्चिदानंदरूप है, सुखदुःख आदिक अज्ञानीके चित्तको स्पर्श करता है, अरु जिसका शमचित्त है,

तिसको स्पर्श नहीं करते ॥ हे देव! यह जो सुखदुःख आदिक विवेकके आश्रय हैं, सो अविवेक नष्ट हो गया है तू निरीह निरंश निराकार है, सत् असत्यते पर भैरवरूप परमात्मा तेरी सदा जय है, तू सर्व शास्त्रोंका असिपद है, तू जातअजातरूप सदा जय है, तेरे नाशरूपकी तेरे अविनाशरूपकी जय है, तेरे भावरूपकी तेरे अभावरूपकी जय है, जीतने योग्य तेरी अजीतनेयोग्य तेरी जय है, माया हुलासको प्राप्त हुआ है, अरु उपशांतिनको प्राप्त हुआ है, तुझको नमस्कार है ॥ हे निर्दोष! तेरेविषे स्थित होनेकरि मेरे राग द्वेष मिटि गए हैं, अव वंध कहां अरु मोक्ष कहां, अरु आपदा कहां, संपदा कहां, भाव अभाव कहां, सर्व विकार शांत भए हैं, शम समाधिविषे स्थित भया हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादोपाख्याने संस्तवनं नाम षट्त्रिंशातितमः सर्गः ॥ ३६ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार चिंतनाकरि महाधैर्यवान् प्रह्लाद निर्विकार निरानंद समाधिविषे स्थित भया, जैसे मूर्तिका पर्वत होवै, तैसे अपने पदविषे स्थित भया, जब बहुत काल अपने गृहरूपी भुवनविषे सुमेरुवत् ऐसी समाधिविषे स्थित भया, तब दैत्य ईश्वर तिसको जगाने लगे, परंतु प्रह्लाद न जागा, जैसे समयाविना बीज अंकुर नहीं लेता, तैसे पंचसहस्र वर्ष समाधिविषे व्यतीत भए ॥ अरु शरीर उसी प्रकार पुष्ट रहा, दैत्योंके नगरविषे शांति हो गई; परमानंद आत्माको प्राप्त भया निरानंद जो प्रकाश है सो प्रकाशमात्र रहागया और कलना सब मिटि गई, एता काल जब व्यतीत भया, तब रसातल मंडलविषे राजभय दूर हो गया, छोटेको बड़ा भक्षणकरि लेवै, हिरण्य काशिपु मृत्यु भया; तिसका पुत्र समाधिविषे स्थित भया, अपर कोऊ राजा न हुआ, दैत्यमंडलकी विपर्ययदशा भई, निर्वलको वलवान् मारि लूटि लेवै, तब अनेक मल्ल मिलिकरि प्रह्लादको जगाय रहे, तौ भी न जागा, जैसे सूर्यमुखी कमलको रात्रिविषे भँवरे गुंजारव करैं, तौ भी प्रफुल्लित नहीं होता, मूँदा रहता है, तैसे प्रह्लाद न जागा, संवित्कला जो चित्त धातु है, सो तिसके अंतरफूर्ति न भासै, जैसे मूर्तिका लिखा सूर्य प्रकाशते रहित होता है तैसे देखिकरि दैत्य उद्वेगवान् भए; जहां किसीको सुखदायक देशस्थान भासा, तहां जाय रहे, पाताल मंडलको राजाते हीन देखते भए, मर्यादा

सब दूर हो गई; मत्सर आय प्रवर्त्ता, जो बलवान् होवै, सो निर्बलको ग्रासि लेवै, मर्यादाका क्रम नष्ट हो गया, अपने २ वांछित देशको चले जावैं, पुरुष स्त्रियां रुदन करैं शोकवान् होवैं कई मारे जावैं, कई लूटे जावैं, व्यर्थ अनर्थ कदर्थ करनेवाले हो गए. दैत्यता परायण हुई, बांधव नष्ट हो गए, उपद्रव उत्पन्न होने लगे, दिशाके मुख अग्निरूप हो गए, देवता आनि दिखाई देवैं, निर्बल दैत्यको बांधि ले जावैं, दैत्य मूल भूमिते रहित निर्लक्ष्मी उजाड़ जैसे हो गए, दैत्यपुर विषे अनीति अकांड उपद्रव आनि हुआ, जैसे कल्पके अंतविषे जीव दुःख पाते हैं; तैसे दैत्य दुःख पाने लगे ॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे दैत्यपुरीप्रभंजनवर्णनं नाम सप्तत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३७ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार जब दैत्यपुरीकी दशा भई, तब संपूर्ण जगत्जालका क्रम पालनेहारा जो विष्णु देव है, क्षीरसमुद्रविषे शेषनागकी शय्यापर शयन करनेहारा, सो चतुर्मास वर्षाकालकी निद्राते जागा, बुद्धिके नेत्रोंकरि जगत्की मर्यादाको विचारत भया, तब देखा कि, पातालविषे प्रह्लाद दैत्य समाधिविषे पद्मासन बांधकरि स्थित भया है, तब शंख चक्र गदा पद्म हस्तविषे धरनेहारा, अरु सर्व देहोंविषे व्यापक है, ऐसा विष्णुदेव पद्मासन बांधिकरि विचार करता भया कि, प्रह्लाद आत्मपदविषे स्थित हुआ पुतलीवत् हो गया है, बडा कष्ट है, जो सृष्टि दैत्यते रहित भई, तब देवता जीतनेकी इच्छाते रहित होइकरि आत्मपदविषे स्थित हो जावैंगे, जब देवता, दैत्योंका विरोध रहता है, तब जीतनेके निमित्त याचना करते हैं कि, दैत्य नष्ट होवैं, तब सब देवता निर्द्वंद्वरूप होइकरि परमपदको प्राप्त होवैंगे, जैसे रसते रहित वल्ली सूख जाती है, तैसे अभिमान इच्छाते रहित देवता जगत्की ओरते सुखकरि आत्मपदको प्राप्त होवैंगे, जब देवताके समूह शांतिको प्राप्त भये, तब पृथ्वीविषे यज्ञ तप आदिक जो उत्तम क्रिया हैं, सो सब निष्फल हो जावैंगी, न कोऊ करैगा, न किसीको प्राप्त होवैगा, जब पृथ्वीलोकते शुभ क्रिया नष्ट भई, तब लोक भी नष्ट हो जावैंगे अकांड प्रलय प्रसंग होवैगा, सब मर्यादाक्रम जगत्का नष्ट हो जावैगा, जैसे धूपकरि बर्फ नष्ट होता है, तैसे जगत्क्रम सब नष्ट होवैगा, इसको नष्ट हुएते भी मुझको कछु नहीं परंतु मैंने अपनी लीला रची है, सो

सब नष्ट हो जावैगी तब मैं भी इस शरीरका त्यागकरि परमपदविषे स्थित होऊंगा, अकांडही जगत् उपशमको प्राप्त होवैगा ताते इसविषे कल्याण नहीं देखता जो दैत्योंके उद्वेगते रहित देवता भी शांत हो जावैंगे तप क्रिया नष्ट हो जावैंगी जीव दुःखी होइकरि नष्ट हो जावैंगे ताते मैं जगत्कर्मको स्थापन करौं, जो परमेश्वरकी नीति इसीप्रकार है अब रसातलको जाऊं अरु जगत्की मर्यादा ज्योंकी त्यों स्थापन करौं, जो प्रह्लादते इतर पातालका मैं राजा करौं, तौ वह देवतोंका शत्रु होवैगा, ताते ऐसे न करौं, प्रह्लादकी जो देह है, सो अंतका जन्म है, परम पावन देह है अरु कल्पपर्यंत रहैगी यह ईश्वरकी नीति है सो ज्योंकी त्यों है ताते मैं जाइकरि दैत्येन्द्र प्रह्लादको जगाऊं जो जागिकरि जीवन्मुक्त हुआ दैत्योंका राज्य करै जैसे मणि मलते रहित प्रतिबिंबको ग्रहण करती है तैसे प्रह्लाद भी इच्छाते रहित होइकरि प्रवर्त्तै इसप्रकार सृष्टि देवता दैत्योंसंयुक्त रहैगी अरु परस्पर इनका द्वेष न होवैगा मेरी क्रीड़ा लीला इच्छा होवैगी यद्यपि सृष्टिका होना न होना मुझको तुल्य है तौ भी जो कछु नीति है सो जैसे स्थितहै तैसेही रहै, जो वस्तु भावविषे तुल्य होवै नाशविषे अरु स्थितिविषे तिसका प्रयत्न करना कुबुद्धि है सो जैसे आकाशके हननका यत्न करिये तैसे है ताते मैं पातालको जाऊं अरु प्रह्लादको जगाऊं जगत्की मर्यादा स्थापन करौं, जो नीति है, तिसको अपनी लीलाकरि प्रतिपादन करौं, दैत्यपुरीविषे प्राप्त होइकरि तिसको जगाऊं अरु उसीको अपने प्रकृति आचारविषे जोड़ि आवौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे भगवान् चित्तविवेको नाम अष्टत्रिंशत्तमः सर्गः ॥ ३८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार चिंतनाकरि सर्वात्मा जो विष्णु देव है, अपने परिवारसहित क्षीरसमुद्रते चले जैसे मेघघटा एकत्र होइकरि चलै तैसे आइकरि प्रह्लादके नगरको प्राप्त भए, कैसा नगर है, मानौ दूसरा इंद्रलोक है, मंदिरविषे प्रह्लादको विष्णुजी देखते भए, अरु जो निकट दैत्य थे सो विष्णुजीको दूरते देखिकरि भाजि गए जैसे सूर्यते उलूकादिक भाजि जावैं तब जो मुख्य दैत्य थे तिनकेसाथ दैत्यपुरीविषे विष्णुजी प्रवेश करते भये जैसे तारासंयुक्त चंद्रमा आकाशविषे प्रवेश करता है; तैसे विष्णुजी गरुडपर आरूढ हुआ लक्ष्मी साथ चमर करती और ऋषि देव

अनेक आते भये विष्णुजी प्रह्लादके गृह आते भये, अरु आतेही विष्णुजी कहते भये ॥ हे महात्मा पुरुष ! जाग जाग, ऐसे कहकरि पाञ्चजन्य शंखको बजावत भये महाशब्द भया, बहुरि प्रह्लादके श्रवणोंसाथ लगाया कैसा शब्द है जो विष्णुजीके प्राणोंते जिसका फुरणा है जैसे प्रलयकालविषे मेघका शब्द होवै, तैसे बड़े शब्दको सुनिकारि दैत्य भयभीत होइकारि पृथ्वीपर गिरगिर पडे अरु शनैः शनैः दैत्येंद्रको जगाया जैसे कटकमंजरी मेघकारि प्रफुल्लित होती है तैसे विष्णुजीने जगाया प्राणशक्ति जो ब्रह्मरंध्रविषे थी, तहांते विष्णुजीने उठाई तब शरीरविषे प्रवेश कर गई जैसे सूर्यके उदय हुएते सूर्यकी प्रभा वनविषे प्रवेश कर जाती है, तैसे नव द्वारोंविषे प्रवेश करत भई तब प्राणरूपी दर्पणविषे चित्तसंवित् प्रतिबिंबित होइकरि चैतन्यमुखत्व हुई, अरु मनभावको प्राप्त भई, जैसे प्रातःकालविषे कमल खिल आते हैं, तैसे नेत्र प्रफुल्लित हो आए, प्राण अरु अपान नाडीविषे छिद्रोंके मार्ग विचरने लगे, जैसे वायुकरि कमल स्फुरने लगते हैं तैसे मन अरु प्राणशक्तिकरिकै अंग फुरने लगे; अरु जाग जाग शब्द जो भगवान् कहते थे, तब जागा अरु जानत भया कि, मुझको विष्णु भगवान्ने जगाया है, जैसे मेघका शब्द सुनिकरि मोर प्रसन्न होता है, तैसे प्रसन्न भया मनविषे दृढ स्मृति हो आई, तब त्रिलोकीका ईश्वर विष्णुदेव कहता भया, जैसे पूर्व कमलोद्भव ब्रह्माको कहा था, तैसे प्रह्लादको कहता भया ॥ हे साधो ! तू अपनी महालक्ष्मीका स्मरण कर कि, तू कौन है, समयविना देहके त्यागनेकी इच्छा काहेको करी थी, ग्रहणत्यागके संकल्पते रहित पुरुष हैं तिनको भाव अभावके होनेविषे क्या प्रयोजन है, उठिकारि अपने आचारविषे सावधान होहु, यह तेरा शरीर कल्पपर्यंत रहैगा नष्ट नहीं होवैगा, यह नीतिको ज्योंकी त्यों जानते हैं, हे आनंदित ! तू जीवन्मुक्त हुआ राज्यविषे स्थित होहु, क्षीणमन गत उद्वेग कल्पपर्यंत तेरा देह रहैगा, बहुरि कल्पके अंतविषे तू शरीर त्यागैगा, त्यागिकारि अपनी महिमाविषे स्थित होवैगा, जैसे घटके फूटेते घटाकाश महाकाशको प्राप्त होता है, अब तू निर्मल दृष्टिको प्राप्त भया है, अरु लोकोंका तुझने परावर देखा है, अब तू जीवन्मुख विलासी भया है ॥ हे साधो ! द्वादशसूर्य तौ उदय नहीं भए हैं, जो प्रलयकालविषे तपते हैं, अब तू क्यों

शरीर त्यागता है ? उन्मत्त पवन तौ चला नहीं, जो त्रिलोकीकी भस्मको उड़ावनेहारा है, अरु देवतोंके विमान तिसकरि गिरे नहीं, तू क्यों व्यर्थ शरीर त्यागता है ? सब लोकोंके शरीर सूखे वृक्षकी मंजरीवत् अभी नहीं सूखे पुष्कर मेघ अरु वह विजली जगत् विषे नहीं फुरी तू क्यों व्यर्थ शरीर त्यागता है ? पर्वत तो युद्धकरि परस्पर ठहकने लगे नहीं अबलग मैं भूतोंको खैंचने लगा नहीं, अब लोकोंविषे विचरता हौं, यह अर्थ है, यह मैं हौं, यह पर्वत है, यह भूत प्राणी हैं, यह जगत् है, यह आकाश है तू देहको मत त्याग, देहको धारे रहो ॥ हे साधो ! जो जीव अज्ञानयोगकरि शिथिल भया है, अर्थ यह जो देहविषे आत्मअभिमान है, जो मैं अरु मम तिसकरि व्याकुल रहता है, दुःखोंकरि जीर्ण होता है, तिसको मरणा शोभता है कि, मैं कृश हौं, दुःखी हौं, मूढ हौं, अनात्मा अभिमानका दृढ निश्चय है, यह भावना जिसके अंतर है , तिसको मरण श्रेष्ठ है, जिसको तृष्णा जलाती है, हृदयविषे संसारभावना जीर्ण करती है, जैसे पुरातन गृहको चूहा जीर्ण करता है, जिसके मनरूपी वनविषे चित्तरूपी लता जो दुःखसुखरूपी पुष्पोंकरि प्रफुल्लित है, अरु उदय होती है, तिसको मरण श्रेष्ठ है, जो पुरुष अपने देहविषे आधि व्याधि दुःखोंकरि जलता है, अरु कामक्रोधरूपी सर्प जिसके अतंर फुरते हैं, देहरूपी सूखा वृक्ष निष्फल है, अरु चित्त चंचल है इस देह त्यागनेको लोकाविषे मरना कहते हैं, स्वरूपकरि नाश किसीका नहीं होता, क्या ज्ञानीका क्या अज्ञानीका हे साधो ! जिसकी बुद्धि आत्मतत्त्वके अवलोकनते उपरांत नहीं होती, ऐसा जो यथार्थदर्शी ज्ञानवान् है, जिसका अंतर शीतल रागद्वेषते रहित हुआ है, अरु दृश्यवर्गको साक्षीभूत होइकरि देखता है, तिसका जीना श्रेष्ठ है, जो पुरुष सम्यक् ज्ञानकरि हेयोपादेयते रहित है, चेतनतत्त्वविषे तद्रूप चित्त भया है अरु संकल्पमलते रहित चित्तको आत्मपदविषे जोडा है, जिस पुरुषको जगत्के पदार्थ इष्ट अनिष्ट समान भासते हैं, शांत चित्त हुआ लीलावत् जगत्के कार्यको करता है, ऐसा जो वासनाते रहित पुरुष है, अरु इष्ट अनिष्टकी प्राप्तिविषे राग द्वेष नहीं करता, अरु ग्रहण त्यागकी बुद्धि उदय नहीं होती अरु जिसके श्रवण कियेते अरु दर्शन कियेते औरोंको आनंद उपजता है, तिसका

जीना शोभता है, जिसके उदय हुएते जीवोंके हृदयकमल प्रफुल्लित होते हैं, तिसका चिरजीवना प्रकाशवान् शोभता है, वह पूर्णमासीके चंद्रमावत् सफल प्रकाशता है, और नीच नहीं शोभते ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादोपाख्याने नारायणवचोपन्यासयोगो नाम एकोनचत्वारिंशतितमः सर्गः ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे साधो ! यह जो देह संग दृष्ट आता है, तिसका नाम जीना कहते हैं, अरु इस देहका त्याग करि अपर देहविषे प्राप्त होना तिसका नाम मरना कहते हैं ॥ हे बुद्धिमान् ! इन दोनों पक्षोंते अब तू मुक्त है, तुझको क्या मरना अरु क्या जीना दोनों भ्रममात्र हैं, इस अर्थके दिखावनेनिमित्त मैं तुझको मरना अरु जीना कहा है- काहेते कि, गुणवानोंका जीना श्रेष्ठ है, अरु मूढोंका मरना श्रेष्ठ है, अरु तू न जीता है, न मरैगा, देहके होते भी तू विदेह है, आकाशकी नाईं असंग हैं, जैसे आकाशविषे वायु नित्य चलता है; परंतु आकाश तिसते निर्लेप रहता है, तैसे तू देहविषे निर्लेप रहैगा, देह, इंद्रियां, मन आदिककी क्रिया सब तुझकरि होती हैं, सबका कर्त्ता सत्ता देनेहारा तूही है, अरु स्वरूपकरि सदा अकर्त्ता है, जैसे वृक्षकी ऊँचाईका कारण आकाश है, तैसे तेरेविषे कर्तव्य है, तू अब जागा है, वस्तुको ज्योंकी त्यों जानी है, तू अस्ति नास्ति सर्वका आत्मा है, यह परिच्छिन्नरूप जो देह है, सो अज्ञानीका निश्चय है, यह केवल दुःखोंका कारण है, अरु तू सर्व प्रकार सर्वात्मा चेतन प्रकाश है, तेरी बुद्धि आत्मपरायण है, तुझको देह अदेह क्या, ग्रहण क्या, अरु त्याग क्या ? तत्त्वदर्शी जो पुरुष हैं, तिनका भाव पदार्थ उदय होवै, अथवा लीन होवै, प्रलयकालका पवन चलै, तौ भी चलाय नहीं सकता, भाव अभावते तिसका मन रहित है जैसे पर्वतऊपर पर्वत पड़ै, अरु चूर्ण होवै, अरु कल्पके अग्निविषे जलने लगै, तौ भी ज्ञानवान् अपने आपविषे स्थित है, चलायमान नहीं होता, सब भूत स्थित होवैं, अथवा इकट्ठे नष्ट हो जावैं, अथवा वृद्ध होवैं, वह सदा अपने आपविषे स्थित है, अरु इस देहके नष्ट भएते नाश नहीं होता, विरोधी हुएते नहीं प्राप्त होता, इस देहविषे जो स्थित परमेश्वर आत्मा है, सो मैं हौं, अरु अनात्मा भ्रम नष्ट हो गया है, ग्रहण त्याग यह मिथ्या कल्पना उदय नहीं होती, जो विवेकी तत्त्ववेत्ता है, तिसका संक

लपभ्रम नष्ट हो जाता है कि, यह मैं हौं, यह करौंगा, यह त्याग किया है, यह ग्रहण किया है, इत्यादिक भ्रम नष्ट हो जाते हैं, जो प्रबुद्ध पुरुष है, सो सब क्रिया कर्त्ता भी अकर्त्तापदको प्राप्त होता है, सर्व अर्थोंविषे अकर्त्ता अभोक्ता रहता है, किसी जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता, जब कर्तृत्व भोक्तृत्व शांत भया, तब आत्मपद शेष रहता है, इस निश्चय करीहुई दृढताको बुद्धिमान् मुक्त कहते हैं. जो प्रबुद्ध पुरुष है, सो चिन्मात्र स्वरूप हैं, सर्वको अपने वश करिकै स्थित हैं, ग्रहण किसका करैं, अरु त्याग किसका करैं, ग्राह्य अरु ग्राहक शब्दभाव अविद्या है, देह इंद्रियोंकारि होता है, सो ग्रहण करना क्या, अरु त्याग करना क्या ? जब ग्राह्यग्राहकभाव हृदयते दूर हुआ, इसीका नाम मुक्त है, तिसको ऐसी स्थिति आनि उदय होती है, जो परमार्थसत्ताविषे सदा स्थित रहता है, सो पुरुषोंविषे पुरुषोत्तम सुषुप्तिकी नाईं स्थित है, उसकै अंगोंकी चेष्टा करता बोधको प्राप्त भई है, परमविश्रांतिवान् निर्वासानिक पुरुषोंकी वासना भी जगतविषे स्थित दृष्टि आती है, अर्ध सुषुप्तिकी नाईं चेष्टा करता है, सब जगत्विषे आत्मा देखता है, आत्मविषयिणी बुद्धिकरि सुखविषे हर्षवान् नहीं होता, दुःखविषे शोकवान् नहीं होता एकरस आत्मपदविषे स्थित रहता है, नित्य प्रबुद्ध पुरुष कार्यभावको ग्रहण करता है, जैसे इच्छाते रहित दर्पण प्रतिबिंबको ग्रहण करता है, तैसे भली बुरी भावना तिसको स्पर्श नहीं करती, तिनको आत्मपदविषे जाग्रत् है, अरु संसारकी ओरते सोए हैं, सो पुरुष सुषुप्तिरूप हैं, जैसे बालक पालनेविषे सोया हुआ स्वाभाविक अंगको हिलाता है, तैसे उनका हृदय सुषुप्तिरूप है, अरु व्यवहार करते हैं ॥ हे पुत्र ! तू अजात परमपदको प्राप्त भया है, गुणवान् हुआ, तू एक दिन ब्रह्माका इस देहको भोगैगा, इस राज्यलक्ष्मीको भोगिकरि बहुरि अच्युत परमपदको प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादबोधो नाम चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४० ॥ वासिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जगतरूपी रत्नोंका डब्बा, अद्भुत दर्शन है, जिसका सो विष्णु देवने शीतल वाणीकरि जब इसप्रकार कहा, तब प्रह्लाद नेत्र खोलकर धैर्यसहितकोमल वचन मननभावको ग्रहण करि देखा है, अरु चर्मदृष्टिकरि बाह्य देखा है, बडा कल्याण हुआ है,

परमेश्वर अपना आप स्वरूप अनंत आत्मा है, सर्व संकल्पते रहित आकाशवत् निर्मल है, अब मुझको न शोक है, न मोह है, न वैराग्यकरि देहत्यागकी चिंता है, जो कछु कार्य भयदायक होता है, सो एक आत्माके विद्यमान शोक कहां, अरु नाश कहां, देहरूप संसार कहां, अरु संसारकी स्थिति कहां, भय कहां, अरु अभयता कहां ? मैं यथा इच्छित अपने आपकरि आपविषे स्थित हौं, इसप्रकार मैं निर्मल सब विस्तृतरूप केवल पावनविषे स्थित हौं, संसारबंधनको त्यागिकरि विरक्त भया हौं, जो अप्रबुद्ध मूढ हैं तिनकी बुद्धिविषे हर्ष शोक चिंता विकार सदा रहतेहैं, अरु देहके भावविषे सुख मानतेहैं, अभावविषे दुःखी होते हैं, यह चितारूपी विषकी पंक्ति मूढोंको लेपायमान होती है, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह ग्रहण करने योग्य है; यह त्यागने योग्य है, इसप्रकार मूर्खोंके चित्तकी अवस्था डोलायमान होती है, पंडितोंकी नहीं होती, मैं भिन्न हौं, वह भिन्न है, यह अज्ञानकरिकै अंधवासना है, शुद्ध बुद्धिके विद्यमान नहीं रहती, जैसे सूर्यके किरणोंते रात्रि दूर रहती है, तैसे यह वासना दूर रहती है, यह त्याग करिये, यह ग्रहण करिये, सो मिथ्या चित्तका भ्रम है, सो उन्मत्त अज्ञानीके अंतर होता है, ज्ञानवान्के अंतर यह भ्रम उदय नहीं होता ॥ हे कमलनयन ! जो सर्व तूही है, विस्तृत आत्मारूप है, हेयोपादेय द्वैतभावकल्पना कहां है, यह संपूर्ण जगत् विज्ञानरूप सत्ताका आभास है, सत्य असत्यरूप जगत्‌विषे ग्रहणत्याग किसका करिये, केवल अपने स्वभावकरि द्रष्टा अरु दृश्यका विचार किया है, तिसविषे मैं प्रथम क्षीण विश्रांतिमान् हुआ था, अब भाव अभाव जगत्के पदार्थोंते मुक्त भया हौं, हेयोपादेयते रहित आत्मतत्त्व मुझको भासता है, समभावको प्राप्त भया हौं, अब मुझको संशय कछु नहीं रहा जो कछु करता हौं, सो आत्माकरि करता हौं, त्रिलोकीविषे तबलग तू पूजने योग्य है, जबलग यह उन्मत्त नहीं भया, ताते पूजन करता हौं, आदरसंयुक्त तुम ग्रहण करौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार दैत्यराज कह करि क्षीरसमुद्रविषे शयन करनेहारे विष्णुको श्रेष्ठ सुमेरुकी मणिसों पूजत भया, बहुरि शंख चक्र गदा पद्म आदिक शस्त्रका पूजन करत भया, बहुरि गरुडकी पूजा करत भया, बहुरि देवता विद्याधरकी पूजा करी,

इसप्रकार भगवान्‌को परिवारसंयुक्त पूजत भया, अंतर आत्मस्वरूपकी अरु बाहिर विष्णु देवकी मूर्तिका पूजन किया, तब लक्ष्मी पति कहत भए ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे दैत्येश्वर ! तू उठकर सिंहासनपर बैठ, मैं तुझको अपने हस्तसों अभिषेक करता हौं, पांचजन्य शंख बजाता हौं, तिसका शब्द सुनकर सब सिद्ध देवता आयकरि तेरा मंगल करेंगे ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहकर विष्णुजीने दैत्यको सिंहासनपर बैठाया, जैसे सुमेरुपर मेघ आय बैठे तैसे बैठाइकरि क्षीरसमुद्रादिकका अरु गंगादिक तीर्थोंका जल मँगाया, तब पांचजन्य शंख बजाया; तिसके शब्दकारि सब सिद्धगण ऋषि ब्राह्मण विद्याधर देवता मुनिके समूह आए, सर्वात्मा पुरुष दैत्यराजके निमित्त सबको खैंचि ले आये, पवनगण देवगण सब स्तुति करत भए, प्रह्लादको इसप्रकार अभिषेक देइकरि मधुसूदन कहत भये ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे निष्पाप ! जबलग सुमेरुके धरनेहारी पृथ्वी है, अरु सूर्यचंद्रमाका मंडल है, तबलग तू अखंडित गुणवान् राज्य करि इष्टअनिष्टविषे समबुद्धि वीतराग क्रोधते रहित होइकारि भोग अरु राज्यकी पालना करियो, तुझको पूर्ण भूमिका प्राप्त भई है, तिसाविषे स्थित हुए जो राज्यगणोंका प्रवाह जैसे प्राप्त होवै तैसे हर्षशोकते रहित होइकारि विचरौ, स्वर्ग प्राप्त होवै, अथवा नरक प्राप्त होवै, तू उद्वेगते रहित होइकारि भोगहु, देश काल क्रिया कार्य जैसे प्राप्त होवै, तैसे होवै, तैसेही स्थित होहु, हेयोपादेयते रहित हुआ तू बंधमान न होवैगा, संसारकी स्थिति तुझने सब देखी है, अरु सबको जानता है, और मैं तुझको क्या उपदेश करौं, तू रागद्वेषते रहित होइकारि राज्य भोग, अब दैत्योंका रुधिर धरणीपर न पडैगा. अर्थ यह कि, देवतोंसे विरोध न होवैगा, आजते देवता अरु दैत्योंका संग्राम बंद हुआ जैसे मंदराचलते रहित क्षीरसमुद्र शांतिमान् भया, तैसे सब जगत् स्वस्थ रहैगा, मोहरूपी जो तम है, सो तेरे हृदयते दूरि भया है, सदा प्रकाश स्वरूपकी लक्ष्मी हुई है, अनंत विलासको राज्यलक्ष्मी करि भोगता आत्मपदविषे स्थित रहै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादाभिषेको नाम एकचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४१ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार कहकरि पुंडरीकाक्ष विष्णु परिवारसंयुक्त चले मानो दूसरी संसारकी रचना दैत्यमंदिरते चली है

ता पाछे प्रह्लादने पुष्पांजलि दीनी, क्रमकरिकै क्षीरसमुद्रको प्राप्त भए, देवतोंको विदा करिकै आप शेषनागके आसनपर स्थित भए, जैसे श्वेत कमलपर भँवरा बैठै, तैसे बैठिकरि इंद्रको सब देवतासंयुक्त सबविषे स्थित किए, अरु पाताललोकविषे दैत्येश्वरको बैठाया, तब आप विगतज्वर हुआ, सृष्टिकी स्थितिविषे जो चिंतना थी, सो दूर हो गई, देवता अरु दैत्यका विरोध रहता था सो नष्ट भया, सब शांतिको प्राप्त भये ॥ हे रामजी ! यह दृष्टि संपूर्ण मल अज्ञानके नाश करनेहारी है, जो प्रह्लादके बोधकी प्राप्तिकी अवस्था मैंने तुझको कही है, सो कैसी अवस्था है, चंद्रमाके मंडलवत् शीतल है, जो मनुष्यलोकविषे बड़ा पापी होवै, अरु इसको विचारै, तब वह भी शीघ्रही परमपदको प्राप्त होवै अपर जो पापोंते रहित हैं, तिसकी क्या वार्त्ता कहिये, सम्यक् विचार करिकै पाप नष्ट हो जाता है, जो इन वाक्योंको विचार करै सो कौन है, जो परमपदको प्राप्त न होवै ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूप जो पाप है सो इसके विचारनेकारि नष्ट हो जाता है, पापोंका कारण जो अज्ञान है; तिसका नाश करनेहारा यह विचार है, तातें विचारका त्याग कदाचित् न करौ, यह जो प्रह्लादकी सिद्धता कही है, इसको जो मनुष्य विचारै तिसके अनेक जन्मोंके पाप नष्ट हो जावैं, इसविषे संशय कछु नहीं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! प्रह्लादका मन तौ परमपदविषे प्रणमी गया था पांचजन्य शब्द करिकै तिसको कैसे जगाया ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे निष्पाप रामजी ! लोकविषे मुक्ति दो प्रकारकी हैं एक सदेह अरु एक विदेह, तिनका भिन्न भिन्न विभाग सुन, जिस पुरुषकी बुद्धि देहादिकोंते असंसक्त है, ग्रहणत्यागकी जिसकेविषे ईषणा नहीं, निरहंकार हुआ चेष्टा करता है, तिसको तू सदेहमुक्ति जान, अरु देहादिक सब नष्ट हो जावै बहुरि जन्म को धरै नहीं, तिसको विदेहमुक्ति जान, तिस पदको प्राप्त होता है, जो अदृश्यरूप है, अरु अज्ञानीकी वासना कच्चे बीजकी नाईं है, जन्मरूपी अंकुरको प्राप्त करती है, अरु ज्ञानवान् मुक्तकी वासना भूने बीजकी नाईं जन्मरूपी अंकुरते रहित होती है, अरु विदेहमुक्तकी वासनाका अंकुर दृष्ट नहीं आता, जीवन्मुक्त पुरुषके हृदयविषे शुद्ध वासना होती है, पावनरूप परमउदारता सत्तामात्र नित्य आत्मध्यानमें है, अरु संसारकी ओरते सुषुप्तिकी नाईं

शांतरूप है सहस्र वर्षका अंत हो जावै अरु शुद्ध वासनाका बीज हृदयविषे होवै, तौ वह पुरुष समाधिते जागैगा, सो जीवन्मुक्त है, ताते प्रह्लादके अंतर शुद्ध वासना थी, तिसकरि पांचजन्य शंखके शब्दसों जागि आया, अरु विष्णु सब भूतोंका आत्मा है, जैसे जिसकी इच्छा फुरती है, तैसेही तत्काल होता है, सर्वज्ञ सबका कारण है, जब विष्णु चिंतना करै तब प्रह्लाद जागा, आप अकारण है, कोऊ इसका कारण नहीं, यह सब भूतोंका कारण है, सृष्टिकी स्थिति निमित्त आत्मा पुरुषने यह विष्णुवपु धारा है, आत्माके देखनेकरि माधव विष्णुका दर्शन होता है, अरु विष्णुकी आराधनाकरि शीघ्रही आत्माका दर्शन होता है, आत्माके देखनेनिमित्त तुम भी इसी दृष्टिको आश्रय करौ, तू विराट्रूप है, इसी दृष्टिकरि शीघ्रही आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी, जो निरंतर आत्मपद है, यह वर्षाकालकी नदीवत् संसार असार बादर है, सो विचाररूपी सूर्यके देखेविना जडताको दिखावता है, विष्णुरूप जो आत्मा है, तिसकी प्रसन्नताते बुद्धिमान्को यह भास्वररूप माया नहीं वेधती, जैसे यक्षमाया यक्षमंत्रवालेको नहीं वेध सकती, तैसे आत्माकी इच्छाते यह संसारमाया घनताको प्राप्त होती है, अरु आत्माकी इच्छाकरि निवृत्त होती है, यह संसारमाया ईश्वरकी इच्छासे वृद्ध होती है। जैसे अग्निकी ज्वाला वायुकरि वृद्ध होती है, अरु वायुहीकरि नष्ट होती है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादव्यवस्थावर्णनं नाम द्विचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४२ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् सब धर्मोंके वेत्ता ! तुम्हारे वचन परम शुद्ध कल्याण स्वरूप हैं, तिनको श्रवणकरि मैं आनंदमान भया हौं, जैसे चंद्रमाकी किरणोंकरि औषधीपुष्ट होती हैं तुम्हारे वचनके श्रवणकी जिसको वांछा है, सो पुरुष जैसा पुष्पोंकी मालाकरि सुंदर छाती शोभती है तैसे शोभता है कैसे वचन हैं, परम पावन अरु कोमल हैं ॥ हे गुरु ! तुम कहते हो, सब कार्य अपने पुरुषप्रयत्नकरि सिद्ध होता है, जो ऐसे हैं तौ प्रह्लाद माधवके वर विना क्यों जागता भया, जब विष्णुने वर दिया, तब ज्ञान जानता भया ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे राघव ! जो कछु प्रह्लादको प्राप्त भया है, सो महात्मा पुरुषोंको अपने अपने पुरुषार्थकरि प्राप्त भयाहै, पुरुषार्थविना

कछु नहीं प्राप्त होता, काहेते कि, जैसे तिलों अरु तेलविषे भेद कछु नहीं, तैसे आत्मा अरु विष्णुविषे, भेद कछु नहीं. जो विष्णु है, सो आत्मा है, अरु आत्मा है, सो विष्णु है, विष्णु अरु आत्मा दोनों एक वस्तुके नाम हैं जैसे विटप अरु पादप दोनों एक वृक्षके नाम हैं तैसे प्रह्लादने प्रथम अपने आपकरि अपनी प्रेमशक्तिको विष्णुभक्तिविषे जोडा, सो आत्मशक्तिकरि जोडीहुई आत्माते आपही वर पाता भया, अरु आपही विचारकरि अपने मनको जीता, यह कदाचित् आत्माविषे आपही अपनी शक्तिकरि जागता है अथवा विष्णुभक्तिकरि जागता है ॥ हे रामजी ! चिरपर्यंत आराधना करता प्रतापवान् हुआ, ताते विचारते रहितको विष्णु भी ज्ञान देनेको समर्थ न भया, आत्माके साक्षात्कारविषे मुख्य कारण अपने पुरुषार्थते उपजा विचार है अरु गौण कारण वर आदिक हैं, ताते तू मुख्य कारणको आश्रय कर, प्रथम पांच इंद्रियोंको वशकर, चित्तको आत्मविचारविषे जोड़, यह अभ्यास कर, प्रथम पांच इंद्रियोंको वश कर जो कछु किसीको कदाचित् प्राप्त होता है, सो अपने पुरुषार्थकरि होता है, पुरुषार्थविना नहीं होता, अपने पुरुषार्थप्रयत्नकरि इंद्रियांरूपी जो पर्वत हैं, तिनते उल्लंघन होवै, बहुरि संसारसमुद्रको तरि जावै, तब परमपदकी प्राप्ति होवै, जो पुरुष प्रयत्नविना जनार्दन दीखता होवै, तौ मृग पक्षीगणोंको क्यों दर्शन देइकरि उद्धार नहीं कर जाता, जो गुरु अपने पुरुषार्थविना उद्धार करते होवै, तौ अज्ञानी अविचारी ऊंट बैल आदिक पशुको क्यों नहीं कर जाते, ताते विष्णुकरि, न गुरुकरि, न किसी अपरकरि, पानेकी इच्छा बुद्धिमान् करते हैं, अपने मनके स्वस्थ कियेविना परम सिद्धताकी प्राप्ति महात्मा पुरुष नहीं जानते; वैराग्य अरु अभ्यासकरि जिनने इंद्रियांरूपी शत्रु वश किये हैं, सो अपने आपकरि तिसको पाते हैं, अपर किसीकरि नहीं पाते ॥ हे रामजी ! आपकरि अपनी आराधना करहु, आपकरि अपनी अर्चना करहु आपकरि आपको देखहु, आपकरि आपविषे स्थित होहु, शास्त्रविचारते रहित मूढ अपर जो हैं, तिनके निमित्त वैष्णवभक्ति कल्पी है, सो प्रवृत्तिकी स्थिति निमित्त प्रथम सुख जो अभ्यास यत्नका कहा है, तिसते जो रहित पुरुष हैं, तिनको गौण पूजाका क्रम कहा है. काहेते कि, इंद्रियोंको वश नहीं किया, अरु जिनने इंद्रियोंको वश किया,

तिनको भेद पूजासाथ क्या प्रयोजन है; विचार उपशमविना विष्णुभक्ति सिद्ध नहीं होती, अरु जब विचार उपशमसंयुक्त भया, तब कमल पाषाणसाथ क्या प्रयोजन है ताते विचारसंयुक्त होइकरि आत्माका आराधन करहु, तिसकी सिद्धताते तू सिद्ध होवैगा, तिसको सिद्ध नहीं किया, तौ वनका गर्दभहै, जो प्राणी विष्णुके आगे प्रार्थना करते हैं सो अपने चित्तके आगे क्यों नहीं करते, सब जीवोंके अंतर विष्णुजी स्थित हैं, तिसको त्यागिकरि जो बाह्य विष्णुपरायण हो जाते हैं, सो बुद्धिमान् नहीं हृदयगुफाविषे जो चेतनतत्त्व स्थित है, सो ईश्वरका मुख्य सनातन वपु है. शंख, चक्र, गदा, पद्म जिसके हस्तविषे हैं, सो आत्माका गौण वपु है, जो मुख्यको त्यागिकरि गौणकी ओर धावते हैं, सो विद्यमान अमृतको त्यागिकरि जो साधनकरि सिद्ध होवै, तिसकी प्राप्तिनिमित्त यत्न करतेहैं ॥ हे रामजी ! मनरूपी हस्तीको जिस पुरुषने आत्मविवेककेसाथ वश नहीं किया, तिस अविवेकी चित्तको रागद्वेष ठहरने नहीं देते, शंख, चक्र, गदा, पद्म जिसके हाथविषे हैं, तिस ईश्वरकी जो अर्चना करते हैं, सो कष्ट तपस्याकरि पूजन करते हैं, तिनका चित्त समय पाइकरि निर्मल भाव अभ्यास वैराग्यको प्राप्त होता है, अरु नित्य अभ्यासकरि भी चित्त निर्मल होता है तब आत्मफलको प्राप्त होता है, चित्त निर्मलविना आत्मफलको प्राप्त नहीं होता, जब चित्त निर्मल हुआ, तब वैराग्य अभ्यासवान् होइकरि आत्म फलका भोगी होता है, जैसे बीज बोया समयकरि फल देता है, तैसे क्रमकरि फल होता है ॥ हे रामजी ! विष्णुपूजाका जो क्रम है, सो भी निमित्तमात्र मधुसूदनने वर कहे हैं, अरु अमित प्रकाश है जिसका तिस आत्मतत्त्वते अभ्यासरूपी शाखाकरि फल प्राप्त होता है, अरु सबते उत्तम जो परम संपदाका अर्थ है, सो अपने मनके निग्रहकरि सिद्ध होता है. अपने मनका निग्रह करना बीज है, सो चेतनरूपी क्षेत्रते प्रफुल्लित होइकरि फलदायक होता है, संपूर्ण पृथ्वीकी निधि अरु संपूर्ण शिला बड़ी बड़ी मणिकी होवैं, तौ भी मनके निग्रह समान नहीं, जैसा दुःखका नाशकर्त्ता बड़ा पदार्थ मनका निग्रह है, तैसा अपर कोऊ नहीं, तबलग यह जीव अनेक जन्म पाता है, जबलग उपशमको नहीं प्राप्त भया मनरूपी; मत्स्य संसारसमुद्रविषे भ्रमता है ॥ हे रामजी ! ब्रह्मा विष्णु

महेशको चिरकालपर्यंत पूजता रहे, अरु मन उपशम विचारसंयुक्त न भया, तौ जो देवता कृपालु होवैं, तौ भी इसको संसारसमुद्रते तराइ नहीं सकते, यह जो भासुर आकार जगत्के पदार्थ भासते हैं, तिनको इंद्रियोंकरि त्याग करिये तब जन्मके अभावका कारण जानिये, विषयोंकी चिंतवनाते रहित होइकरि निरामय सब दुःखोंते रहित आत्मसुख है, तिसविषे स्थित होहु; जो सत्तामात्र तत्त्व है, अरु सबका साररूप है, तिसका स्वाद लेइकरि मनरूपी नदीके पारको प्राप्त होहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे प्रह्लादविश्रांतिवर्णनं नाम त्रिचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४३ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! यह जो संसाररूप नाम्नी माया है, सो अनंत है और किसीप्रकार इसका अंत नहीं आता, जब चित्त वश होवै, तब यह निवृत्त हो जाती है, अन्यथा नहीं निवृत्त होती, जेता कछु जगत् देखने सुननेविषे आता है, सो सब मायामात्र है, सो मायारूप जगत्के भ्रमकरि भासता है, इसपर पूर्व इतिहास हुआहै, सो तू सुन॥ हे रामजी! इस पृथ्वीपर एक कोशल नाम देश है, सो कैसा है, जो रत्नोंकरि पूर्ण है, जैसे सुमेरु पर्वत रत्नोंकरि पूर्ण है, तैसे वह रत्नोंकरि पूर्ण है जातिजातिविषे जो उत्तम पदार्थ हैं, सो सब तिस देशविषे पाते थे, तहां एक गाधि नाम ब्राह्मण होता भया, सो कैसा था, वेदाविद्विषे प्रवीण मानो वेदकी मूर्त्तिथा, अरु बालक अवस्थाते लेइकरि वैराग्य आदिक गुणोंसहित शोभता भया, जैसे प्रकाशकरि भुवन शोभता है, तैसे शोभता भया, एक कालमें कछु कार्य मनविषे धारि तप करनेनिमित्त वनको गया, तब एक वनविषे कमलोंकरि पूर्ण ताल देखता भया, तिसविषे कंठपर्यंत जलमें स्थित होइकरि तप करने लगा अपना कार्य मनविषे धारिकरि विष्णुके ध्यानमें खड़ा हो रहा, अष्टमासपर्यंत दिन रात्रि जलमें खड़ा रहा, तिसके दृढ तपको देखिकरि जब विष्णु प्रसन्न हुए, तब जहां ब्राह्मण तप करता था तहां आनि प्राप्त भये, जैसे ज्येष्ठआषाढकी तपी पृथ्वीपर मेघ आता है, तैसे आइकरि विष्णु कहते भये ॥ हे ब्राह्मण! जलते बाहर निकासि आवहु, अरु जो कछु वांछित फल है, सो माँग, तब गाधिने कहा ॥ हे भगवन्! असंख्य जीवोंका हृदयकमल है, तिनके छिद्रविषे तुम भँवरे हौ, अरु त्रिलोकीरूपी कमलोंके तुम तलाव हो, ऐसे ईश्वर जो तुम हौ, सो मेरा तुमको

नमस्कार है ॥ हे भगवन् ! मुझको यह इच्छा है कि, तुम्हारी जो आश्चर्यरूप माया है, जिसकरि यह जगत् रचा है, किसीप्रकार मैं तिसको देखौं ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार गाधि ब्राह्मणने कहा, तब विष्णुने कहा ॥ हे ब्राह्मण ! तू मायाको देखैगा, अरु देखिकरि बहुरि त्याग भी देवैगा, ऐसे कहकरि विष्णु अंतर्धान हो गये. तब ब्राह्मण वरको पाइकरि आनंदमान हुआ, अरु जलते निकसा, जैसे निर्धन पुरुष धनको पाइकरि आनंदमान होता है, तैसे ब्राह्मण वरको पाइकरि आनंदमान भया, अरु चलते बैठते उसकी सूरत विष्णुके वरकी ओर लगी रहै कि, मैं माया कब देखैंगा, तब एक कालमें तिसी तलावपर स्नान करने लगा, अरु डुबकी दीनी, मनविषे अघमर्षण मंत्रको जपने लगा, अघमर्षण कहिये पापोंको नाश कर्त्ता, तिस मंत्रको जपते तिसका चित्त विपर्यय होयकरि निकसिगया, तब उसको कृष्णमंत्र भूल गया, अरु आपको बहुरि अपने गृहविषे स्थित देखता भया, बहुरि आपको मृतक हुआ देखा कि, मैं मृत्यु पाया हौं, अरु सब कुटुंबके लोक रुदन करते हैं, शरीरकी कांति जाती रही है, जैसे टूटे कमलोंकी शोभा जाती रहती है, तैसे प्राण निकसि गया, जैसे पवनके ठहरेते वृक्ष अचल हो जाताहै, तैसे अंग अचल हो गया, अरु होंठ फाटि विरस हो गये, मानो अपने जीवनेको हँसते हैं, माता गाधिको पकड़ि बैठी है, सब परिवार इकट्ठे हुए हैं, जैसे वृक्षपर पक्षी आनि इकट्ठे होते हैं, जैसे पुलके टूटे जल चलता है, तैसे रुदन करते हैं, तब बांधव लोक कहते भये, अब यह अमंगलरूप है, इसको जलाइये, ऐसे कहिकरि जलावनेको ले चले, चितामें डारिकै जलाय दिया, बहुरि अपने गृहमें आइकरि क्रिया कर्म करते भये ॥ हे रामजी ! तिसते उपरांत ब्राह्मण एक देशविषे चंडाल भया, उस देशविषे एक चंडालोंका ग्राम था, तहां आपको एक चंडालीके गर्भविषे देखता भया कि, मैं यहां आनि पड़ा हौं, जैसे श्वानकी विष्ठाविषे कृमि होताहै । तैसे आपको प्रवेश किया देखता भया, तब समय पाइकरि गर्भते बाहर निकसा, जैसे पक्का फल वृक्षते गिरता है, तैसे श्याम मूर्त्ति चंडालीते निकसा, अरु बहुत सुंदर बालक जन्मा चंडालीकी इसके साथ प्रीति भई, बढ़ता जावै, जैसे छोटा वृक्ष बढ़ जाता है, तैसे द्वादश वर्षका भया, बहुरि षोडश वर्षका

भया, तब श्वानसाथ लेकरि वनमें जावै, मृगोंको मारै, इसप्रकार बहुत स्थानोंमें विचरै, बहुरि विवाह भया, यौवन अवस्थाको यौवन विषे व्यतीत करता भया, बहुत बड़ा कुटुंबी भया, पुत्र कलत्र बहुत भये, बहुरि वृद्ध भया, शरीर जर्जरीभाव हुआ, तृणोंकी कुटी बनायकरि बाहर जाय रहा, जैसे मुनीश्वर रहते हैं, वहां दुर्भिक्ष पड़ा, इसके बांधव क्षुधाकरि मरने लगे, तब वहांते एकलाही निकसा बहुतेरे स्थानोंको लँघता गया, एक क्रांत देश है, तहां जाइ प्राप्त भया, सो सुंदर देशका राजा मृतक भया, अरु यह राजमार्गको चला जाता था, सो इस राजाका एकबड़ा हस्तीथा तिसको मंत्रियोंने छोड़ा था, जो कोई पुरुष इसके मुखमें लगै, तिसको राजा करिये तब वह हस्ती चला आवै इसने तिसको देखा बहुत सुंदर चरणोंकरि चला आवै, मानो सुमेरु पर्वत चरणोंकरि चला आता है जब निकट आया; तब इसको शीशपर चढ़ाय लिया जैसे सूर्यको सुमेरु शीशपर बैठा लेवै तैसे हस्तीने इस चंडालको बैठाय लिया तब नगारे तुरहियाँ बाजने लगीं. अरु बडे शब्द होने लगे मानौ प्रलयकालके मेघ गर्जते हैं अरु भाट आदिक आनि स्तुति करने लगे अरु इसके मुखकी शोभा हस्तीपर बैठेते और हो गई तब सेनासहित राजा शोभता भया जैसे ताराविषे चंद्रमा शोभताहै तैसे शोभता चला अंतःपुरविषे जाय राणियोंमें स्थित भया सब और राणियां सहेलियां इसके निकट आय स्थित भई अरु इसको मिलने लगीं स्नान कराइके नानाप्रकारके हीरे मोती भूषण अरु सुंदर वस्त्र पहिराये तिसकरि शोभायमान भया राजा होइकरि राज्य करत भया सब स्थान अरु सब देशोंविषे इसकी आज्ञा चलने लगी सब लोक इसते भय पावैं बड़े तेज अरु बड़ी लक्ष्मीकरि संपन्न हुआ, अरु तेजवान् होइकरि विचरने लगा जैसे वनविषे सिंह विचरता है इसप्रकार चिरपर्यंत राज्य करता भया हस्तीपर चढ़िकरि शिकार खेलै गवल नाम राजा होइकरि सब देशपर आज्ञा करता भया॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधोपाख्याने चंडालीवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४४ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार लक्ष्मीको पाइकरि आनंदवान् हुआ जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है तैसे शोभता भया अरु आठ वर्षपर्यंत राज्य करता भया तब एक समय भूषण वस्त्रोंको पहरि बैठा है अरु ग

संकल्प आनि फुरा कि, मुझको वस्त्र भूषणके पहिरनेकरि क्या ? अरु इनकी सुंदरता क्या है मैं तौ राजाधिराज अपने तेजके प्रकार स्वी शोभायमान् हौं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि भूषण वस्त्रउतारि डारे, शुद्ध श्याम मूर्त्ति होइकरि स्थित भया, जैसे प्रातःकाल विषे तारागणते रहित श्याम आकाश होता है, तैसे होइकरि बहुरि अपनी चंडाल अवस्थाके वस्त्र पहिरे, एकलाही निकसिकरि बाहिर डेवढ़ीविषे जायकरि स्थित भया, जैसे सूर्य आकाशमार्गको एकला चलता है, तैसे एकला होइकरि राजमार्गकी डेवढ़ीविषे जाय खड़ा हुआ, तब उन देशके चंडाल जो दुर्भिक्षकरि यह छोड आया था, तामें ते बड़े चंडाल उस मार्गमें आय निकसे, तिन विषे एक चंडाल तंद्री हाथविषे लेइकरि आता था, तिसने राजाको देखिकरि पहँचाना, तब राजाके सन्मुख आया, मानो श्याम पर्वत चला आता है, अरु कहत भया ॥ हे भाई ! एता काल तू कहांथा, हमको छोड़िकरि यहां आइकरि सुख भोगने लगा है ॥ हे भाई ! यहांके राजाने तुझको सुखी किया होवैगा, काहेते कि, तू गाता भला है, राजाको राग प्यारा होता है, अरु तू कोकिलाकी नाईं गाता है, इस कारणते प्रसन्न होइकरि बहुरि धन दिया होवैगा, अथवा किसी और धनीने तुझको प्रसन्न होइकरि मंदिर धन दिया होवैगा ॥ हे रामजी ! इसप्रकार वह चंडाल मुखते कहता अरु भुजा पसारता इसके सन्मुख चला आवै, अरु यह नेत्र हाथोंसे उसको जनावै कि, तूष्णीं होउ, मुखते कछु न कहहु, परंतु वह चंडाल कछु समुझै नहीं, सन्मुख होइकरि चला आवै, ज्यों ज्यों वह चला आवै, त्यों त्यों राजाकी कांति घटती जावै जैसे गैडेकरि मारे हुए कमलोंकी कांति घटि जाती है, अरु ऊपर झरोंखेविषे सहेलियां देखत भईं उन्होंने देखकर विचार किया कि, राजा चंडाल है, ऐसे विचारकरि महाशोकको प्राप्त भईं, और कहत भईं, कि, हमको बड़ा पाप प्राप्त भया है, जो इसके साथ हमने स्पर्श किया है, अरु भोजन किया है, चिरपर्यंत विचरी हैं, ऐसे शोकवान् होइकरि सबकी कांति नष्ट हो गई, जैसे बर्फ पडनेकरि कमलपंक्तिकी कांति जाती रहती है, जैसे वनको अग्नि लगनेकरि वृक्षोंकी कांति जाती रहती है, तैसे उनकी कांति जाती रही, शोकवान् होइकरि कष्ट पाती भईं, अरु सब नगरवासी भी सुनिकरि शोकवान्

भए, अरु हाय हाय शब्द करने लगे, तब वह चंडाल राजा अपने अंतःपुरविषे आया, जेते कछु अंतर लोक थे सो तिसको देखि करके भागे, निकट कोऊ न आवै, जैसे पर्वतको अग्नि लगै, वहांते मृगपक्षी भाग जावैं, तैसे चंडाल राजाके निकट कोऊ न आवै, मंत्री टहलुए स्त्रियां सब दूरते भाग जावैं तब तिस देशविषे जो पंडित बुद्धिमान् थे, तिन्होंने विचार किया कि, बड़ा अनर्थ भया है, एता काल हम चंडाल राजाकरिकै जीवे हैं, हमको बड़ा पाप लगा है, इस पापका और पुरश्चरण कोई नहीं, हम सब चिता बनाय अग्निविषे प्रवेश कर जलि मरैंगे, तब यह पाप निवृत्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जब यह विचार ब्राह्मण क्षत्रिय लोकोंने किया, तब तिसके अनंतर चिता बनाइकरि जलने लगे, पुत्र कलत्र बांधवोंको छोडिकरि प्रवेश करैं जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करैं, तैसे जलैं, अरु जैसे आकाशविषे तारे दृष्ट आवैं, तैसे अनेक चिताका चमत्कार दृष्ट आवैं, अरु धूम्रकरि अंधकार हो रहा, कई मनुष्य धर्मात्मा अपनी इच्छाकरि न जले, जब अपनी इच्छाकरि न जले, तब तिनको अपर ले जलावैं, तब चंडाल राजा विचारत भया कि, मेरे एकके निमित्त एते नगरवासी जलते हैं, जीना भी तिसका श्रेष्ठ है, जिसते शोभा उत्पन्न होवै, जिसके जीनेकरि पाप उत्पन्न होवै, तिसको मरना श्रेष्ठ है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि उस राजाने भी चिता बनाई, अरु जैसे दीपकविषे पतंग प्रवेश करता है, तैसे राजा प्रवेश करता भया, अरु अग्निका तेज शरीरको लगा, तब गाधिका शरीर जो तलावविषे डुबकी लगाया था, सो कंपायमान हुआ, तब जलते बाहर शीश निकासा, परंतु सावधान भया ॥ वाल्मीकि उवाच ॥ इसप्रकार जब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त भया, सब सभा परस्पर नमस्कार करिकै स्नानको गये, बहुरि रात्रि नष्ट भएते आनि स्थित भए ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राजप्रध्वंसवर्णनं नाम पंचचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एता भ्रम उसने दो मुहूर्त्तविषे देखा अर्घ घटीपर्यंत बोध कछु न हुआ, तिसते उपरांत बोधवान् भया, अरु उस संसारभ्रमते रहित हुआ, जैसे मद्यपानका के॰ क्षीण भयेते बोधवान् होवै, तैसा बोधवान् हुआ, बाहर निकसिकरि विचारने लगा कि, मुझको कछु भ्रम जैसा हुआ, कहा था। वह

मेरा गृहविषे मरना, बहुरि चंडालके गृहविषे जन्म लेना, बहुरि कुटुंबविषे रहना, बहुरि राज्य करना, बडा भ्रम मुझको भया है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारिकरि बहुरि संध्यादिक कर्म करता भया, इस भ्रमको बहुरि बहुरि स्मरण करिकै आश्चर्यवान् होवै, अरु ऐसे न जानिसकै कि, भगवान्का वर पाइकरि मैंने माया देखी, जब केताक काल व्यतीत भया, तब एक ब्राह्मण दुर्बल जैसा क्षुधार्थी अरु थका हुआ इसके आश्रमपर आया, मानो ब्रह्माके आश्रमपर दुर्वासा ऋषि आया है तब गाधिने उस ब्राह्मणको आदरसंयुक्त बैठाया, अरु फल फूल इकट्ठे करिकै तिसके आगे आनि रक्खे, जैसे वसंतऋतुकरिकै फल फूलसाथ वृक्ष पूर्ण होता है, तैसे उसको पूर्ण किया, अरु केतक दिन वहाँ रहा, संध्यादिक कर्म मंत्र जाप इकट्ठे करैं, रात्रिको पत्रोंकी शय्या बनाइकरि शयन करै, तब एक रात्रिके समय शय्यापर बैठे चर्चा वार्त्ता करते थे. तब प्रसंग पाइकरि गाधिने पूछा कि हे ब्राह्मण ! तेरा शरीर कृश जैसा अरु थका हुआ है, सो क्या कारण है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार गाधिने ब्राह्मणसे पूछा, तब उसने कहा ॥ हे साधो ! जो कछु तैंने पूछा है, सो मैं कहता हौं, हम सत्यवादी हैं, जैसे वृत्तांत हुआ है सो तू सुन ॥ मैं एक कालमें देशांतर फिरता फिरता उत्तरदिशाकी ओर प्राप्त भया, तहां क्रांतदेशविषे जाता भया, वहाँ रहने लगा, वहांके गृहस्थ भलीप्रकार टहल करैं, तिनके भले भोजन वस्त्र करिकै प्रसन्न होऊं, रस स्वाद करिकै मेरा चित्त मोह गया, तब एक दिन मेरे मुखते यह शब्द निकसा, कि यहांके लोक बहुत श्रद्धावान् दयावान् हैं, तब पास जो लोग बैठे थे, सो कहने लगे ॥ हे साधो ! आगे यहाँ दया धर्म बहुत था, अब कछु घटि गया है, तब मैंने पूछा कि, क्योंकरि घटा है, सो वृत्तांत कहौ, तब उनने कहा कि इस देशका राजा मृतक हुआ था, बहुरि राजा एक चंडाल हुआ था, प्रथम किसीने न जाना, अष्ट वर्षपर्यंत राज्य करता भया, जब उसकी वार्त्ता प्रगट भई कि, यह चंडाल है, तब देशके रहनेवाले ब्राह्मण क्षत्रिय थे, सो चिता बनाइकरिकै जलि मरे, अनेक जीव इसप्रकार जो ब्राह्मण आदिक जलि मरे; बहुरि राजा भी जलि मरा, ऐसा पाप इस देशविषे हुआ है; इस कारणते दया धर्म कछु घटि गया है ॥ हे ब्राह्मण ! जब इसप्रकार नगरवासियोंते सुना, तब मैं बहुत

शोकवान् हुआ, अरु वहांते चला कि, हाय हाय मैं बड़े पापी देशविषे रहा हौं, ऐसे विचारकारि मैं प्रयागादि तीर्थोंपर चला, तीर्थ करिकै कृच्छ्र अरु चान्द्रायण व्रत राखे; कृष्णपक्षविषे एक एक ग्रास घटावता गया, जब अमावास्या आवै, तब निराहार रहा, बहुरि जब शुक्लपक्ष आवै, तब एक एक ग्रास बढ़ाता गया, पूर्णमासीके चंद्रमाकी कलाकारि वढावना, अरु कलासाथ घटावना; इसप्रकार मैंने तीन कृच्छ्रचांद्रायण किये हैं, वहांते चला तेरे आश्रमपर वृत्त खोला है. हे साधो ! इसनिमित्त मेरा शरीर कृश अरु निर्बल हुआ है ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार ब्राह्मणने कहा, तब गाधि विस्मयको प्राप्त भया कि, जो मैं जानता था, कि मुझको भ्रमसा हो गया, सो इसने प्रत्यक्षवार्ता कह सुनाई, ऐसे विचारकारि पूँछा बहुरि उसने ऐसेही कहा तब सुनकर आश्चर्यवान् हुआ, जब रात्रि व्यतीत भई, अरु सूर्य उदय भया, तब संध्या आदिक कर्म करता भया, वह अतीत रमता रहा, तब एकला होइकारि विचारत भया, कि, मैंने कैसा भ्रम देखा है, अरु ब्राह्मणने सत्यकारि देखा सो कैसे हो गया, ताते अब तिस देशको चलिकारि देखो, जहां मुझको चंडालका शरीर भया है ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचारिकारि मनोराज्यके भ्रमको देखने गाधि ब्राह्मण चला, चलता चलता उस देशविषे जाय प्राप्त भया, जैसे ऊंट कंटकोंको ढूँढता कंटकोंके वनविषे जाता है, तैसे यह चंडालके स्थानोंको प्राप्त भया, तब चंडालके स्थान देखता भया, जहां अपना स्थान था, तिसको देखा अपने खेती लगावनेका स्थान देखता भया, वाड़ी कछु खड़ी है, कछु गिर गई है, अरु पशुनके हाड़ चर्म जो अपने हाथसों डारे थे, सो प्रत्यक्ष देखता भया, देखिकारि आश्चर्यवान् भया ॥ हे देव ! यह क्या आश्चर्य है ? चित्तका भ्रम मैंने प्रत्यक्ष देखा है, जो बालक अवस्थाविषे क्रीड़ा करनेके स्थान थे सो देखे, अरु भोजनके स्थान, मद्यपानके स्थान, अरु पात्र थे इत्यादिक जो खानपानके भोगके स्थान थे, सो प्रत्यक्ष देखता भया, अरु महा वैराग्यको प्राप्त भया, अरु ग्रामवासी मनुष्योंसे भी पूँछता भया, जो कदाचित् कैसे कहैंगे ॥ हे साधो ! यहां एक चंडाल हुआ था, बड़े श्याम शरीरवाला तुमको भी कछु स्मरण है ? ॥ हे रामजी ! जब इसप्रकार ब्राह्मणने पूछा तब ग्रामवासी कहत भये ॥ हे ब्राह्मण ! यहां

एक कंटजाल नाम चंडाल होता भया, क्रमकरिकै बड़ा हुआ, बहुरि उसका विवाह हुआ, बेटा बेटी परिवारसहित बड़ा कुटुंबी हुआ, वृद्ध भया, सो दैवसंयोगकरि एकलाही निकसा, जाता जाता क्रांतदेशविषे गया, वहांके राजा की मृत्यु भई थी, उनने राज्य इसको दिया, तहां आठ वर्षपर्यंत राज्य करता भया, तब नगरवासियोंने सुना कि, यह चंडाल है, तब बहुत शोकवान् भये, अरु चिता बनाइकरि जलि जलि मरे, इसप्रकार सुनिकरि गाधि बहुत आश्चर्यवान् हुआ, एकसों सुनकर औरसों पूछा, वह भी इसप्रकार कहै, ऐसे वारंवार लोकोंसों पूछता रहै, एक मास वह रहा, बहुरि आगे चला; नदियां पहाड देश हिमालय पर्वतकी उत्तर दिशाविषे क्रांतदेशमें जाय प्राप्त भया, जेता कछु स्थानोंका वृत्तांत था, सो सबही देखता भया, जहां सुंदर स्त्रिया थीं, जहां चमर झूलते थे तिनको प्रत्यक्ष देखा, बहुरि नगरवासियोंते पूछता भया । कि, यहां कोऊ चंडाल राजा भी हुआ है, तुमको कछु स्मरण है, तौ मुझको कहो ॥ हे रामजी ! तब नगरवासी कहत भए ॥ हे साधो ! यहांका राजा मृत्यु पाया था, अरु मंत्रियोंने हस्ती छोडा था, जो कोऊ मनुष्य हस्तीके सन्मुख आवै, तिसको राजा करना, जब हस्ती चला तब तिसके सन्मुख चंडाल आइ निकसा तब हस्तीने चंडालको शीशपर चढ़ाइ लिया, बहुरि और विचार किसीने नहीं किया, उसको राज्यतिलक दिया, अष्ट वर्षपर्यंत राज्य करता भया, पाछे जब उसके बांधव आए, अरु तिसकेसाथ चर्चा करने लगे, तब सहेलियोंने ऊपरसों देखा कि, यह चंडाल है, ऐसे देखि उनने उसका त्याग किया, बहुरि लोक विचारवान् जो उसकेसाथ चेष्टा करते थे, भाई जानिकरि सो जलि मरे, अरु वह राजा भी आपको धिक्कार करि जलि मरा, अष्ट वर्षपर्यंत वह राज्य करता भया, अरु उसको द्वादश वर्ष मृत्यु पाये व्यतीत भये ॥ हे रामजी ! इसप्रकार श्रवण करिकै गाधि ब्राह्मण आश्चर्यको प्राप्त भया कि, कहां मैं जलविषे स्थित था, अरु कहां एती अवस्थाको देखता भया, ऐसे विचार करता था, इतनेमें पूर्वका वृत्तांत स्मरण आया कि, यह आश्चर्य भगवान्की माया है, मैं वर माँगा था, इस मायाकरि एता भ्रम देखा है, यह आश्चर्य है कि, यहां दो मुहूर्त्त हैं, अरु वहांते एता काल मुझको भासा है, स्वप्नभ्रमकी नाईं अरु

सत्यकरि स्थित भया है, सो वडाआश्चर्य है, ताते संशय निवृत्त करनेनिमित्त वहुरि विष्णुजीका ध्यान करौं, जिसकी मायाकरि मैंने एता भ्रम देखा है और कोई इस संशय निवारनेको समर्थ नहीं ॥ हे रामजी ! इसप्रकार विचारिकरि गाधि ब्राह्मण वहुरि पहाड़की कंदराविषे जाय तप करने लगा, एक अंजली जलपान करै औ भोजन कछु न करै, इसप्रकार डेढ वर्षपर्यंत तप किया, तव त्रिलोकीके नाथ विष्णु भगवान् प्रसन्न होइकरि निकट आइकरि प्राप्त भए, अरु कहा ॥ हे ब्राह्मण ! मेरी मायाको देखि जो जगत्जालको रचनेहारी है ! अब और क्या इच्छा करता है ॥ हे रामजी ! जव विष्णु भगवान्ने ऐसे कहा, तव ब्राह्मण कहता भया, जैसे मेघको देखिकरि पपैया वोलता है तैसे ब्राह्मण वोलता भया ॥ गाधिरुवाच ॥ हे भगवन् ! तेरी माया तौ मैंने देखी, परंतु एक संशय मुझको है कि, यह स्वप्न भ्रमकी नांई मैंने देखा, इसाविषे कालकी विषमता कैसे हुई, जो यहां दो मुहूर्त व्यतीत भए हैं, अरु वहां चिरकालपर्यंत भ्रमता रहा हौं, अरु तिन झूठ पदार्थोंको जागृतविषे प्रत्यक्ष कैसे देखे ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे ब्राह्मण ! और कछु नहीं, तेरे चित्तहीका भ्रम है, जिसके चित्तविषे तत्त्वकी अदृष्टता है, तिसको यह चित्त भ्रम होता है, अरु वह क्या भ्रम था, जेता कछु जगत् प्रत्यक्ष देखता है; सो भी तेरे मनविषे स्थित है, वाहिर पृथ्वी आदिक तत्त्व कोऊ नहीं, सव तेरे अंतर स्थित हैं, जैसे बीजके अंतर फूल फल पत्र हैं, तैसे पृथ्वी जल तेज वायु आकाश जेता कछु पांचभौतिक है, सो सव विस्तार चित्तविषे स्थित है जैसे वृक्षका विस्तार बीजविषे दृष्ट नहीं आता जव वोया हुआ उगता है, तव विस्तार दृष्ट आता है, तैसे जव चित्त ज्ञानविषे लीन होता है, तव जगत् नहीं भासता, अरु जव स्पंदरूप होता है, तव वडे विस्तारसंयुक्त जगत् भासताहै ॥ हे ब्राह्मण ! जेता कछु जगत् देखताहै, सो सव चित्तका भ्रम है, जैसे एक कुलाल घटादिक वासना उत्पन्न करता है, तैसे एकही चित्त अनेक भ्रमरूप पदार्थको उत्पन्न करताहै ॥ अरु जो चित्त वासनाते रहित है, तिसते भ्रमरूप पदार्थ कोऊ नहीं उपजता, ताते चित्तको स्थित कर ॥ हे ब्राह्मण ! इस चित्तविषे कोटि ब्रह्मांड स्थित हैं, जो तुझको चंडाल अवस्थाका अनुभव हुआ है, तौ इसाविषे क्या आश्चर्य हुआ ? अरु तू

कहता है कि, मैं वडी आश्चर्यरूप माया देखी है, सो उसकोही माया कहता है, अब जो तुझको विद्यमान् भासता है, सो सवही माया है, जो तुझको अपने गृहविषे अनुभव भया था, अरु चंडालके गृहविषे जन्म लिया, कुटुंबी हुआ, अरु राज्य किया, बहुरि चिताविषे जला, बहुरि अतिथि ब्राह्मणको मिला, बहुरि जाइकरि सबही स्थान देखे, सो भी माया थी, जैसे एता भ्रम तुझने मायाकरि देखा, तैसे यह पसारा भी सब माया है ॥ हे साधो! जैसे स्वप्नविषे नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, अरु जैसे मदिरापान करनेवालेको सब पदार्थ भ्रमते हैं, तैसे यह जगत् भी भ्रमते भासता है, अरु जैसे नौकापर बैठेको तटके वृक्ष भ्रमते भासते हैं, तैसे यह जगत् भी भ्रममात्र भासता है,अरु चित्तके स्थित कियेते जगत्भ्रम नष्ट हो जावैगा, अन्यथा भ्रम निवृत्त न होवैगा जैसे पत्र, फूल, फल, टास काटनेकरि वृक्ष नाश नहींहोता, जब मूलते काटिये तब वृक्ष नाश हो जाता है, तैसे जब जगत् भ्रमका मूल चित्तही नष्ट हो जावैगा, तब संपूर्ण भ्रम निवृत्त हो जावैगा सो चित्तका नाश होना क्या है, जो चित्तकी चैत्यता दृश्यकी ओर धावती है, सोई जगत्का बीज है, जब यही चैत्यता दृश्यकी ओर फुरनेते रहित होवै, तब जगत्भ्रम भी मिटि जावै, अरु जगत्की ओर फुरना तब मिटै, जब जगत्को मायामात्र जानै ॥ हे साधो? यह सब जगत् मायामात्र है, कोऊ पदार्थ सत्य नहीं, जैसे वह भ्रम तुझको मायामात्र भासा है, तैसे यह भी सब मायामात्र जान, ताते इस भ्रमको त्यागिकरि अपना जो ब्राह्मणका कर्म है, तिसविषे जाय स्थित होहु ॥ हे रामजी! इसप्रकार कहिकरि विष्णुदेव उठि खड़े हुए, तब गाधि अरु अपर ऋषीश्वर जो वहां थे सो विष्णुकी पूजा करते भए, पूजा लेइकरि विष्णु क्षीरसमुद्रको गमन करते भए, तब वह ब्राह्मण बहुरि उसी भ्रमको देखने चला, क्रांत देशविषे गया, तिनको देखिकरि आश्चर्यवान् होवै, अरु कैसे विष्णु हैं, मायामय कहाते हैं, यह जो प्रत्यक्ष मैं देखता हौं,जो कछु भ्रम विषे देखा था, सोई प्रत्यक्ष देखता हौं, ऐसे विचारिकरि बहुरि कहता भया कि, इस संशयको दूर करनेको और कोऊ समर्थ नहीं; ताते बहुरि विष्णुका आराधन करता भया ॥ हे रामजी! इसप्रकार विचारिकरि गाधि बहुरि पहाड़की कंदराविषे जाय तप करने लगा,

तब थोडे कालमें विष्णु भगवान् प्रसन्न होइकरि आए, जैसे मेघ मोरको कहै, तैसे ब्राह्मणको भगवान् कहते भए ॥ हे ब्राह्मण! अब क्या चाहता है, तब गाधिने कहा, हे भगवन्! तुम कहते हौ, सब भ्रममात्र है, अरु यह तौ प्रत्यक्ष भासता है, जो भ्रम होता है सो प्रत्यक्ष अनुभव नहीं होता अरु मैंने बहुरि वह स्थान देखे हैं, अरु थोड़े कालकरि बहुत काल देखनेका मुझको संशय है, सो दूरि करौ ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार गाधिने कहा, तब भगवान् कहते भए ॥ हे ब्राह्मण! जो कछु तुमको यह भासता है, सो सब माया मात्र है, अरु जिस प्रकार तुझको यह भासता है सो सब मायामात्र है, अरु जिस प्रकार तुझको यह अनुभव भया है, सो श्रवण कर ॥ हे ब्राह्मण! वह कंटजल नाम चंडाल एक चंडालके गृहविषे उत्पन्न भया था, बहुरि क्रम करि वडा हुआ था, अरु कुटुंबी हुवा बहुरि वहाँ दुर्भिक्ष पड़ा तब उस देश को त्यागिकरि जाइ क्रांत देशका राजा हुआ, बहुरि लोकोंने सुना, तब सबही अग्निविषे जले, बहुरि वहां चंडाल आपभी अग्निविषे जला सो कंट जल चंडाल और था, यह अवस्था तिसको भईथी सोई प्रतिभा तुझको आनि फुरी है, जैसी अवस्था तिसको हुई थी, सो तेरे चित्तविषे आनि फुरी, इस कारणते तू जानता भया कि, यह अवस्था मैंने देखी है ॥ हे साधो! अकस्मात् ऐसे भी होता है, जो औरकी प्रतिभा औरको फुर आती है, कहूं अन्यथा भी होती है कहूं एक जैसे भी होती है, इस भ्रमका अंत लेना नहीं आता, यह चित्तके फुरणेकरिकै होता है, जब चित्त आत्मपदविषे स्थित होता है, तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जाता है अरु कालकी विषमता भी होती है जैसे जाग्रत्की दो घड़ीविषे अनेक वर्षोंका स्वप्न देखता है, तैसे यह जान, सब चित्तका भ्रम है, तू इस भ्रमको न देख चित्तको स्थिर करिकै अपने ब्राह्मणका आचार कर ॥ हे रामजी! ऐसे कहकरि विष्णु गुप्त हो गए, परंतु ब्राह्मणका संशय दूर न भया, वह ऐसे मनविषे विचारै कि, औरकी प्रतिभा मुझको कैसे भई है, यह तौ मैंने प्रत्यक्ष भोगी है, अरु जाइकरि देखी है, यह औरकी, वार्त्ता कैसे होवै, जो आंखोंसे देखी नहीं होती तिसका अनुभव नहीं होता अरु मैंने तौ प्रत्यक्ष अनुभव किया है, ऐसे ऐसे विचारकरि बहुरि वह स्थान देखै, अरु आश्चर्यमान् होवै, बहुरि विचार करता भया कि, यह मुझ को

बडा संशय है, इसको दूर करनेका उपाय भगवान्सों पूछौं ॥ हे रामजी ! ऐसे चिंतनाकारि बहुरि तप करने लगा, जब केताक काल पहाड कंदराविषे तप करते वीता, तब बहुरि विष्णुने आइकारि कहा ॥ हे ब्राह्मण ! अब तेरी क्या इच्छा है ! ऐसे जब विष्णुने कहा, तब गाधि ब्राह्मण कहता भया ॥ हे भगवन् ! तुम कहते हौ, यह औरकी प्रतिभा तुझको फुरि आई है, अरु मुझको अपनी होइकारि भासती है अरु कालकी विषमता भासती है, यह संशय जिस प्रकार मेरे चित्तते दूर होवै, सो उपाय कहौ और प्रयोजन मेरा कछु नहीं यह भ्रम निवृत्त करौ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हे ब्राह्मण ! यह जगत् सब मेरी मायाकारि रचा है, तिसाविषे मैं तुझको सत्य क्या कहौं, अरु असत्य क्या कहौं, जो कछु तुझको भासता है, सो सब मायामात्र है, सो चित्तके भ्रमकारि भासता है अरु उस चंडालकी अवस्था भई है, सो तेरे चित्तविषे भासि आई है,जैसे एक जेवरीविषे किसी को सर्प भासै; इसीप्रकार औरोंको भी जेवरीविषे सर्प भासता है तैसेहो प्रतिभा तुझको भासि आई है, अरु काल जो है तिसका रूप आकार कछु नहीं अरु काल भी तुझको एक पदार्थकी नांई फुरि आया है,चित्त विषे पदार्थ कालकारि भासते हैं, अरु काल पदार्थोंकारि भासता है, अन्योन्य घट पट जो भासता है सो स्वप्नकी नांई है,जैसे जाग्रत्के एक मुहूर्त्तविषे स्वप्नका अनंत कालका अनुभव होता है, यह चित्तका फुरना जैसे, जैसे फुरता है, तैसे तैसे हो भासता है, रोगीको थोडा काल भी बहुत हो भासता है, अरु भोगीको बहुत काल भी थोड़ा भासता है ॥ हे साधो ! जो नहीं भोगा होता तिसको भी अनुभव होता है, जैसे त्रिकालदर्शीको भविष्य वृत्तांत भी वर्त्तमानकी नांई भासता है तैसे तुझको भी अनुभव भया है, अरु एक ऐसे भी होता है कि, प्रत्यक्ष अनुभव किया विस्मरण हो जाता है,यह सब मायारूप चित्तका भ्रम है, जबलग चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं भया तबलग अनेक भ्रम भासते हैं, जब चित्त स्थित होता है, तब भ्रम मिटि जाता है, केवल एक अद्वैत आत्मतत्त्वही भासता है, जैसे सम्यक् मंत्रके पाठकारि गडेका मेघ नष्ट हो जाता है, असम्यक् मंत्रकारि नाश नहीं होता, तैसे तेरा चित्त अबलग वश नहीं भया चित्तको आत्मपदसों जोडेते सब भ्रम निवृत्त हो जावैगा, अरु अहं त्वं आदिक जेते कछु शब्द हैं,सो अज्ञानीके

चित्तविषे दृढ होते हैं, ज्ञानवान् इनविषे नहीं फँसता ॥ हे साधो ! जेता कछु जगत् है, सो अज्ञानकरिकै भासता है, आत्मज्ञान हुएते नाश हो जाता है, जैसे जलविषे तुंबी नहीं डूबती, तैसे अहं त्वं आदिक शब्दोविषे ज्ञानवान् नहीं डूबता सब शब्द चित्तविषे वर्त्तते हैं, सो ज्ञानीका चित्त अचित्तपदको प्राप्त भया है, ताते तू दश वर्षपर्यंत तपविषे स्थित होहु, तब तेरा हृदय शुद्ध होवैगा, जब तेरा हृदय शुद्ध हुआ,तब संकल्पते रहित आत्मपद तुझको प्राप्त होवैगा, जबआत्मपद प्राप्त हुआ, तब सब संशय जगत्भ्रम मिटि जावैगा ॥ हे रामजी, ऐसे कहिकरि त्रिलोकीके नाथ विष्णु अंतर्धान हो गए तब गाधि ब्राह्मण ऐसे मनविषे धारिकरि जाय तपकरने लगा जो कछु मनका संसरना है, तिसको स्थित करता भया, दश वर्षपर्यंत समाधिविषे चित्तको स्थित किया, जब ऐसे परम तप किया तब शुद्ध चिदानंद आत्माका साक्षात्कार बहुरि तिसको भया; बहुरि शांतिवान् होइकरि विचरत भया, जेते कछु राग दोष आदिक विकार हैं, तिनते रहित शांतिको प्राप्त भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे गाधिबोधप्राप्तिवर्णनं नाम षट्चत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥ ४६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह गाधिका आख्यान तुझको मायाकी विषमता जतावनेनिमित्त कहा है कि, परमात्माकी ऐसी माया है; सो मोहको देनेहारी है, विस्तृतरूप दुर्गम है, जो आत्मतत्त्वते भूला है, तिसको आश्चर्यरूप भ्रम दिखाती है, तू देख कि, दो मुहूर्त्त कहाँ अरु एता काल कहाँ अरु जो चंडाल अरु राजभ्रमको वर्षोंपर्यंत देखता रहा, बहुरि भ्रमकरि भासना अरु प्रत्यक्ष देखना, यह सब मायाकी विषमता है, सो असत्यरूप भ्रम है, सो दृढ होइकरि प्रसिद्ध भासा ताते आश्चर्यरूप परमात्माकी माया है, जबलग बोध नहीं होता, तबलग अनेक भ्रमको दिखाती है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह माया संसारचक्र है, तिसका बड़ा तीक्ष्ण वेग है, अरु सब अंगोंको छेदनेहारा है, जिसकरि इस चक्रका रोधना होवै, अरु इस भ्रमते छूटिये सो उपाय कहो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो मायामय संसारचक्र है, तिसका नाभिस्थान चित्त है, जब चित्त वश होवै, तब संसार चक्रवेग रोंका जावै और किसी प्रकार रोंका नहीं जाता ॥ हे रामजी ! इस वार्त्ताको तू भली प्रकार जानता है ॥ हे निष्पाप ! जब

चक्रकी नाभि रोंकता है,तव चक्र स्थित हो जाता है रोंकनेविना स्थित नहीं होता,संसाररूपी चक्रही।चित्तरूपी नाभिको रोकता है,तब चक्र स्थित हो जाता है, रोंकेविना स्थित नहीं होता, जब चित्तको स्थित करैगा, तब जगत्भ्रम निवृत्त हो जावैगा, अरु जब चित्त स्थित होता है, तब परमब्रह्म प्राप्त होता है, अरु जो कछु करना था, सो किया होता है, कृतकृत्य होता है, अरु जो कछु प्राप्त होना था, सो प्राप्त होता है, बहुरि पाछे पाना कछु नहीं रहता, ताते जेते कछु तप ध्यान तीर्थ दान आदिक उपाय हैं, तिन सबको त्यागिकरि चित्तके स्थित करनेका उपाय करौ, संतोंका संग अरु ब्रह्मविद्या शास्त्रका विचार इस उपायकरि चित्त आत्मपदविषे स्थित होवैगा, जो कछु संतों अरु शास्त्रोंने किया है, तिसका वारंवार अभ्यास करना, संसार मृगतृष्णाके जल अरु स्वप्नवत् जानिकरि इसते वैराग्य करना, इन दोनों उपायोंकरि चित्त स्थित होवैगा, आत्मपदकी प्राप्ति होवैगी और किसी उपायकरि आत्मपदकी प्राप्ति न होवैगी ॥ हे रामजी ! बोलनेचालनेका वर्जन नहीं, बोलिये, दान करिये, अथवा लेइये, परंतु अंतर चित्तको मत लगावहु, इनका साक्षी जाननेवाला जो अनुभव आकाश है, तिसकी ओर वृत्ति होवै, युद्ध करना होवै, तौ भी करिये, परंतु वृत्ति साक्षीकी ओर होवै, तिसको अपना रूप जानिये, अरु स्थित होइये शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध यह जो पांच विषय इंद्रियोंके हैं, इनको अंगीकार करिये परंतु इनके जाननेवाले साक्षीविषे स्थित होहु, तेरा अपना स्वरूप वही चिदाकाश है, जब तिसका अभ्यास वारंवार करिये तब चित्त स्थित होवै, अरु आत्मपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी ! जबलग चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं होता, जबलग जगत्भ्रम निवृत्त नहीं होता, इस चित्तके संयोगते चेतनका नाम जीव है, जैसे घटके संयोगते आकाशको घटाकाश कहते हैं, जब घट टूटि जावै, तब महाकाशही रहैगा, तैसे जब, चित्तका नाश होवैगा, तब यह जीव चिदाकाशही होवैगा, अरु यह जगत् भी चित्तविषे स्थित है, चित्तके अभाव हुएते जगत्भ्रम शांत हो जावैगा, हे रामजी ! जबलग चित्त है, तबलग संसार भी है, जैसे जबलग मेघ है, तबलग बूंदां भी हैं, जब मेघ नष्ट हो जावै, तब बूंदां भी नहीं रहतीं, अरु जैसे जबलग चंद्रमाकी किरणें शीतल हैं, तबलग चंद्रमाके

मंडलविषे तुषार है, तैसे जबलग चित्त है, तबलग संसारभ्रम है, जैसे मांसका स्थान श्मशान होता है तहां पक्षी भी होते हैं और ठौर इकट्ठे नहीं होते, तैसे जहां चित्त है, तहां राग द्वेष आदिक विकार भी होते हैं, अरु जहां चित्तका अभाव है, तहां विकारका अभाव है ॥ हे रामजी ! जैसे पिशाच आदिककी चेष्टा रात्रिविषे होती है, दिनविषे नहीं होती, तैसे राग द्वेष भय इच्छा आदिक विकार चित्तविषे होते हैं, जहां चित्त भी नहीं, तहां विकार भी नहीं, जैसे अग्निविना उष्णता नहीं होती, अरु बर्फ शीतलताविना नहीं होता, सूर्यविना प्रकाश नहीं होता, जलविना तरंग नहीं होता, तैसे चित्तविना जगत्भ्रम नहीं होता ॥ हे रामजी ! शांति भी इसीका नाम है, अरु शिवता भी वही है, सर्वज्ञता भी वही है, जो चित्त नष्ट होवै, आत्मा भी वही है, तृप्तता भी वही है, अरु चित्त नष्ट नहीं भया, तहां एते पदोंविषे कोऊ नहीं ॥ हे रामजी ! चित्तते रहित चैतन्य है सो चैतन्य कहाता है, अरु अमनशक्ति है, अरु सब कलनाते रहित है, जबलग इसको बोध नहीं तबलग नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, जब वस्तुका बोध हुआ, तब एक अद्वैत एक आत्मसत्ता भासती है ॥ हे रामजी ! ज्ञानसंवित्की ओर वृत्तिको रखना, जगत्की ओर नहीं रखना, जाग्रत् की ओर नहीं जाना, जाग्रत्के जाननेवालेकी ओर जाना, स्वप्न अरु सुषुप्तिकी ओर नहीं जाना, जो अंतरका जाननेवाला साक्षीसत्ता है, तिसकी ओर वृत्ति रखनी यह चित्तको स्थित करनेका परम उपाय है, जो संतोंका संग अरु शास्त्रोंकरि निर्णय किया अर्थ है, जब इसका अभ्यास होवै, तब चित्त नष्ट होजावै, अरु जो अभ्यास होवै, तौ भी संतोंका संग अरु सच्छास्त्रोंका श्रवणकरि बल करिये, तब सहजही चमत्कार हो आवैगा, मनको मनसाथ मथिये, तिसते ज्ञानरूपी अग्नि निकसैगी, सो आशारूपी सब फांसीको जलाइ डारैगी, अरु जबलग चित्त आत्मपदते विमुख है, तबलग संसारभ्रमको देखता है, जब आत्मपदविषे स्थित होता है, तब सब क्षोभ मिटि जाता है, जब मुझको आत्मपदका साक्षात्कार होवैगा, तब कालकूट विष भी अमृतसमान हो जावैगा, विषका जो विषभाव मारना है, सो न रहैगा अरु यह जब अपने स्वभावविषे स्थित होता है तब संसारका कारण मोह मिटि जाता है, अरु जब निर्मल निरंश आत्मसंवित्ते गिरता है, तब संसारका कारण मोह

आनि प्राप्त होता है, अरु जब निरंश निर्मल आत्मसंवितविषे स्थित होता है, तब संसा रसमुद्रको तरि ममतारूपी क्रीडाकरि अरु यह मेरा इसभावनाकरि चित्त कठिन हो जाता है, अरु चित्तरूपी विषका वृक्ष है, अरु देहरूपी भूमिपर लगा है, संकल्प विकल्प इसके टास हैं, दुर्वासनारूपी पत्र हैं, अरु सुख दुःख आधि व्याधि मृत्युरूपी इसके फल हैं, अहंकाररूपी जो कर्म हैं सो जल है, तिसके सींचनेकरि बढता है, कामभोगरूपी पुष्प हैं, चिंतारूपी बडी वल्ली है, जब विचार अरु वैराग्यरूपी कुठारकरि इसको काटै तब शांतिको प्राप्त होवै, अन्यथा शांतिको प्राप्त न होवैगा ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी एक हस्ती है, अरु शरीररूपी तलावविषे आनि स्थित भया है, शुभवासनारूपी जलको मलीन कर डारा है, अरु धर्म संतोष वैराग्यरूपी कमलको तोरिडारा है, भोगोंकी तृष्णा रूपी सूंडकरिकै तिसको तू आत्मविचाररूपी नेत्रोंकरि नखोंकरि छेद ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी कौवा है, जैसे कौवा अपवित्र पदार्थों को भोजन करता है, अरु सर्वदा काँ काँ करता है तैसे चित्त देहरूपी अपवित्रविषे बैठता है, अरु सर्वदा भोगोंकी ओर धावता है, तिनके रसको ग्रहण करता है, मौन कबहूँ नहीं होता अरु दुर्वासनाकरिकै काककी नाईं कृष्णरूप है, जैसे काकका एकही नेत्र होता है, तैसे चित्त एक विषयोंको धावता है, ऐसे अमंगलरूपी कौवाको विचाररूपी धनुषसे मारै, तब सुखी होवैगा, अरु चित्तरूपी ईल परखेरू है, भोगरूपी मांसके निमित्त सर्व ओरको भ्रमता है, अरु जहां अमंगल रूपी ईल आता है, तहांते विभूतिका अभाव हो जाता है, अरु मांसकी ओर ऊंचा होइकरि देखता है, नम्रीभाव नहीं होता, तैसे चित्तरूपी ईल शरीररूपी स्थानविषे बैठता है, आत्म ज्ञानरूपी विभूतिका अभाव हो जाता है, अरु भोगरूपी मांसको देखिकरि गिरता है, अरु अभिमानरूपी ग्रीवाको ऊँची रखता है, ऐसा जो चित्त अमंगलरूप ईल है, तिसको जब नाश करै, तब शांतिवान् होवैगा, अरु जैसे पिशाच आय जिसको लगता है, सो खेदवान् होता है, अरु शब्द करता है, तैसे चित्तरूपी इसको पिशाच लगा है, अरु तृष्णारूपी पिशाचनीकेसाथ शब्द करता है, तिसको काढहु, आत्माते इतर जो अभिमान करता है, ऐसा चित्तरूपी पिशाच है, तिसको वैराग्यरूपी मंत्रकरि दूर करहु, तव

स्वभावसत्ताको प्राप्त होवोगे, अरु यह चित्तरूपी वानर है, सो महा चंचल है, सदा भटकता रहता है, स्थिर कवहूँ नहीं रहता, कवहूँ किसी कवहूँ किसी पदार्थविषे धावता है, जैसे वानर जिस वृक्षपर बैठता है, तिसको ठहरने नहीं देता ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी जेवरीहै, तिसकेसाथ संपूर्ण जगत् बांधा है, कर्त्ता कर्म क्रियारूपी गांठि करिकै, जैसे एक सांकलीसे अनेक बंधवान् बांधते हैं, अरु एक तागेसे अनेक मणके परोते हैं, तैसे एक चित्तसे सब देहधारी बांधे हैं, तिस जेवरीको असंग शस्त्रकरि काटै, तब सुखी होवै ॥ हे रामजी! चित्तरूपी अजगर सर्प है; अरु भोगोंकी तृष्णारूपी विषकरि पूर्ण है, तिस सर्पने फूत्कारेसाथ बड़े बड़े लोक जलाए हैं, शम दम धैर्य रूपी जो कमल हैं, सो सब जलि गए हैं, इस दुष्टके मारनेको और समर्थ कोऊ नहीं, एक विचाररूपी गरुड है, जब विचाररूपी गरुड़उपजै, तब इसको जीतता है अरु जेते ईश्वर बलवान् हैं, तिन सबनते तत्त्ववेत्ता उत्तम हैं, उनके आगे सब लघु हो जाते हैं, तिन पुरुषको किसी संसारके पदार्थकी अपेक्षा नहीं उनका चित्त सत्यपदको प्राप्त हुआ है, तातें चित्तको स्थिर करौ, तब वर्त्तमान कालभी भविष्यत्कालकी नाईं हो जावैगा, जैसे भविष्यत्कालकाराग दोष नहीं स्पर्श करता, तैसे वर्त्तमानकालका राग दोष स्पर्श न करैगा ॥ हे रामजी ! आत्मा परम आनंदरूप है, तिसके पायेते अमृत भी विषसमान हो जाता है. अर्थ यह कि, अमृतरूप होइकरि चित्तको खैंचता सो नहीं खैंचता, जिस पुरुषको आत्मपदविषे स्थिति भई है, सो सबते उत्तम है, जैसे मेरु पर्वतके निकट हस्ती तुच्छ भासता है, तैसे तिसके निकट त्रिलोकीके पदार्थ सब तुच्छ भासते हैं, अरु वह बड़े दिव्यतेजको प्राप्त होता है, जिसको सूर्य नहीं प्रकाश कर सकता, परम प्रकाशरूप सब कलनाते रहित अद्वैततत्त्व है ॥ हे रामजी ! तिस आत्मतत्त्व विषे स्थित होहु, जो पुरुष ऐसे स्वरूपको पायाहै, सो सब कछु पायाहै, अरु जो ऐसे स्वरूपको नहीं पाया, सो कछु नहीं पाया, हमको ज्ञानकीवार्त्ता करते ज्ञानवान्को देखिकरि लज्जा कछु नहीं आती, अरु जो तिस ज्ञानस्वरूपकी वार्ताते विमुख हैं, यद्यपि महाबाहु होवैं, तौ भी गर्द भवत् हैं, जो वडे ऐश्वर्यकरि संपन्न हैं अरु आत्मपदते विमुख हैं, तिनको तू विष्ठाके कीटतेभी नीच जान, अरु जीवना तिनका श्रेष्ठहै,

जो आत्मपदके निमित्त यत्न करते हैं, अरु जीवना तिनका वृथा है, जो संसारके निमित्त यत्न करते हैं, देखनेमात्र तौ चैतन्य हैं, परंतु शवकी नाईं हैं, अरु जो तत्त्ववेत्ता भए हैं, सो अपने प्रकाशकरि प्रकाशते हैं, अरु जिनको शरीरविषे, अभिमान है सो मृतकसमान हैं ॥ हे रामजी ! इस जीवको चित्तने दीन किया है, ज्यों ज्यों चित्त वड़ा होता है, त्यों त्यों इसको दुःख होता है, अरु जिसका चित्त क्षीण भया है, तिसको कल्याण हुआ है, जब आत्मभाव अनात्माविषे दृढ़ होता है, अरु भोगोंकी तृष्णा होती है, तब चित्त वड़ा हो जाता है, अरु आत्मपदते दूर पडता है, जैसे बड़े मेघके आवरणकरि सूर्य नहीं भासता तैसे अनात्मा अभिमानकरि आत्मा नहीं भासता; अरु जब भोगोंकी तृष्णा निवृत्त हो जाती है, तब चित्त क्षीण हो जाता है, जैसे वसंतऋतुके गएते पत्र कृश हो जाते हैं, तैसे भोगवासनाके अभावते चित्त कृश हो जाता है ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी सर्प है, दुर्वासनारूपी दुर्गंध अरु भोगरूपी वायुकरि शरीर विषे दृढ आस्थारूपी मृत्तिका स्थानकरि वडा हो जाता है, तिन पदार्थोंकरि जब वडा भया; तब मोहरूपी विषकरि इसको मारता है ॥ हे रामजी ! ऐसे दुष्ट चित्तरूपी सर्पको जब मारै, तब कल्याण होवै; देहविषे जो आत्म अभिमान हो गया है, अरु भोगोंकी तृष्णा फुरती है, अरु मोहरूपी विष चढि गया है, जब विचाररूपी गरुडमंत्रको चिंतवता रहै, तब विष उतरि जावै, और उपाय विष उतारनेको कोई नहीं ॥ हे रामजी ! अनात्माविषे आत्मअभिमान, अरु पुत्र दारा आदिकविषे ममत्व, इसकरि चित्त वड़ा हो जाता है; अहंकाररूपी विकारकरि नष्ट कर, जब चित्तरूपी सर्प नष्ट हुआ, तब आत्मरूपी निधि प्राप्त होवैगी ॥ हे रामजी ! यह चित्त शास्त्रोंकरि काटा नहीं जाता. अरु अग्निकरि जलता नहीं न और किसी उपायकरि नाश होता है, एक साधुसंग अरु सच्छास्त्रों के विचार अभ्यासकरि नाश होजाता है, और किसी उपायकरि नष्ट नहीं होता ॥ हे रामजी ! यह चित्तरूपी गडेका मेघ है, सो वड़ा दुःखदायक है, अरु भोगोंकी तृष्णारूपी विजली इसविषे चमकती है, अरु जहां वर्षा होती है, तहां बोधरूपी क्षेत्र अरु शमदमरूपी कमल नाश होता है, जब विचाररूपी मंत्र होवै, तब शांत हो जावै ॥ हे रामजी ! चित्तकी जो चपलता है, तिसको असंकल्प

करिकै त्यागहु, जैसे ब्रह्मास्त्रकरिकै ब्रह्मास्त्रको छेदिता है, तैसे मनसाथ मनको छेदहु. अर्थ यह कि, अंतर्मुखी कर स्थित करहु, जब तेरा चित्तरूपी वानर स्थित होवै तब शरीररूपी वृक्ष क्षोभते रहित होवैगा ॥ हे रामजी ! शुद्ध बोधकरिकै मनको जीतौ, यह जगत् तृणते भी तुच्छ है, तिस पारको प्राप्त होहु॥इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे राघवसेवनवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशत्तमः सर्गः ॥४७॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो मनकी वृत्ति है, सो इष्ट अनिष्टको ग्रहण करती है, अरु खड्गकी धारावत् तीक्ष्ण है, इसविषे तू प्रीति मत कर, इसको मिथ्या जानिकरि त्याग कर ॥ हे रामजी ! बोधरूपी वल्ली शुभ क्षेत्र अरु शुभ कालकरिकै प्राप्त भई है, तिसको विवेकरूपी जलकरि सींचिये, तब परमपदकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी ! जबलग शरीर मलिनताको प्राप्त नहीं भया है, अरु जबलग पृथ्वीपर नहीं गिरा, तबलग बुद्धिको उदारकरि संसारते मुक्त होहु, मैं तुझको वचन कहे तिनको तैंने जाने हैं, इनका दृढ अभ्यास करै तब दृश्य भ्रम निवृत्त हो जावैगा ॥ हे रामजी ! यह पंच भूतका शरीर जो तुझको भासता है, सो तेरा रूप नहीं, तू शुद्ध चेतनरूप है, शुद्ध बोद्ध विचार करिकै अनात्मा पंचभूतके अभिमानको त्यागहु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! किस क्रम अरु किस प्रकार इनका अभिमान त्यागिकरि उद्दालक सुखी भया है ?॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! पूर्व जैसे उद्दालक भूतोंके समूहका विचारकरिकै परमपदको प्राप्त भया है, सो तू श्रवण कर ॥ हे रामजी ! जगत्‌रूपी जीर्ण घर है, तिसके वायव्यकोणविषे एक देश है तहां बहुत पर्वत अरु तमालादिक वृक्ष हैं,अरु महामणिनके स्थान हैं, ऐसे गंधमादन पर्वतपर एक स्थल था, तिस स्थानविषे एक उद्दालक नाम ब्राह्मण था, सो बुद्धिवान् मान करनेयोग्य विद्वान् था, परंतु अर्ध प्रबुद्ध था, काहेते परमपद तिसने पाया न था, ऐसा जो ब्राह्मण सो यौवन अवस्थाके पूर्वही शुभेच्छाकरिकै यम नियम तपको शास्त्रोंयुक्त साधतभया, तब तिसके चित्तविषे यह विचार उत्पन्न हुआ कि, जिसके पाएते बहुरि कछु पावने योग्य न रहै, अरु जिस पदविषे विश्राम पाएते बहुरि शोक न होवै, अरु जिसके पाएते बहुरि जन्मसाथ बंधन न होवै ॥ हे देव ! ऐसा पद मुझको कब प्राप्त होवैगा, अरु कब मैं मनके मननभावको त्यागिकरि

विश्रांतिवान् होऊंगा ? जैसे मेघ भ्रमणको त्यागिकरि पहाड़के शिखरमें विश्रांति करता है, अरु चित्तकी दृश्यरूप वासना मेरी कब मिटि जावैगी, जैसे तरंगते रहित समुद्र शांतिवान् होता है तैसे मनके संकल्प विकल्पते रहित शांतिवान् होवैगा, अरु तृष्णारूपी नदी है, सो बोधरूपी बेडी सत्संग अरु सच्छास्त्ररूपी मल्लाह करिकै कब तरि जाऊंगा, अरु चित्तरूपी हस्ती जो अभिमानरूपी मदकरि उन्मत्त है, तिसको विवेकरूपी सिंहकरि कब मारूंगा ? अरु ज्ञानरूपी सूर्यकरि अज्ञानरूपी अंधकारको कब नष्ट करौंगा, जिसकरि चित्तरूपी घूघू जगत्ते अंध होवै, हे देव! सब आरंभोंको त्यागिकरि अलेप अकर्त्ता कब होऊंगा, जैसे जलविषे कमल अलेप रहता है, तैसे मुझको कर्म स्पर्श न करै, अरु परमार्थरूपी भासुर वपु मेरा कब उदय होवैगा जिसकरि मैं जगत्की गतिको हँसौंगा अरु अंतर तोषको पाऊंगा, विराट् आत्मा पूर्ण बोधकी नाईं होऊं वह समय कब होवैगा; कि मैं जन्मोंके अंधको ज्ञानरूपी नेत्र कर प्राप्त होऊंगा, जिसकरि मैं परम बोधपदको देखौंगा, अरु वह समय कब होवैगा, जो मेरा चित्तरूपी मेघ वासनारूपी वायुते रहित आत्मरूपी सुमेरु पर्वतविषे स्थित होइकरि शांतिवान् होऊंगा, अज्ञानदशा कब जावैगी, ज्ञानदशा कब प्राप्त होवैगी, अब वह समय कब होवैगा, जो मन काया प्रकृतियोंको देखिकरि मैं हँसौंगा, अरु वह समय कब होवैगा जो जगत्के कर्म बालककी चेष्टावत् मिथ्या जानौंगा, अरु जगत् मुझको सुषुप्तिकी नाईं हो जावैगा, अरु वह समय कब होवैगा, जो पत्थरकी शिलावत् मुझको निर्विकल्प समाधि लगैगी, अरु शरीररूपी वृक्षविषे पक्षी आलय करैंगे, निःसंग होइकरि छातीपर आनि बैठैंगे ॥ हे देव! वह समय कब होवैगा जो इष्ट अनिष्ट विषयकी प्राप्तिते मेरे चित्तकी वृत्ति चलायमान् न होवैगी, अरु विराट्की नाईं सर्वात्मा होऊंगा, अरु वह समय कब आवैगा, जो मेरा सम असम आकार शांत हो जावैगा, सब अर्थोंते निरिच्छितरूप मैं हो जाऊंगा, अरु कब मैं उपशमको प्राप्त होऊंगा, जैसे मंदराचलते रहित क्षीरसमुद्र शांतिवान होता है; कब मैं अपना चेतन वपु पाइकरि शरीरको अशरीरवत् देखौंगा, अरु कब मेरी पूर्ण चिन्मात्र वृत्ति होवैगी, अरु कब मेरी बाहर अंतर सब कलना शांत हो जावैगी, अरु संपूर्ण

चिन्मात्रही मेरे ताईं भान होवैगा, अरु मैं ईहता अरु ग्रहणत्यागते रहित कब संतोषको प्राप्त होऊंगा, अपने स्वप्रकाशविषे स्थित होइकारि संसाररूपी नदीके जरामरणरूपी तरंगोंते रहित कब होऊंगा, अरु अपने स्वभावविषे स्थित कब होऊंगा ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारिकारि उद्दालक चित्तको ध्यानविषे जोड़ने लगा, परंतु चित्तरूपी वानर दृश्यकी ओर निकसि जावै, स्थित न होवै, बहुरि ध्यानविषे जोड़ै, बहुरि भोगोंकी ओर निकसि जावै, जैसे वानर ठहरता नहीं, तैसे चित्त ठहरै नहीं, जो बाहर विषयोंको त्यागिकारि चित्तको अंतर्मुख किया तब अंतर जो दृष्टि आई तौ भी विषयोंको चिंतवने लगा; निर्विकल्प होवै नहीं, जब रोंक राखै, तब सुषुप्ति विषे लीन हो जावै, सुषुप्ति अरु लय जो निद्रा है, तिसहीविषे चित्त रहता है, तब वहांते उठिकारि और स्थानको चला, जैसे सूर्य सुमेरुकी प्रदक्षिणाको चलता है, तब गंधमादन पर्वतकी एक कंदराविषे स्थित भया, कैसा पर्वत जो फूलोंसंयुक्त सुंदर अरु पशु पक्षी मृगोंते रहित ऐसा एकांत स्थान है, जो देवतोंको भी देखना कठिन है, अरु तहां अत्यंत प्रकाश भी नहीं, अरु अत्यंत तम भी नहीं, न अत्यंत उष्ण है, न शीत है, जैसे मधुर कार्त्तिक होता है, निर्भय एकांत स्थान जैसे मोक्षपदवी निर्भय एकांतरूप होती है, तैसे तिस पर्वतविषे कुटी बनाई वनदेवका स्थान अथवा सिद्धका भी होवै, परंतु औरकी गम नहीं, तिस कुटीविषे तमालपत्र अरु कमलोंका आसन करिकै ऊपर मृगछाला बिछाइ तिसकेऊपर बैठिकारि सब कामनाका त्याग किया, जैसे ब्रह्माजी जगत्को उपजाइ कारि छांड़ बैठैं तैसे सब कलनाको त्यागिकारि पद्मासन बांधा, अरु विचार करने लगा, अरे मूर्ख मन ! तू कहां जाता है, यह संसार मायामात्र है, एता काल तू जगत्विषे भटकता रहता है, कहूं तुझको शांति प्राप्त न भई, काहेते कि, वृथा धावता है ॥ हे मूर्ख ! मन उपशमको त्यागिकारि भोगोंकी ओर धावता है, सो अमृतको त्यागि कारि विषका बीज बोवताहै, यह सब तेरी चेष्टा दुःखोंके निमित्त है, जैसे घुराण अपना घर बनाइकारि आपहीको बंधन करताहै, तैसे तू आपको आप संकल्प उठाइकारि बंधन करताहै, अब तू संकल्पके संसर्गको त्यागिकारि आत्मपदविषे स्थित होहु, जो तुझको शांति प्राप्त होवै ॥ हे मन ! जिह्वासे मिलिकारि जो तू शब्द करता

है, सो दर्दुरके शब्दवत् व्यर्थ है, जब श्रवणोंसे मिलिकरि श्रवण करता है; तब शुभाशुभ वाक्य ग्रहण करिके मृगकी नाईं तू नष्ट होता है, अरु त्वचासे मिलिकरि जो तू स्पर्शकी इच्छा करता है, सो हस्तीकी नाईं नाश होता है, अरु रसनाके स्वादकी जो इच्छा करता है, सो मच्छीकी नाईं नाश होता है, अरु गंध लेनेकी तू इच्छा करता है, सो भँवरेकी नाईं नाश हो जावैगा, जैसे भँवरा सुगंधिके निमित्त फूलविषे फँसि मरता है, तैसे तू फँसि मरैगा, अरु सुंदर स्त्रियोंकी वांछा करता है, सो पतंगकी नाईं जलि मरैगा॥ हे मूर्ख मन! जो एक एक इंद्रियका स्वाद लेते हैं, सो भी नाश पाते हैं, तू तौ पंचविषयके सेवनेवाला है, नाश क्यों नहोवैगा? ताते तू इनकी इच्छा त्याग, जो तुझको शांति प्राप्त होवै, जो इन भोगोंकी इच्छा न त्यागैगा, तौ मैंही तुझको त्याग छोडौंगा, तू तौ मिथ्या असत्यरूप है, तुझसे मेरा क्या प्रयोजन है, विचार करि मैं तेरा त्याग करता हौं॥ हे मूर्ख मन! जो तू देहविषे अहं अहं करता है, सो तेरा अहं किस पदार्थविषे है, अंगुष्ठते लेइकरि मस्तकपर्यंत अहं वस्तु कछु नहीं, यह शरीर तौ अस्थि मांस रक्तका थला है यह तौ अहंरूप है नहीं, अरु श्वास जो है, सो वायुरूप है, अरु पोल आकाशरूप है, यह पंचतत्त्वोंका जो शरीर बना है, तिस विषे अहंरूप वस्तु तौ कछु नहीं है। मूर्ख मन! तू अहं अहं क्यों करता है, यह जो तू कहता है, मैं देखता हौं, मैं सुनता हौं, मैं सूंघता हौं, मैं स्पर्श करता हौं, स्वाद लेता हौं, मैं इनके इष्ट अनिष्टविषे राग द्वेषकरि जलता हौं, सो वृथा कष्ट पाता है, रूपको नेत्र ग्रहण करता है, सो नेत्र रूपते उत्पन्न भया है, तेजका अंश नेत्रविषे स्थित है, सो अपने विषयको ग्रहण करता है, इनके साथ मिलिकरि तू क्यों तपायमान होता है, अरु शब्द आकाशते उत्पन्न हुआ है, आकाशका अंश श्रवणविषे स्थित है, सो अपने गुण शब्दको ग्रहण करता है, इसके साथ मिलिकरि तू क्यों रागद्वेषवान् तपायमान होता है, अरु स्पर्श इंद्रिय वायुते उत्पन्न भया है, वायुका अंश त्वचाविषे स्थित है, वही स्पर्शको ग्रहण करता है, तिससे मिलिकरि तू क्यों रागद्वेषकरि तपायमान होता है, अरु रसना इंद्रिय जलते उत्पन्न भई है, जलका अंश जिह्वा है, अग्रभागविषे स्थित है, सोई रसको ग्रहण करता है, इस साथ मिलि तू क्यों

वृथा तपायमान होता है, अरु प्राण इंद्रिय गंधते उपजीहै, सो पृथ्वीका अंश घ्राणविषे स्थितहै, वही गंधको ग्रहण करती है, तिससों मिलिकरि तू क्यों वृथा रागद्वेषवान् होता है ॥ हे मूर्ख मन! इंद्रियां तौ अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं, तू इनविषे क्यों अभिमान करता है कि, मैं देखता हौं, सुनता हौं, मैं सूँघता हौं, मैं स्पर्श करता हौं, रस लेता हौं, यह तौ इंद्रियां सब आत्मभर हैं. अर्थ यह कि, अपने विषयको ग्रहण करती हैं, औरके विषयको ग्रहण नहीं करतीं, जो नेत्र देखते हैं, श्रवण नहीं करते अरु कर्ण श्रवण करते हैं, देखते नहीं, इत्यादिक सर्व इंद्रियां अपना धर्म किसीको देती भी नहीं, अरु लेती भी नहीं, अपने धर्मविषे स्थित हैं, अरु विषयको ग्रहण करि इनको रागद्वेष कछु नहीं होता, अरु इनको ग्रहण करनेकी वासना भी कछु नहीं अरु तू ऐसा मूर्ख है, औरोंके धर्म आपविषे मानिकारि रागद्वेषसों जलता है, जो तू भी रागद्वेषते होइकारि चेष्टा करै, तौ तुझको दुःख कछु न होवै, जो वासनासहित कर्म करता है, सोई बंधनका कारण होता है, वासनाविना दुःख कछु नहीं अरु तू मूर्ख है, जो विचार करि नहीं देखता, ताते मैं तुझको त्याग करता हौं, तेरे साथ मिलिकै मैं बड़े खेदको पाता हौं, जैसे विघाडके बालकको सिंह चूर्ण करता है, तैसे तैंने मुझको चूर्ण किया है, तेरे साथ मिलिकारि मैं तुच्छ हुआ हौं, अब तेरे साथ मेरा प्रयोजन कछु नहीं, मैं तौ निर्विकल्प शुद्ध चिदानंद हौं, जैसे महाकाश घटसों मिलिकारि घटाकाश होता है, तैसे तेरे साथ मिलिकारि मैं तुच्छ हो गया हौं, इस कारणते मैं तेरा संग त्यागिकारि परम चिदाकाशको प्राप्त होऊंगा; मैं निर्विकार हौं, अहं त्वंकी कल्पनाते रहित हौं, तू क्यों अहं त्वं करता है, शरीरविषे व्यर्थ अहं करनेवाला और कोऊ नहीं, तूही चोर है, अब मैं तुझको पकड़ीकारि तेरा त्याग किया है, तू तौ अज्ञानते उपजा मिथ्या असत्यरूपहै, जैसे बालक अपने परछाईंविषे वैताल जानिकारि आपहीभयको पाताहै, तैसे तुझने सर्वको दुःखी किया है, जब नाश होवैगा, तब आनंद होवैगा, तेरे उपजनेकारि महादुःख है, जैसे कोई ऊंचे पर्वतते गिरिकै कूपविषे जाय पड़ै, अरु कष्टवान् होवै तैसे तेरे संगकारि मैं आत्मपदते गिरा, देह अभिमानरूपी गर्त्तविषे रागद्वेष रूपी दुःख पाया था, अब मुझको त्यागि कारि मैं निरहं

कारपदको प्राप्त भया हौं, सो कैसा पद है, न प्रकाश है, न तम है न एक है, न दो हैं, न बड़ा है, न छोटा है, अहं त्वं आदिकते रहित अचैत्य चिन्मात्र है, जरा मृत्यु राग द्वेष भय सब तेरे संयोगते होते हैं, अब तेरे वियोगते मैं निर्विकार शुद्धपदको प्राप्त होता हौं॥ हे मन! तेरा होना दुःखका कारण है, जब तू निर्वाण हो जावैगा, तब मैं ब्रह्मरूप होऊंगा तेरे संगकरि मैं तुच्छ हुआ हौं, जब तू निवृत्त हुआ, तब मैं शुद्ध हुआ, जैसे मेघ आकाश कुहिडके होनेकरि मलिन आकाश भासता है, जब वर्षा गई तब शुद्ध निर्मल आकाश हो रहता है, तैसे तेरे निवृत्त हुएते आत्मा निर्लेप अपना आप भासता है॥ हे चित्त यह जो देह इंद्रियादिक पदार्थ हैं, सो भिन्न हैं, इनविषे अहंवस्तु कछु नहीं, इनको एक तुझनेही इकट्ठा किया है, जैसे एक तागा अनेक मणकेको इकट्ठा करता है, तैसे सबको इकट्ठा करिकै तू अहं अहं करता है, अरु तू मिथ्या राग द्वेष करता है, ताते तू शीघ्रही सब इंद्रियोंको लेइकारि निर्वाण होहु, जो तेरी जय होवै॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकविचारो नाम अष्टचत्वारिंशत्तमः सर्गः॥ ४८॥ उद्दालक उवाच॥ आत्मा सूक्ष्मते सूक्ष्म है, अरु स्थूलते स्थूल है, शुद्ध निर्विकार शांतरूप है, सो मैं हौं, अचैत्य चिन्मात्र हौं, मेरेविषे विकार कोई नहीं, जेते कछु जन्म मरण आदिक विकार भासते हैं, सो आत्मविषे चित्तके कल्पे हैं, आत्माको कोई नहीं, जन्म तिसको कहते हैं जो पहिले न होवै, औ पाछे उपजै, आत्मा तौ आगेही सिद्ध है बहुरि जन्म कैसे कहिये, अरु मृत्यु तिसको कहते हैं जो पाछे न होवै, पहले अभाव हो जावै, आत्मा तौ जगत्विषे अंत भी सिद्ध है, ताते सब विकारोंते रहित है, बहुरि मृत्यु प्रध्वंसाभाव कैसे कहिये! देहके आदि मध्य अंततीनों काल सिद्ध हैं, ताते सब विकारोंते रहित है, सो चित्तके संयोगते विकारोंसहित भासता है॥ हे चित्त! तेरे संयोगकरि मैं एते भ्रमको प्राप्त भया था, अरु शरीरविषे व्यर्थ अहं अहं होता है, सो जाना नहीं जाता कि, कौन है? शरीर तौ रक्तमांसका पिंड है, इंद्रियां मन आदिक सब जड हैं, अहं करनेवाला कौन है, जब अहं होता है, तब भाव अभाव पदार्थको ग्रहण करता है, जहां अहंका अभाव है, तहां भाव अभाव कैसे होवै, अहंकार झूठ है, इंद्रियां अपने अपने विषयको ग्रहण करती हैं, अरु

मनादिकविषे भी अपने स्वभावविषे स्थित हैं यह अहं करनेवाला नहीं पाते कि, कौन है, अहंका रूप कछु नहीं पाते ताते, निश्चय भया कि, सब पदार्थ झूठ हैं, अहंकार पदार्थ ग्रहण करनेवाला भी झूठ है, जेते कछु पदार्थ हैं सो अहंकारकरि होते हैं, मैं क्यों इसके साथ मिलिकारि देह इंद्रियोंके इष्ट अनिष्टविषे राग दोष करौं, इसका अरु मेरा संयोग तौ कछु नहीं, मैं तौ आत्मा निर्लेप अद्वैत हौं, संयोग किससे होवै, भावरूप वस्तु ब्रह्म है, सो मैं हौं, मेरा संयोग किससे होवै, यह तौ है नहीं, सब असत्यरूप है, अरु जो कहिये देहादिक हैं, तौ भी संयोग नहीं बनता, जैसे लोहे अरु बटेका संयोग नहीं होता, यह बड़ा आश्चर्य है कि, सबका अहं करनेवाला कौन था, यह मिथ्या अहंकार अज्ञानकरिकै दुःखदायक था, जैसे अज्ञान करिकै बालकको बैताल भासिकरि दुःख देता है, तैसे अविचार करिकै दुःख होता है, जैसे पहाड़पर बादल स्थित होता है, सो पहाड़ बादल नहीं होता, अरु बादल पहाड़ नहीं होता तैसे आत्मा अनात्मा नहीं होता, अरु अनात्मा आत्मा नहीं होता; जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासताहै, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे अहंकार आत्माविषे भासता है, विचार कियेते अहंकार कछु नहीं निकसता जहां अहंकार होता है, तहां दुःख भी आय स्थित होता है, जैसे जहां मेघ होता है, तहां बिजली भी होती है, तैसे जहां अहंकार होता है, तहां शरीररूपी वृक्षकी मंजरी बढ़ती है, जैसे गरुडके विद्यमान सर्प नहीं रहता, तैसे आत्मविचारके विद्यमान् अहंकार नहीं रहता, ताते चित्तादिक सब झूठ हैं, अज्ञानकरि भासते हैं, इनकरि रचा हुआ जगत् सत्य कैसे होवै ? यह जगत् अकारण है, ताते मिथ्या भ्रमकरिकै भासता है, जैसे भ्रांतिकरिकै आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भासता है, जैसे नौकाविषे बैठेते तटवृक्ष चलते हैं, जैसे गंधर्वनगर भासता है, जब चित्त नष्ट होवै, तब सब भ्रमका अभाव हो जाता है, देहविषे जो अभिमान है, सो दुःखोंका कारण है, जबलग विचार नहीं उपजता, तबलग भासता है, जैसे बर्फकी पुतली तबलग होती है, जबलग सूर्यका तेज नहीं लगा, जब सूर्यका तेज लगा, तब बर्फकी पुतली गलि जाती है, जैसे बालकको भ्रमणेकरि पृथ्वी भ्रमती भासती है, तैसे चित्तके भ्रमकरि यह जगत् भासता है,

अरु विचारके उपजेते अहंकार गलि जाता है ॥ हे मन ! तेरेसाथ मिलनेकारि बडा दुःख होता है, अरु तुझते रहित मैं आपको देखा है, अब तू सब इंद्रियोंसहित निर्वाण होहु आत्मविचारकारि आत्मअग्निविषे स्थित होहु, जो सब मल तेरा जलै, अरु शुद्धताको प्राप्त होवै, अरु इस देहसाथ तेरा मिलाप है, सो दुःखके निमित्त है, मन अरु देहके अंतरते आपसमें शत्रुभाव है, अरु बाहिरते स्नेह भासता है, अंतर परस्पर नाश करनेकी इच्छा करते हैं, जो दुःख होता है, तौ मन इसके नाशकी इच्छा करता है, अरु देह कहती है, मन नाश होवै तौ मेरेविषे दुःख कोई नहीं, इसका मिलनाही दुःखका कारण है ॥ हे मूर्ख मन ! देहको तेरे संगकारि दुःख होता है, आपते इसविषे भी कोऊ नहीं, मनविषे देहका अभिमान न होवै, तौ भी दुःख कोई नहीं, इनके संयोगकारि दुःख होता है, अरु विछुरनेकारि दुःख कछु नहीं, तैसे मन अरु देहविषे वियोग कछु नहीं, जैसे जहां अंगारेकी वर्षा होती है, तहां बुद्धिवान् नहीं रहते, तैसे इनविषे मिलकर हमको रहना योग्य नहीं ॥ हे मूर्ख मन ! जेता कछु दुःख तुझको होता है, सो देहके मिलापते होता है, इसकेसाथ तू किसनिमित्त मिलता है, अरु आपको सुख जानता है, इसके मिलनेकारि तुझको दुःखही होता है, परंतु ऐसा मूर्ख है, जो वारंवार देहकी ओरही दौडता है, तू सुख जानता है, अरु तेरा नाश होता है, जैसे पतंग दीपको सुखरूप जानिकारि मिलनेकी इच्छा करता है, अरु जल मरते हैं जैसे मच्छी मांसकी इच्छा करती है, सो कंडीविषे फँस मरती है, तैसे तू देहकी इच्छा करता है, अरु नाशको प्राप्त होता है, तातें इसका अभिमान त्याग, जो तुझको शांति प्राप्त होवै, अरु देह कछु वस्तु नहीं, मनहीका विकार है, पंचतत्त्वोंकी देह बनी हुई है, सो भी कछु वस्तु नहीं, सब मनके फुरणेकारि रचे हैं, तातें फुरणको त्यागिकारि आत्मपदविषे स्थित होहु जो तुझको शांति प्राप्त होवै, अरु मैं तौ सबते अतीत शुद्ध चिदानंद स्वरूप हौं, मेरे पास न कोऊ मन है, न इंद्रियां हैं, मैं अद्वैतरूप हौं, जैसे राजाके समीपमें दोई नहीं होता, तैसे मेरे निकट मन इंद्रियां कोई नहीं, मैं शुद्ध आत्मतत्त्व हौं भोगासाथ मेरा क्या प्रयोजन है, जो इससाथ मिलिकारि दीनताको प्राप्त होऊं मुझको इनकेसाथ कछु प्रयोजन नहीं, चिरपर्यंत रहैं, अथवा

अवहीं नष्ट हो जावैं, इनके नाश होनेकरि मेरा नाश नहीं होता, अरु ठहरनेविषे प्रयोजन नहीं होता, इनते आपको भिन्न जाना है, जैसे तिलोंते तेल निकासि लिया तब बहुरि नहीं मिलता, अरु दूधते माखन निकास लिया तब बहुरि नहीं मिलता, तैसे विचार करिकै अपना आप काढि लिया, तब बहुरि इनके साथ नहीं मिलता, मैं शुद्ध चिदानंद आत्मा हौं, सब जगत् मेरे आश्रय है, सबविषे मैं एकही अनुस्यूत व्यापा हौं,अब तिस स्वरूपविषे स्थित होऊं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारि करि उद्दालक ब्राह्मणने वृत्तिको विषयोंते निवृत्त करिकै पद्मासन धारा, अरु प्रणव अर्धमात्रा अकार उकार मकार क्रमकरिके तिसकी उपासना करने लगा, प्राणायाम करिकै मात्राका ध्यान करत भया, अकार ब्रह्मा, उकार विष्णु, मकार शिव, अर्धमात्र तुरीया, इनको क्रमसहित करने लगा ॥ प्रथम रेचक प्राणायाम करने लगा, अकारकी ध्वनिसाथ रेचक करत भया तिसकरि सब प्राणवायु अंतरते निकसे तव अंतर शून्य अरु शुद्ध हुआ, जैसे अगस्त्यमुनिने समुद्रको शून्य किया था, तैसे अरु आकाशकरि ऐसी ध्वनि उच्चरी जो ब्रह्मा विष्णु रुद्रपर्यंत चली गई; अरु देह अभिमानको त्यागिकरि पुर्यष्टकाको सुषुम्नाके मार्गविषे प्राप्त किया जैसे पक्षी आलयको त्यागिकरि आकाशमार्गको उड़ताहै, तैसे उद्दालकने पुर्यष्टकाको ब्रह्मरंध्रविषे स्थित किया जबलग चित्त सुखेन रहा, तबलग स्थितरह्या काहेते कि हठ करनेसों दुःख होता है, इसी कारणते जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थितरहा, जब थका तब पुर्यष्टकका वायु अधते आया, तब उकार विष्णुरूपकी ध्वनि अरु ध्यानसाथ कुंभक किया सब प्राणवायुको आधार चक्रविषे रोका न तलेको गमन करै, न ऊपरको गमन करै, तिसकारि प्राण स्थिंत संघट भए; तिसते अग्नि निकसी तिस अग्निकारि इसका पापपुण्यरूपी शरीर जालिगया, तिसविषे जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थित भया, काहेते कि, हठयोग दुःखदायक है, इस कारणते जबलग सुखेन रहा, तबलग स्थित भया, बहुरि मकारकी ध्वनिसों रुद्रका ध्यान कारिकै पूरकप्राणायाम करत भया, पूरक प्राणायाम कारिकै सब स्थान वायुसों पूर्ण किये, ऊर्ध्वको चित्तकला प्राप्त भई अरु जिसका स्पर्श महाशीतल है, जैसा चंद्रमाका मंडल शीतल है, तिसते अमृतकी वर्षा होती है,

तिसकरि यह औरको पवित्र करनेहारा हुआ है, जैसे धुआँ आकाशको जाता है, अरु जलको पाइकरि औरोंको शीतल करनेहारा होता है, तैसे इसका शरीर औरोंको पवित्र करनेहारा हुआ, जैसे मंदराचलकरिकै मथा क्षीरसमुद्र तिसते कल्पवृक्ष निकसा तैसे इसके शरीरविषे प्राणवायु स्थित भया, पद्मासन बांधिकरि इंद्रियोंको रोंकता भया, जैसे हस्ती बंधनोंसाथ बँधता है; तैसे इंद्रियोंको रोंकता भया, अर्धमात्रा जो तुरीयापद है, तिसके दर्शननिमित्त यत्न करने लगा, नेत्रोंको अर्ध मूँदत भया, अरु बाह्य विषयोंका त्याग किया इंद्रियोंको भी त्यागकरि प्राण अपानको मूलचक्रविषे रोंकता भया तिसकरि नवही द्वार रोंके गए, जैसे बालकके खेलनेका पाणी चोर होता है, तिसके मुँदनेकारि चलता पाणी सब छिद्रोंते रोंका जाता है, तैसे मूलचक्रके रोंकनेकारि नव ही द्वार रोंके गए इसप्रकार चित्तको रोंकता भया जब मनरूपी चंचल मृग दौड़े तब वैराग्य अरु अभ्यासके बलकरि बहुरि ले आवै जैसे पुलकारि जलका वेग रुकता है, तैसे चित्तको स्थित किया तब अंतःकरणकी जो सात्विकी वृत्ति है, तिसको त्यागिकारि स्थित भया तब मनकी वृत्ति जो है, निद्रारूप जडता तिसविषे मन मूर्च्छित हो गया, जैसे सूर्य बादलोंविषे होवै तैसे निद्राविषे लीन हो गया तब राजस तामसका प्रवाह बहुरि फुरने लगा तिसको आत्मविवेककारि निवृत्त किया जैसे प्रकाशकारि तमको निवृत्त करता है, तैसे यह विकल्परूपी तमको निवृत्त करता भया, विवेकके बलकरि चित्तकलाविषे लगाया तिसको चित्तकी वृत्तिकेसाथ साक्षात्कार किया, महाप्रकाशवान् अरु शांतिरूप तिसविषे एक क्षण चित्त स्थित रहा, बहुरि बाह्य निकसि गया जैसे पुलको तोड़िकारि जल निकसि जाता है, तैसे निकसि गया, बहुरि अभ्यासके बलकरि आत्मकलाविषे लगाया, तब तिस परमपद शांत आत्मपदविषे चित्तकी वृत्ति स्थित भई, तहां परमआनंद अमृतविषे मग्न भई, जो अशब्द आनंदपरिणामते रहित है, तिसविषे स्थित हुआ, जिस पदविषे देवता ऋषीश्वर स्थित हैं, जिस पदविषे ब्रह्मा विष्णु रुद्र स्थित हैं, तिस पदविषे उद्दालक स्थित भया॥ हे रामजी ! जो एक क्षण भी तिसविषे स्थित भया है, अरु जो वर्षपर्यंत स्थित भया है सो दोनों तुल्य हैं, जिसको तिस पदका अनुभव भया है, सो भोगोंकी

इच्छा नहीं करता, जैसे जिसने स्वर्गका नंदनवन देखा है, सो करजुएका वन देखनेकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् भोगोंकी वांछा नहीं करता, अरु शोक कदाचित् नहीं उपजता, जैसे जिसको राज्य प्राप्त भया है, सो दीनताको प्राप्त नहीं होता, तैसे जिसने आत्मपदविषे स्थिति पाई है, तिसको विषयोंकी तृष्णा अरु शोक नहीं उपजता ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उद्दालक स्थित था, तब सिद्ध गंधर्व विद्याधरोंके समूह तिसके निकट आय प्राप्त भए, वडे तेजवान् अरु चंद्रमाकी नाई मुख जिनके, सो आइकारि इसको नमस्कार करत भए, अरु कहा, हे भगवन् ! स्वर्गको चलौ, अरु दिव्य भोग भोगौ, तुमने बडी तपस्या करी है, धर्म अर्थ पुण्यका सार काम है, अरु कामका सार जो स्त्रियां हैं, सो तुम्हारे भोगने निमित्त हैं, सो कैसी स्त्रियां हैं, विद्याधरियां महादेवमूर्त्ति स्वर्ग भी इन्होंकारि शोभता है, जैसे वसंतऋतुकी मंजरियां और पुष्पोंकारि पृथ्वी शोभती है, ताते तुम विमानोंपर आरूढ होइकारि स्वर्गको चलो, बहुत कालपर्यंत भोग भोगौ ॥ हे रामजी ! जब सिद्धोंने इसप्रकार बहुत कहा, तब उद्दालकने तिनको अतिथि जानिकारि निरादर न किया; यथायोग्य पूजा करिकै कहत भया, हे सिद्धो ! तुमको नमस्कार है, तुम जाओ, तिसकी सिद्धताविषे आसक्त न भया; काहेते कि, परमानंदविषे स्थित रहा, विषयोंके सुख तुच्छ जानता भया, जैसे अमृत खाने वाला विषकी इच्छा नहीं करता, तैसे उद्दालक विषयोंके सुखको न चाहता भया, तब कछुक दिन रहि सिद्ध पूजते भये, बहुरि उठि गए, यह परमपदविषे स्थित भया, तिस पदविषे स्थित हो अपने प्रकृत व्यवहारको करता भया, मेरुपर्वत मंदराचल पर्वतविषे विचरा, कंदराविषे ध्यान कर बैठे, कहूं एक दिन बैठा रहे, कहूँ वर्षोंके समूह बीति जावैं, इसप्रकार समाधि करिकै उतरा, तब समाधि हो गई ॥ हे रामजी ! चित्त तत्त्वज्ञ अभ्यासकरिकै महाचेतन तत्त्वको प्राप्त होता है, अरु दिशाविषे जैसे चित्रका सूर्य होता है, तैसे उदय अस्तते रहित हुआ उपशम परमपदको पाया, अरु चित्त भलीप्रकार शांत हो गया, अरु जन्मरूपी फाँसीको तोड़त भया, अरु देहरूपी भ्रम क्षीण हो गया, शरत्कालके आकाशवत् निर्मल भया, अरु विस्तृत उत्कृष्ट प्रकाशरूप उद्दालकका वपु हो गया, अरु सत्तासामान्यविषे स्थित होइ

करि विचरने लगा, परम शांतिको प्राप्त भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकविश्रांतिवर्णनं नाम एकोनपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ४९ ॥ राम उवाच ॥ हे आत्मरूप ज्ञानदिनके प्रकाशकर्त्ता सूर्य ! हे संशयरूपी तृणोंके जलावनेहारे अग्नि ! हे अज्ञानरूपी तापेंके शांतकर्त्ता चंद्रमा ! हे ईश्वर वसिष्ठजी ! सत्तासामान्यका रूप क्या है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जगतके अत्यंत अभावकी भावना करिके जब चित्त क्षीण हो जावै तिसते शेष जो रहै, सो सत्तासामान्य है, जब चित्तते रहित आत्मसत्ता होवै, जिसविषे चित्त लीन हो जावै, तब सत्तासामान्य उदय हो आवै, जो असत्यकी नाई स्थित है, सो सत्तासामान्य है ॥ हे रामजी ! जब सब इंद्रियां प्रपंच शांत हो जावैं, अरु शुद्ध बोध रहै, अंतर बाहरका व्यवधान मिटि जावै, सब जगत् एकरूप हो जावै, समाधि अरु उत्थान एक जैसा हो जावै, ऐसी दशाकी जो प्राप्ति है सो सत्तासामान्य है, सो देहके होतेही विदेहरूप है, तिसको तुरीयातीतपद कहते हैं, समाधिविषे स्थित होवै, तौ भी केवलरूप है, उत्थान होवै, तौ भी केवलरूप है, अरु अज्ञानी जो है, तिसको समाधि उत्थान तुल्य नहीं होता. काहेते कि, ज्ञानते उपजी समाधि तिसको नहीं प्राप्त भई, जो जीवन्मुक्त पुरुष है, हमते आदि लेकरि जिनको ज्ञानदृष्टि प्राप्त भई है, नारद देवर्षि ब्रह्मा विष्णु रुद्र आदिक और भी ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो सत्तासामान्यविषे स्थित हैं, तिनको समाधि अरु उत्थानविषे तुल्यता है, जैसे आकाशविषे पवनका चलना अरु ठहरना समान है, जैसे पृथ्वीविषे जल स्थित है, अरु अग्निविषे उष्णता स्थित है, तैसे सत्तासामान्यविषे स्थित है, तिस पदविषे स्थित होइकरि उद्दालक विचार करता था, जबलग जगत्कोटराविषे विचरनेकी इच्छा थी, तबलग ऐसे विचरता रहा, जब विदेहमुक्त होनेकी इच्छा भई तब पहाड़की कंदराविषे पत्रोंका आसन बनाइकरि पद्मासन बाँधा, बाह्य इंद्रियोंके विषयोंका त्याग किया, दंतोंके साथ दन्तोंको मिलाइकरि सब संकल्पका त्याग किया, प्राणवायुको मूल आधार चक्र करिकै नवोंही द्वार खेचरी मुद्राकरि रोकत भया, न अंतर न बाहिर, न अध, न उर्ध्व, सर्व भावअभाव विकल्पको त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे चित्तकी वृत्तिको जोड़ता भया, तब शुद्ध चिन्मात्रविषे

चित्तकी वृत्ति जाय प्राप्त भई, रोम खड़े हो आए, तिस व्युत्थानको भी त्याग किया, तब सत्तासामान्य विश्वंभर पदको प्राप्त भया, परम विश्रांति अनादि आनंद सुंदररूप हैं, तिस पदको प्राप्त हुआ, चिरकालकरिकै क्षीण मन भया, तब पुतलीकी नाईं शरीर हो गया, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल पदको प्राप्त भया, जिसते चित्त उपजा था, तिसविषे जाय लीन भया, जैसे सूर्यकी किरणोंद्वारा वृक्षविषे रस होता है, अरु सूर्यही खैंचि लेता है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजि करि तिसहीविषे लीन होते हैं, तैसे चित्त लीन हो गया अरु संकल्प संपूर्ण उपाधिविलासते रहित भया, तिस आनंदपदको प्राप्तभया, जिसविषे इंद्रादिकको आनंद तुच्छ भासता है, ऐसा विश्वंभर आनंद जो उत्तम पुरुषोंकरि सेवने योग्य है, तिसको उद्दालक प्राप्त भया। अद्वैत अशब्द सत्तासामान्य पदविषे स्थित भया, परम शांतिरूप होता भया, तब केतेक काल पीछे तिसका शरीर गिर पड़ा, जैसे रस सूखेते वृक्ष गिर पडता है, सूर्यकी किरणोंकरि सूखा हुआ शरीर वीणाकी नाईं होत भया, जैसे वीणा बाजती है, अरु तिसका शब्द प्रगट होता है, तैसे जबवायु चलै, तब तिस शरीरविषे प्रवेश करि निकसेते शब्द प्रगट होता है, केतेक काल पीछेते देवतोंकी स्त्रियां अरु अश्विनीकुमारकी शक्ति आदिक आईं, महाअग्निकी नाईं जिनका प्रकाश है, अरु देव देवी हैं, सब देवतोंकरि पूज्य सो सखियों सहित आइकरिकै गलेविषे सुंदर पुष्पोंकी माला पहिराईं, अरु मोरके पुच्छवत् सुंदर करिकै तिसके आगे पूजा करि नृत्य करने लगीं, अरु लीलाकरिकै शोभती भईं ॥ हे रामजी! उद्दालकके चित्तकी वृत्तिमें कलनाते रहित विवेकरूपी वल्ली प्रगट भई, तिसको आत्मानंदरूपी फल भया, और जिसके हृदयविषे ऐसे फूलोंकी सुगंधि स्थित होवै, सो भी सब भ्रमको तरिजावै, जिसको ऐसा विवेक प्राप्त होवै, सो सब भ्रमते मुक्त होवै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे उद्दालकनिर्वाणवर्णनं नाम पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५० ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार उद्दालक ऋषीश्वर आत्मपदको प्राप्त भया है, तैसे क्रमकरिकै अपने आपको विचारकरिकै तू आत्मपदको प्राप्त होहु ॥ हे कमलनयन! कर्तव्य यही है कि, गुरु अरु शास्त्रोंके वचनोंको धारिकारि जगद्भ्रमते मुक्त होहु, अरु

आत्माभ्यासकरि शांतपदको प्राप्त होओ, प्रथम गुरु अरु शास्त्रोंके वाक्योंको समझिये, तिसकरि जो विषयभूत अर्थ है, तिसके अभ्यासविषे बुद्धिको लगाइये, इसप्रकार जव दृढता होवै, तव परमपदकी प्राप्ति होवै, अथवा एक बुद्धिविषे तीक्ष्ण अभ्यास होवै, कलंककलनाते रहित ऐसा वोध होवै, अरु साधनादि सामग्रीते सहित होवै, अथवा वैराग्यादिक सामग्रीते रहित होवै तौ भी अविनाशी पदको प्राप्त होवै ॥ राम उवाच ॥ हे भूतभविष्यके ईश्वर! एक ज्ञानवान् पुरुष समाधिविषे स्थित होता है, बहुरि जगत्व्यवहारविषे विचरता है; अरु एक समाधिविषे स्थित है, जगत्का व्यवहार नहीं करता, तिन दोनोंविषे श्रेष्ठ कौन है? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! प्रथम समाधिका लक्षण सुन कि, समाधि किसको कहते हैं, अरु व्युत्थान किसको कहते हैं? सो सुन. यह गुणोंका समूह अहंकारते लेकरि तत्त्वगुणात्मक है, जो इनको अनात्मरूप देखता है, अरु आपको केवल इनका साक्षी चेतन जानता है, अरु स्वाभाविक जिसका चित्त शीतल है, तिसको समाधि कहते हैं, जो मैत्री करुणा अमान्यता आदिक गुणकरि स्थित हुआ है, मन आत्म विषयकरि शांतिको प्राप्त होता है, तिसको समाधि कहते हैं ॥ हे रामजी! जिसको ऐसा निश्चय होता है कि, मैं शुद्ध चिदानंदस्वरूप हौं, अरु दृश्यके संवंधते रहित हौं, ऐसे निश्चयकरि जिसका अंतःकरण शीतल होता है, सो कोऊ वनविषे अथवा गृहविषे रहै, सो दोनों स्थान उनको तुल्य हैं, अरु वह दोनों पुरुष तुल्य हैं, जो अंतःकरण शीतल होवै, सो बड़े तपोंका फल अनंत है ॥ हे रामजी! जो इंद्रियोंको शमन करिकै बैठा है, अरु मनकरि जगत्के पदार्थकी चिंतवना करता है, तिसकी समाधि मिथ्या है, वह उन्मत्तकी नाईं नृत्य करता है, अरु जिसको वासना कोई नहीं, अरु मनविषे व्यवहार करता है, तिसको बुद्धिवान्की समाधिके तुल्य जान, कोऊ ज्ञानी व्यवहार करता है, कोऊ ज्ञानवान् व्यवहारको त्यागिकरि वनविषे समाधिविषे स्थित हो बैठता है, सो दोनों निश्चयकरि परमपदको प्राप्त होते हैं, इसविषे संशय नहीं करना, ज्ञानवान् निर्वाह पुरुषार्थ करता भी दृष्ट आता है, तौ भी अकर्त्ता है, अरु जो अज्ञानी कर्त्ता भी नहीं, परंतु वासनाकरिकै कर्तव्यभावको प्राप्त होता है, जैसे कोऊ पुरुष

कथा श्रवण करने बैठा है, अरु मन किसी और ठौर निकस गया है; तौ सुनता बैठा भी नहीं सुनता, तैसे ज्ञानवान्‌का चित्त आतमपदकी ओर लगा है, ताते वह कर्त्ता भी नहीं कर्त्ता, उसको कर्तृत्वका अभिमान कछु नहीं होता, अरु घनवासनासहित जो अज्ञानी सब इंद्रियोंको स्थित करिकै सोइ गया है, तिसको स्वप्न आया सो पर्वतते टोएविषे आपको गिरा देखता है, अरु कष्टवान् होता है, ताते जहां वासना है, तहां क्षोभ भी है, जहां वासना कछु नहीं तहां शांति है॥ हे रामजी ! जिसविषे कर्तृत्वका अभिमान नहीं, अरु निश्चयकारि आपको अकर्त्ता जानता है, तिसको केवलीभावते समाधिस्थित जान, अरु जिसविषे कर्तृत्व अभिमान है, अरु समाधिकारि बैठा है, तौ भी तिसको व्युत्थान जान ॥ हे रामजी! चित्तको चलावनेका कारण स्मृति है जो स्मृति जगत्‌की लेकारि समाधि लगाय बैठता है, तौ भी चित्तवासनाकारिकै विस्तारको पाता है, जैसे बीजसों अंकुर उपजता है, अरु विस्तारको पाता है, तैसे मनविषे जो स्मृति वासनाकी होती है, तिसकारि चित्त विस्तारको पाता है, अरु जो जगत्‌की वासना मनते जाती रही- अर्थ यह कि, जब जगत्‌का सततभाव निवृत्त होता है, तब चित्त अचल हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिस चित्तसों वासना नष्ट होती है, तिसको अचल स्थिति कहते हैं सो ध्यानविषे केवलीभावविषे स्थित होता है, अरु जिसके चित्तविषे सदा वासना फुरती है, तिसको सदा क्षोभ होता है, ताते निर्वासनिक होइकारि परमपदको प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! जिस चित्तविषे वासना, गंध होती है तहां कर्तृत्वका अभिमान स्फुरता है, तिसकारि सदा दुःखी होताहै, वासनाके क्षीण हुएते मुक्त होताहै, जिस पुरुषके चित्तसों जगत्‌की आस्था निवृत्त भई है, अरु वीतशोक भयाहै, सो स्वस्थ आत्माहै, तिसको समाधि कहते हैं ॥ हे रामजी! जिसके अंतरते संसारका राग दोष मिटि गया है, अरु शांतिको प्राप्त भया है, तिसको सदिव्य समाधि कहते हैं, ताते चित्तविषे जो पदार्थभावना है, तिसको त्यागिकारि अपने स्वभावविषे स्थित होहु, तब गृहविषे रहहु, अथवा वनविषे जावहु, दोनों तुझको तुल्य हैं ॥ हे रामजी ! गृहविषे स्थित हैं, अरु चित्त जिनका समाहित है, अहंकारके दोषते रहित हैं, तिनको कुटुंब अरु जनोंके समूह भी वनकी नाईं हैं, जैसे उसको वन है, तैसे

ज्ञानवान्को गृह वनतुल्य है, अरु देह अभिमानी जो अज्ञानी है, सो वनविषे जाय समाधि लगाय बैठता है, अरु चित्तकी वृत्ति विषयोंकी ओर रहती है, तब वह जगत्के समूहको देखता है, अथवा सुषुप्तिविषे जड़भूत हो जाता है ॥ हे रामजी ! चित्त उत्थानविषे स्वरूपते गिरा हुआ जगद्भ्रमको देखता है, अरु जो चित्त निर्वाणपद आत्माविषे स्थित होता है, तब उपशम होता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुषभाव सर्व पदार्थोंते आत्माको अतीत जानता है, सो समाहित चित्त कहाता है, अरु जिसको जागृत् जगत् स्वप्नवत् भासता है, सो समाहितचित्त कहाता है, वह पुरुष जनके समूहविषे रहता है, तौ भी उसका संबंध किसीसाथ नहीं, जैसे कोऊ पुरुष राजमार्गविषे चला जाता है, तहां किसी मार्गके पदार्थसाथ संबंध नहीं होता, तैसे उस पुरुषका अभिमान किसीविषे नहीं स्फुरता, जिस पुरुषका चित्त अंतर्मुख हुआ है, सो सोवै अथवा बैठे, अथवा चलै, देखै, नगर ग्राम सब उसको महावनरूप भासता है, सब जगत् उसको आकाशरूप भासता है, जिस पुरुषको आत्माविषे प्रीति भई है, तिसको अंतर्मुखी कहते हैं, जिसका अंतर आत्मज्ञानकरि शीतल भया है, तिसको सब जगत् शीतलरूप भासताहै, जबलग जीता है, तबलग विगतज्वर होइकरि जीता है, अरु जिसका अंतर तृष्णाकरि जलता है, तिसको सब जगत् दावाग्निसाथ तपता भासता है ॥ हे रामजी ! यह सब जगत् इसके चित्तविषे स्थित है, जैसी भावना चित्तविषे होती है, तिसके अनुसार जगत् भासता है, स्वर्ग पृथ्वी लोक पाताल वायु नदियां आकाश देश काल जेता कछु जगत् है, सो सब चित्त अंतःकरणविषे है, वही बाहर विस्तार होइकरि भासता है, जैसे वटके बीजविषे वटका विस्तार होता है, तैसे चित्ताविषे जगत्का विस्तार होता है, अरु बाहर जो सूर्य आदिक भासता है, सो भी चित्तके अंतर स्थित है, जैसे फूल खिलता है, तिसके अंतरकी सुगंधि बाहर भासती है, अरु वस्तुते न कछु अंतर है, न बाहिर है, जैसा किंचन होता है, तैसाही चैत्यताकरि फुरता है, तैसे वही सत्ता जगतरूप होईकरि भासती है, जगत् सब आत्मरूप है, और न कोऊ सत्य है न असत्य है, एक आत्मसत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, तिनको सदा ऐसेही भासता है ॥ हे रामजी ! जिसके अंतर शांति है, तिसको सब जगत् शांति रूप है!

अरु जिसका अंतर देहाभिमानविषे स्थितहै, सोनाशरूप होताहै, अरु भयको प्राप्तहोताहै, किसी ओरते शांति उसको प्राप्त नहीं होती, स्वर्ग पृथ्वीलोक, पाताल, वायु, आकाश, पर्वत, नदियां, देश, काल सबको प्रलयकालकी अग्निवत् जलता देखताहै; जिसके अंतर ताप होता है, तिसको सब जगत् तपता भासता है, आत्मज्ञानीको शांतरूप भासता है,जैसे अंधको सब जगत् तमरूप भासता है, अरु नेत्रोंवालेको सब जगत् प्रकाशरूप भासता है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषको आत्मपदविषे प्रतीति भई है,अरु इंद्रियोंकेसाथ कर्म भी करता है, परंतु हर्ष शोकके वश नहीं होता, सो समाहितचित्त कहाता है, जो पुरुष सबको आत्मा देखता है, चित्तको चिंतवता नहीं, अरु भविष्यत्की इच्छा नहीं करता, वर्त्तमान विषे रागदोषते रहित होइकरि विचरता है, सो समाहितचित्त कहाता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष जगत्की पूर्वापर गतिको देखिकरि हँसता है अरु शमपदविषे स्थित होता है, किसीविषे ममता नहीं करता, सो समाहितचित्त कहाता है, अरु जो पुरुष अहंममताते रहित है, अरु जगत्की विभागकलनाते रहित है, चेतन अचेतनभाव जिसको नहीं फुरता सो पुरुष सत्य है; अरु आकाशकी नाईं स्वच्छ निर्मल है, राग दोष क्रोध विकारोंते काष्ठ लोष्ट समान हो रहता है, अरु सब भूतोंको अपनेसमान देखता है, अरु औरके द्रव्यको देखिकरि दृष्टि नहीं करता, स्वभावहीकरि नहीं चाहता, कछु द्वंद्वके भय करि नहीं त्यागता, ऐसे जो देखता है, अरु अहंकारते रहित होता है, जगत्के न सत्यभावको देखता है, न असत्यभावको देखता है, न ज्ञानको देखता है, न अज्ञानको देखता है, न जड़ देखता है, न चेतन देखता है, केवल अद्वैततत्त्व देखता है, सो महाशांत पदविषे स्थित है, सो उठि खड़ा होवै अथवा बैठा रहै, उदय होवै, अथवा अस्त होवै, बड़े भोगोंविषे रहै, अथवा वनविषे जाय बैठै, अथवा मद्यपानकरि उन्मत्त होवै अरु नृत्य करै, अरु गयादिक तीर्थोंविषे निवास करै, अथवा कंदराविषे जाइ निवास करै, शरीरको अगर चंदनका लेपन करै, अथवा चीकड़केसाथ लपेटै अथवा देह अबहीं गिरै, अथवा कल्पपर्यंत रहै, कछु कदाचित् भी तिस पुरुषको कलंक नहीं लगता, जैसे स्वर्णको चीकड़के

मिलापका दोष नहीं लगता; तैसे ज्ञानवान्को कर्तृत्वका दोष नहीं लगता ॥ हे रामजी ! इस संवित्को अहंताही कलंक है, सो महापुरुष अहंकारते रहित है, ताते स्पर्श नहीं होता, जैसे सीपीको रूपेका आभास नहीं स्पर्श करता तैसे ज्ञानवान्को क्रिया स्पर्शनहीं करती ॥ हे रामजी ! अहंताही करिकै यह दीन होता है, जब अहंता इसको फुरती है, तब अनेक प्रकारके दुःख सुख देखता है, परंपरा जन्मोंको देखता है, अरु भयको प्राप्त होता है, जैसे किसीको जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु भय पाता है, जब भलीप्रकार दीपकके प्रकाशकरि देखता है, तब सर्पभय निवृत्त होता है, तैसे अहंताकारि यह दुःख पाता है, अहंताके शांत हुएते शांतिवान् होता है ॥ हे रामजी ज्ञानवान् जो कछु कर्म करता है, खाता पीता लेता देता हवन करता है; तिसविषे अहंताका अभिमान नहीं करता, ताते करनेविषे तिसका कछु अर्थ सिद्ध नहीं होता, अरु जो नहीं करता तिसविषे कछु अभिमान नहीं, ताते करनेते उसकी हानि कछु नहीं होती, अपने स्वभावविषेस्थिति है, जगत्को द्वैतभावकरि नहीं देखता, सर्व आत्मभावकरि देखता है, ताते कर्म स्पर्श नहीं करता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे ध्यानविचारोनाम एकपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५१ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! चित्त आदिक जो जगत् है, सो वास्तव आत्माते भिन्न कछु नहीं, आत्मारूपी मिर्च है, तिसविषे चित्त अहंतारूपी देश काल तीक्ष्णता भिन्न नहीं, जैसे इक्षुते मधुरता भिन्न नहीं, तैसे आत्माते जगत् भिन्न नहीं, जैसे पत्थरविषे कठोरता है, तैसे आत्माविषे जगत है, जैसे पर्वतविषे जड़ता होती है, तैसे आत्माविषे अहंता होती है, जैसे जलविषे द्रवता होती है, तैसे आत्माविषे अहंता आदिक होती है, जैसे फूल फल टास वृक्षते भिन्न नहीं होते, तैसे आत्माविषे अहंता आदिक अभेद होते , जैसे तीक्ष्णता मिर्चते भिन्न नहीं तैसे चित्त अहंतारूपी देश कालहैं आत्माते भिन्न नहीं, जैसे अग्नि विषे उष्णता होती है, बर्फविषे शीतलता होती है, सूर्यविषे प्रकाश होता है, गुड़विषे मधुरता है, तैसे आत्माविषे जगत् होता है, जैसे अमृतविषे स्वादवेदना होती है, तैसे आत्माविषे देशकाल वेदना होती है ॥ हे रामजी ! जैसे मणिविषे प्रकाश होता है, तैसे आत्माविषे अहंता

होती है, जैसे जलते तरंग भिन्न नहीं होता, तैसे आत्माते अहंता भिन्न आदिक नहीं होते, जेता कछु जगत् भासता है सो आत्मतत्त्वका प्रकाश है, सो आत्मा अनंत है, सर्वाविषे पूर्ण है, एकही ईश्वरभावविषे स्थित है, महाघनशिलाकी नाईं स्थित है, तिसते भिन्न कछु नहीं, जैसे आकाश अपनेभावविषे स्थित है, तैसे सत्य केवल आत्माविषे स्थित है, अपने आपकरि निर्वेद है, अरु वेदना भी तिसते भिन्न कछु नहीं, जैसे जलही तरंगरूप हो भासता है, तैसे आत्मा वेदनरूप हो भासता है, जैसे जलविषे द्रवता भासती है, अरु पवनविषे चलना भासता है, तैसे ज्ञानरूपआत्माविषे अहंतारूप देश काल जगत् भासता है ॥ हे रामजी ! जीवोंका जीवना ज्ञानकरि होता है, अरु ज्ञानसत्ताका जीवना चेतनकरि होता है, तैसे चिन्मात्र अरुजीवोंविषे रंचक मात्र भी कछु भेद नहीं, जैसे ज्ञान चेतनसत्ता अरु जीवविषे भेद नहीं तेसे ज्ञाता अरु जगतविषे भेद कछु नहीं एकही अखंड सत्ता ज्योंकी त्यों स्थित है ॥ हे रामजी! सर्व सत्ता एक अज अनादि अरु आदि अंत मध्यते रहित प्रकाशरूप है, चिन्मात्र अद्वैततत्त्व अपने आपविषे स्थित है, अशब्द है, तिसविषे वाणी प्रवेश नहीं कर सकती अरु जेते कछु वाक्य हैं, सो तिसके जतावनेनिमित्त कहे हैं, वास्तवते द्वैत वस्तु कछु नहीं, एक आत्मतत्त्वको अपने हृदयविषे धारिकरि स्थित होहु ॥ इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणे भेदनिरासवर्णनं नाम द्विपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! एक आगे पुरातन इतिहास हुआ, तिसको ऋषीश्वर कहते हैं; सो तू सुन ॥ क्रांत देशका राजा सुरघ होता भया, तिसका एक वृत्तांत है, सो विस्मयका उपजावनेहारा है ॥ हे रामजी ! उत्तर दिशाविषे पृथ्वी है, तहां सुंदर सुगंधता है, मानो कपूरकरिलीपी हुई है, मानो सदाशिवके हंस आय स्थित हुए हैं, हिमालयके शिखरऊपर कैलासपर्वत है, सो सब पर्वतोंते उत्तम है, अरु उज्ज्वल श्वेत है, सो रुद्रके रहनेका स्थान है, तहां कल्पवृक्ष अरु गंगाका प्रवाह चलता है, और भी बड़ी नदी चलती हैं, अरु कमलोंसहित ताल बहुत महासुंदर स्थित हैं,जिसमें मृग पक्षी बहुत हैं, तिस हिमालयके तले स्वर्णवत् जटावाले क्रांत रहते हैं, जैसे वृक्षके मूलविषे पिपीलिका रहती हैं, तैसे पर्वतके आश्रय क्रांत देशके जीव रहते हैं, तिस क्रांत देशका राजा सुरघ होता भया है, कैसा

राजा मानो प्रत्यक्ष लक्ष्मीमूर्तिधारी भुजाविषे है, वेगवान् ऐसा मानो पवनकी मूर्त्ति है, अरु वैराग्यवान् ऐसा मानो जनेंद्र है, अरु बुद्धिवान् ऐसा मानो बृहस्पति, अरु कवि ऐसा मानो शुक्र है, अरु राजा ऐसा मानो इंद्र, अरु धनी ऐसा मानो कुबेर, ऐसा राजा होइकरि राज्यकरता भया, भली प्रकार प्रजाकी पालना करै, जो भले मार्गविषे वर्त्तें तिनकी रक्षा करै, अरु जो पापकर्म चोरी आदिक करैं, तिनको दंड देवै, जैसा कर्म आनि प्राप्त होवै, तिसविषे रागदोषते रहित होइकरि व्यतीत करै, एक कालमें अपने स्थानविषे बैठा है कि, चित्तविषे विचार आनि उपजा, संशयरूपी वायुकरिकै तिसकी बुद्धिरूपी पक्षिणी डोलायमान भई है, वडा अनर्थ है कि, मैं जीवोंको कष्ट देता हौं, ताते इसको धन देउं, अरु कष्ट न देउं जैसे तिलोंको तेली पेरता है, तैसे मैं पापियोंको कष्ट देता हौं; अरु दुष्टोंको कष्ट दियेविना राज्य नहीं चलता जैसे जलविना नदीका प्रवाह नहीं चलता, तैसे दुष्टोंको कष्ट दियेविना राज्य नहीं चलता, अरु जब दंड देता हौं तब दुःख पाते हैं, मैं क्या करौं दोनों बातोंविषे कष्ट है ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारविषे राजा भ्रमता है, तब एक दिन तिसके गृहविषे मांडव्य मुनि आनि प्राप्त भया, जैसे इंद्रके गृहविषे नारद आवै तैसे आया, तब राजा भलीप्रकार तिसका पूजन करता भया, अरु संदेहवान होइकरि संशयरूपी कुत्सित वृक्षके नाशकर्त्ता कुहाडे सर्ववेत्तासों पूछता भया, ॥ सुरघ उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व धर्मगत तुम्हारे आवनेकरि मैं बडे आनंदको प्राप्त भया हौं जैसे वसंतऋतुकरि पृथ्वी प्रफुल्लित होती है तैसे प्रफुल्लित भया हौं, मैं भी अब आपको पुण्यवान् जानत भया हौं कि, मैं भी पुण्यवानोंविषे प्रसिद्ध होऊंगा, काहेते जो तुम मेरे गृहविषे आये हौ, जैसे सूर्यके उदय हुएते प्रकाश हो आता है, तैसे मैं तुम्हारे दर्शनकरि प्रसन्न भया हौं ॥ हे भगवन् ! मुझको संशय है, तिसके निवारणेको योग्य हौ, जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे तुमकरि मेरा संशय निवृत्त हो जावैगा, जो कोऊ महापुरुषोंका संग करता है, तिसका संशय अवश्य निवृत्त हो जाता है, अरु संशय परम दुःखोंका कारण है, ताते मेरे संशयको तुम दूर करौ, सो मुझे यह संशय है कि, जो कोऊ दुष्ट कर्म करता है, तिसको मैं दंड देता हौं, अरु जब उसको दुःखी

देखता हौं, तब मुझको दया उपजती है, जैसे सिंहके नख हस्तीको खैंचते हैं, तैसे यह संशय मुझको खैंचता है, ताते यही उपाय कहौ, जिसकरि मुझको समता प्राप्त होवै, जैसे सूर्यकी किरणैं सब ठौरविषे सम होती हैं, तैसे इष्ट अनिष्टविषे मैं सम होऊं कृपाकरि मुझको कहौ ॥ मांडव्य उवाच ॥ हे राजन् ! यह तौ बहुत सुगम है, अरु अपने आधीन है, आपहीकरि सिद्ध होता है, अरु अपनेही गृहविषे है ॥ हे राजन् ! सब उपाधि मनविषे उठती हैं, सो मन तुच्छ है, विचार कियेते निवृत्त हो जाता है, जैसे उष्णताकरि वर्फ जलमय हो जाता है, तैसे विचार कियेते मनभाव लीन हो जाता है, तब ताप भी निवृत्त हो जाता है, जैसे शरत्कालके आयेते कुहिड नष्ट हो जाती है, तैसे विचार कियेते मनभाव नष्ट हो जाता है, सो विचार इसप्रकार कि, मैं कौन हौं, अरु इंद्रियां क्या हैं, अरु जगत् क्या है, जन्मरण किसको कहते हैं, इस विचारकरि जब तू अपने स्वभावविषे स्थित होवैगा तब तुझको हर्ष शोक अरु क्रोध राग द्वेष चलायमान न कर सकैगा, जैसे वायुकरि पर्वत चलायमान नहीं होता, तैसे तू अचल रहैगा ॥ हे राजन् ! जब आत्मबोध होवैगा तब मन अपने मनभावको त्यागि देवैगा, तू अचल संतापते रहित अपने स्वरूपको प्राप्त होवैगा, जैसे तरंगभाव मिटनेकरि जल निर्मल हो जाता है, तैसे तू अचल होवैगा, मन धर्मभी रहैगा, परंतु मध्यसों अज्ञान नष्टहो जावैगा आत्मसत्ता भाव होवैगा, जैसे काल वही रहता है, परंतु ऋतु और हो जाता है तैसे मन वही होवैगा, परंतु स्वभाव और हो जावैगा, अरु तेरे टहलुए प्रजा भी साधु हो जावैंगे, तेरी आज्ञामें वर्त्तैंगे, अरु तुझको देख प्रसन्न हो जावैंगे ॥ हे राजन् ! जब तू विवेकरूपी दीपकसे आत्मरूपी मणि पावैगा, तब तेरी बडाई सुमेरु अरु समुद्र अरु आकाशते भी अधिक होवैगी, जब तुझको विवेकसों आत्ममहत्त्वताका प्रकाश होवैगा, तब तू संसारकी तुच्छ वृत्तिविषे न डूबैगा, जैसे गोपदके जलविषे हस्ती नहीं डूबता, तैसे तू रागद्वेषविषे न डूबैगा, जिसको देहविषे अभिमान है, अरु चित्तविषे वासना है, सो तुच्छ संसारकी वृत्तिविषे डूबते हैं, ताते जेता कछु अनातमभाव दृश्य है, तिसका त्याग करि पाछे जो शेष रहै, सो परमतत्त्व आत्मा है ॥ हे राजन् ! जो कछु सत्य वस्तु है, तिसको हृदयविषे

धर, अरु जो असत्य है तिसका त्याग कर, जैसे तबलग कलरकारि सोनार धोता है, जबलग स्वर्ण नहीं निकसता, जब सुवर्ण निकसता है, तब धोनेका त्याग करता है, तैसे तबलग आत्मविचार कर्तव्य है, जबलग आत्माका साक्षात्कार नहीं भया, जब आत्मतत्त्वका साक्षात्कार होता है तब विचारसाथ प्रयोजन नहीं रहता ॥ हे राजन्! सबविषे सब प्रकार सब काल सब आत्माकी भावना कर अथवा जेता कछु दृश्यभाव है, सो सब त्यागिकारि जो शेष रहैगा सो तुझको भासि आवैगा, जबलग सर्व दृश्यका त्याग न करैगा, तबलग आत्मपदका लाभ न होवैगा सर्व दृश्यके त्यागते आत्मपद भासैगा ॥ हे राजन्! किसी वस्तुके पानेका यत्न करता है, तौ औरका त्याग कारि उसका यत्न करिये तौ प्राप्त होता है, तौ आत्मतत्त्व अनन्य होइकारि चित्तविना कैसे प्राप्त होवैगा, जब संपूर्ण अपना यत्न एकही ओर लगता है, तब तिस पदकी प्राप्ति होती है, ताते आत्मपद पावनेनिमित्त सब दृश्यका त्याग कर, सबके त्याग कियेते जो शेष रहै, सो परमपद है ॥ हे राजन्! सबके त्याग कियेते पाछे जो सत्ता अधिष्ठान रहैगा सो तुझको आत्मभावकारि प्राप्त होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतमांडव्योपदेशो नाम त्रिपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५३ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार कहकारि मांडव्यमुनि अपने स्थानको गया, तब सुरघराजा एकांतमें बैठिकारि विचार करने लगा कि, मैं कौन हौं, न मैं सुमेरु हौं, न मेरा सुमेरु है, न मैं जगत् हौं, न मेरा जगत् है, न मैं पृथ्वी हौं, न मेरी पृथ्वी है, न मैं क्रांत मंडल हौं, न मेरा क्रांत मंडल है, काहेते जो अपने भावविषे स्थित है, मेरे भावकारि तौ यह स्थित नहीं, जो मैं न होऊं तौ भी यह ज्योंकी त्यों स्थित हैं, तौ मेरे कैसे होवैं, अरु मैं इनका कैसे होऊं, न मैं नगर हौं, न मेरा नगर है, हस्ती घोडा मंदिर धन स्त्री पुत्रादिक जेते कछु पदार्थ हैं, सो न मेरे हैं, न मैं इनका हौं, इनविषे आसक्त होना वृथा है, इनविषे संबंध मेरा कछु नहीं, जेते कछु भोगोंके समूह हैं, न मैं हौं, न यह मेरे हैं, टहलुए भृत्य कलत्र सब अपने भावकारि सिद्ध हैं, मेरा इनकेसाथ संबंध कछु नहीं, न मैं राजा हौं, न मेरा राज्य है, मैं एकाएकी शरीरमात्र हौं, इनविषे मैं ममत्व करता हौं, सो वृथा है, अरु शरीरविषे जो मैं अहंकर्त्ता हौं, सो भी व्यर्थ

है, काहेते जो हाथ पाँव आदिकका स्वरूप है, सो भिन्न है, न यह मैं हौं, न यह मेरे हैं, इनविषे मेरा शब्द कछु नहीं, रक्त मांस हाड़ आदिकरूप है, सो मैं नहीं, यह जड़ है, मैं चेतन हौं, इनकेसाथ मेरा कैसे संबंध होवे ? जैसे जलका स्पर्श कमलको कछु नहीं, तैसे इनका स्पर्श मुझको नहीं न मैं कर्मइंद्रियां हौं, न मेरी कर्मइंद्रियां हैं, यह जड है, मैं चैतन्य हौं, न मैं ज्ञानइंद्रियां हौं, न मेरी ज्ञानइंद्रियां हैं, इनते परे मन है, सो भी मैं नहीं, यह जड है, मन बुद्धि चित्त अहंकार यह सब अनात्मारूप है, मेरा इनकेसाथ अविद्याकरि संबंध है, भ्रांतिकरिकै मैं इनको अपना स्वरूप जानता था, यह सब भूतोंका कार्य है, इनके पाछे चेतन जीव है, सो चेतन दृश्यको चेतनेवाला है, सो चेतन चेतना मैं नहीं, इस सर्वते शेष अचैत्य चिन्मात्र है, सो सत्ता मेरा स्वरूप है, वड़ा कल्याण भया, जो मैं अपना आप पाया हौं, अव मैं जागा हौं, अपना स्वरूप पाया हौं, वड़ा आश्चर्य है, जो मैं वृथा देहादिकको आप जान शोक मोहको प्राप्त होता था, मैं तौ एक निर्विकल्प चेतन हौं, अरु अनंत आत्मा हौं, सवविषे व्याप रहा हौं, ब्रह्मरूप आत्मा हौं, इंद्रियोंते आदि जेते भूतगण हैं, सो सबका आत्मा हौं, यह भगवान् आत्मा सवके अंतर व्याप्या है, जैसे सबके अंतर तत्त्व होते हैं, तैसे यह चेतनरूप सर्व भावको भरिरहा है, अरु सर्व भावोंविषे व्यापि रहा है, भैरव अरु उदय अस्तभाव आदि विकारोंते रहित है, ब्रह्माते आदि तृणपर्यंत सवका आत्मा यही है, सव प्रकाशोंका दीपक प्रकाशनेहारा है, अरु संसाररूपी मोतियोंके परोवनेहारा तागा यही है, सबका कारण कार्य यही है, अरु साकारते रहित है, शरीर आदिक सव इसकी सत्ताकरि उपलब्ध होते हैं, शरीररूपी रथ इसीकरि चलता है, अरु वास्तवते शरीरादिक कछु वस्तु नहीं, यह जगत चित्तरूपी नटकी नृत्य लीलारूप है, चित्तविषे जगत् फुरता है, वास्तव और वस्तु कछु नहीं, वड़ा कष्ट है, मैं वृथा संग्रह असंग्रहकी चिंता करता था, यह गुणोंका प्रवाह हैं, इसविषे मैं क्यों शोकवान् होता था, वड़ा आश्चर्य है, जो असत्य भ्रम सत्य हो मुझको दिखता था, अव मैं निश्चयकरिकै समप्रबोध हुआ हौं, दुर्दृष्टि मेरी दूर भई, दृष्टिकी जो अलख दृष्टि है, सो मैंने देखी है, अरु जो कछु पावने योग्य था, सो मैं पाया हौं, अचैत्य

चिन्मात्र तत्त्वको प्राप्त भया हौं, जेता कछु दृश्य है, तिसको मैंने स्वरूपते देखा है, अरु अहं मम दुःख मेरा नष्ट भया है, मैं चिदानंदपूर्ण आत्मा हौं, नित्य शुद्ध अनंत आत्मा अपने आपविषे स्थित हौं, अरु ग्रहण क्या अरु त्याग क्या ? यह क्लेश कोऊ नहीं, न कोऊ दुःख है, न सुख है, सर्व ब्रह्म है, और दूसरी वस्तु कछु नहीं राग किसका करौं ? अरु द्वेष किसका करौं ? मैं मिथ्या मूढताको प्राप्त होइकरि दुःखी होता था, अब कल्याण हुआ, मैं अमूढ होइकरि अपने आप स्वभावविषे स्थित भया हौं, ऐसे आत्माके साक्षात्कारविना दुःखी था, इसके देखेते अब किसका शोक करौं अरु कैसे मोहको प्राप्त होहुँ, अब मैं क्या देखौं, अरु क्या करौं, कहां स्थित होऊं यह सब जगत् आत्माके प्रकाशकरि है, अरु सब आत्मारूप है ॥ हे अतत्त्वरूप ! अर्थ यह कि जिसविषे तत्त्वोंकी उपाधि कछु नहीं तेरी दृष्टि निष्कलंक है, मैं अब सम्यक् ज्ञानवान् हुआ हौं, मेरा मुझहीको नमस्कार है, मैं अनंत आत्मा हौं, अनुभवरूप हौं, भ्रमते रहित निष्कलंक सब इच्छाते रहित सुषुप्तिकी नाईं शांतरूप हौं, अचैत्य चिन्मात्र हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतवर्णनं नाम चतुष्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५४ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! क्रांत जो स्वर्णरूप देश है, तिसका राजा परमानंदको प्राप्त भया, इसप्रकार विचार अभ्यासकरि ब्रह्मरूप हुआ, जैसे गाधिका पुत्र विश्वामित्र तपस्या करिकै उसी शरीरसाथ क्षत्रियते ब्राह्मण हुआ, तैसे राजा सुरघ अभ्यास करिकै ब्रह्मरूप ब्रह्मबोध हुआ, अनेक राज्यके कार्योंको करत भया, जैसे सूर्य इष्ट अनिष्टविषे सम है, विगतज्वर होइकरि दिनोंको व्यतीत करता है, तैसे रागरोषते रहित राज्यका कार्य करत भया, जैसे जल ऊंची नीची ठौरविषे गमन करता है, अपना जल भाव नहीं त्यागता सम रहता है, तैसे राजा हर्षशोकते रहित होइकरि राज्यकार्य करत भया, अरु स्वभावको न त्यागत भया आत्मविचारको धार सुषुप्तिकी नाईं वृत्ति हो गई संसारभावको फुरना कछु न फुरै, जैसे वायुते रहित दीपक प्रकाशता है, तैसे शुद्ध प्रकाशको धारता भया ॥ हे रामजी ! दया करता भी दृष्ट आवै, परंतु उसकी दृष्टिविषे कछु दया नहीं, अरु दयाते रहित भी औरोंको दृष्ट आवै, परंतु उसकी दृष्टिविषे निर्दयता नहीं,

न कछु सुख, न दुःख, न अर्थ, न अनर्थ,सब पदार्थोंविषे सम एक भाव आतमा देखै अरु अंतरते पूर्णमासीके चंद्रमावत् शीतल रहै, अरु आत्माका किंचनरूप जगत्को जानत भया, सुखदुःखका भाव शांत हो गया जैसे सूर्यके उदय हुएते अंधकार नष्ट हो जाताहै, तैसे सुखदुःख नष्ट हो गए, अरु शोक विलास कर्त्ता, मत्त होता, स्थित होता, चलता, श्वास लेता,अरु पांचों विषयोंको ग्रहण कर्त्ता रागरोषको प्राप्त न भया, जैसे पत्थरविषे फुरना कछु नहीं फुरता, तैसे उसको कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभिमान कछु न फुरा, सब कर्तव्यको कर्त्ता भी निःसंग रहा, जैसे जलविषे कमल अलेप रहता है, तैसे राज्यविषे निर्लेप होइकरि जीवन्मुक्त हुआ बहुत काल वितावता भया, तिसके अनंतर शरीरका त्याग किया जैसे बर्फका कणका सूर्यके तेजकरि जलमय हो जाता है, तैसे शरीर अपने भावको त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे लीन हो गया, जैसे नदी समुद्रविषे लीन होती है, बहुरि इतर नहीं भासती, तैसे सुरघ अपने भावको त्यागिकरि उज्वल भावको प्राप्त भया, कलनारूपी मलको त्यागिकरि निर्मल ब्रह्म होता भया, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल चिदानन्द ज्योतिर्भावको प्राप्त भया, जैसे घट फूटेते घटाकाश महाकाश होजाता है, तैसे पूर्ण ब्रह्म चिदानंद तत्त्व होता भया ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघवृत्तांतसमाप्तिर्नाम पंचपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ९९ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तुम भी इसी दृष्टिको आश्रय करिकै विचारौ,तब सब भय मिटि जावैगा,जैसे घोर तमविषे बालक भयको पाता है, सो जब दीपकका प्रकाश होता है, तब निर्भय होता है, तैसे संसाररूपी घोर तमविषे आया पुरुष दुःख पाता है,जब ज्ञानरूपी दीपक उदय होवै, तब निर्भय हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब आत्मविचारविषे कछु भी चित्त विश्राम पाता है, तब तिस विश्रामको आश्रयकरि संसारसमुद्रते निकसि जाता है, जैसे टोएविषे गिरै ताको तृणका बूटा हाथ लगै, तौ भी तिसके आश्रयकरि निकसि आता है ॥ हे राम ! यह पावन दृष्टि मैंने तुझको कही है, इसको चित्तविषे विचार, परस्पर मिलिकरि उदाहरणसाथ अभ्यासकरि नित्य एक समाधिविषे स्थित होहु, अरु पृथ्वीका भूषण होइकरि लोकोंविषे विचरौ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! एक समाधि किसको

कहिये, अरु कैसे होती है, सो कहौ, और मेरा चित्त फुरता है सो स्थित होवै, जैसे वायुकरि मोरका पुच्छ हलता है, तैसे चंचलरूप चित्त सदा फुरता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जब सुरघ प्रबुद्ध हुआ था, तब तिसका संवाद पर्णाद राजा ऋषिसों हुआ था, महाअद्भुत समाधि है, तिसको सुनि विकार तू तौ चरि एक समाधिवान् होवैगा, जो इनने मिलिकरि परस्पर चर्चा करी है, सो सुन ॥ हे रामजी ! पारश देशका राजा महावीर्यवान् था, अरु परघ तिसका नाम था सो सुरघका मित्र था, जैसे नंदनवनविषे कामदेव अरु वसंतऋतुका मित्रभाव होता है, तैसे सुरघ अरु परघका मित्रभाव होत भया, एककालमें परघके देशविषे प्रलयकालविना प्रलयकालकी नाईं होत भया, तिसकरि सब जीव दुःख पाने लगे प्रजाके जीवोंकी जो पापबुद्धि थी, तिसीका फल आनि लगा, महादुर्भिक्ष पड़ा, कई क्षुधाकारि मृतक भए, कई अग्निकरि जलि मरे, कई झगडा करि मृतक भए, प्रजाके लोक बहुत दुःखकोप्राप्त भए, अरु राजाको दुःख कछु न प्राप्त भया, जब प्रजा बहुत दुःख पाई, तब राजा प्रजाको दुःखी देखत भया, अरु प्रजाके दुःख निवारणेको समर्थ न भया, तिसकरि प्रजा अरु कुटुंबको त्यागि गया, जैसे वनको अग्नि लगेते पक्षी त्यागि जाते हैं, जैसे ग्रामको अग्नि लगै तौ पेंढाई त्यागि जाते हैं, तब एक पहाड़की कंदराविषे तप करने लगा, ऐसा तप करने लगा, जैसा जिनेंद्रने तप किया था, तिस कंदराविषे फल न पावै सूखे पान ले खावै, जैसे अग्नि सूखे पानको भक्षण करती है, तैसे सूखे पान खावै, तिस करि तिसका नाम पर्णाद होत भया, वह तौ एकांत जाइकरि तप करने लगा, परंतु द्वीपविषे तिसका नाम पर्णाद प्रसिद्ध भया, अरु तप यही कि, चित्तकी वृत्तिके आत्मपदविषे जोड़ता भया, सहस्र वर्षपर्यंत तप किया, तब अभ्यासकरि चित्त स्थित भयेते केवल ज्ञानस्वरूप आत्मतत्त्व हृदयकी निर्मलताकरि प्रकाशि आया, तब सब तप्तता मिटि गई, रागदोषते रहित निष्क्रिय आत्मदर्शी जीवन्मुक्त होइकरि विचरने लगा, रागदोषते रहित हुआ, त्रिलोकीरूपी मढीविषे विचरै, सिद्धोंके स्थानोंविषे जावै सरोवरोंविषे कमलोंके निकट भँवरा हंसों साथ जाय मिलताहै, तैसे सिद्धोंसाथ राजा जाय मिलै, ऐसे फिरता फिरता क्रांत देशविषे सुरघके स्थानोंकोजाय प्राप्त भया, तब सुरघ पूर्व

मित्रको देखिकरि उठि खड़ा भया, परस्पर कंठ लगाइकरि मिले, अरु परस्पर भावकरिकै एक आसनपर चंद्रमा अरु सूर्य जैसे बैठ गए, अरु आपसमें कुशल पूछने लगे, प्रथम परघ बोलत भया ॥परघ उवाच ॥ हे मित्र ! तेरे दर्शनते परमानंदको प्राप्त भया हौं, जैसे कोई चंद्रमाके मंडलविषे जाय आनंदमान् होवै, तैसे आनंदमान् हुआ हौं, बहुत कालका जो वियोग होता है, तब बहुत प्रीति बढ़ीती है जैसे वृक्षको ऊपरते काटेते बहुरि बढ़ता है, तैसे प्रीति बढ़ती है॥हे साधो ! अब मैं भी ज्ञानवान् हुआ अरु तूभी मांडव्य मुनि अरु आत्माके प्रसादकरि ज्ञानको प्राप्त भया है ॥ हे राजन् ! मेरा अभीष्ट प्रश्न है कि, अब दुःखोंते क्यों मुक्त भया है अरु विश्रामको क्यों प्राप्त भया है अरु आत्मपद पानेकी बडाई मेरु आदिकते भी ऊंची है, तिसको तू क्यों प्राप्त भया है परम कल्याणवान् आत्मारामी क्यों हुआ है ? अरु तू रागद्वेष मलते क्यों रहित हुआहै जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है; तैसे निर्मल क्यों हुआ है ? अरु सब कार्योंको कर्त्ता समभावविषे क्यों रहता है ? अरु आधि व्याधि ताप तेरे क्यों दूर भये हैं ? अरु तेरी प्रजा भी विगतज्वर क्यों भई है ? अरु धन राज्य मालविषे भी कुशल क्यों है ? जैसे चंद्रमाकी किरणोंकरि शीतलता पसर रहती है, तैसे तेरा यश दशों दिशामें क्यों पसरि रहा है ? अरु तेरा यश ग्रामवासी क्षेत्रोंविषे अरु कुडिया क्यों गावती हैं ? हे राजन् ! प्रजा टहलुए पुत्र कलत्र सब आधिव्याधिते क्यों रहित हुए हैं ? अरु आपातारमणीय जो विषय पदार्थ हैं, तिनविषे अब तेरी प्रीति क्यों नहीं है ? अरु तृष्णारूपी सर्पिणी तुझको अब क्यों नहीं डसती ! हे राजन् ! तुम्हारी हमारी मित्राई हुई थी, सो समय पाइकरि तुम कहां रहे, हम कहाँ रहे अब बहुरि आनि हुए हैं, बड़ा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति जानी नहीं जाती, सुखते दुःख हो जाता है, अरु दुःख गएते सुख हो जाता है, संसारकी दिशा आगमापायी है, संयोगका वियोग होता है वियोगका संयोग होता है, तैसे तुम्हारा हमारा संयोगका वियोग हो गया था, बहुरि वियोगका संयोग आनि हुआ है, बड़ा आश्चर्य है, ईश्वरकी नीति अद्भुतरूप है ॥ सुरघ उवाच ॥ हे देव ! परमात्मा देवकी नीतिको जानि नहीं सकते, सो महागंभीर विस्मयको देनेहारी अरु दुर्ज्ञात है, तुम्हारा हमारा वियोग हुआ तब दूरते दूर जाय पड़े, तुम कहां

अरु हम कहां वहुरि आनि इकट्ठे भये हैं, जो देवकी नीति आश्चर्यरूप है, तुम जो मुझको कुशल पूछा, सो तुम्हारा आवनाही जो पुण्य है, तिसकरि मैं परम पावन हुआ हौं तुम्हारे दर्शनकरि पाप सब नष्ट हो जाताहै, आज हमारे पुण्यका फल लगा है जो तुम्हारा दर्शन भया है, अरु जेता कछु यश संपदा है, सो सब आज प्राप्त भया है ॥ हे भगवन्! संतोंका जो आवना है, सो मधुर अमृतकी नांई है, जैसे अमृत झरनेते निकसता है, तैसे तुम्हारे दर्शनते अरु वचनोंकरि परमार्थरूपी अमृत स्रवता है, जिसको पाइकरि जीव निर्भयताको प्राप्त होते हैं, संतोंका मिलना परमपदके तुल्य है, सो हम परम शुद्धताको प्राप्त भए हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशम प्रकरणे सुरघपरघसमागमवर्णनं नाम षट्पंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! जब इसप्रकार पूर्व वृत्तांत कहा तब बहुरि परघ बोलत भया ॥ परघ उवाच ॥ हे राजन्! जो जो समाहित चित्त इस जगज्जालविषे कर्म करता है, सो सुखरूप होता है, अब संकल्पते रहित जो परम विश्राम अरु परम उपशम समाधि है, तिसविषे क्या स्थित हुआ है ॥ सुरघ उवाच ॥ हे भगवन्! तुमही कहौ कि, सब संकल्पते रहित परम उपशम समाधि किसको कहते हैं, अरु जो तुम मुझते पूछौ तौ श्रवण करौ, जो ज्ञानवान् महात्मा पुरुष हैं, सो तूष्णीं रहैं, अथवा व्यवहार करैं, वह असमाहितचित्त कदाचित नहीं होते ॥ हे साधो! नित्य प्रबुद्ध जिनका चित्त है, अरु जगत्के कार्य भी करते हैं, अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित हैं, तौ वह सर्वदा समाधिविषे स्थित हैं, अरु पद्मासन बांधिकरि बैठते हैं, ब्रह्मअंजली हाथविषे रखते हैं, अरु चित्त आत्मपदविषे स्थित नहीं होता, अरु विश्रांतिको नहीं पाता, उनको समाधि कहां, वह समाधि नहीं कहाती ॥ हे भगवन्! परमार्थ तत्त्वबोध है, सो सब आशारूपी तृणोंको जलावनेहारी अग्नि है, ऐसी निराशरूप जो समाधि है, सोई समाधि है, तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं ॥ हे साधो! जिसका चित्त समाहित अरु नित्य तृप्त है, सदा शांतरूप है, अरु यथाभूतार्थ है, अर्थ यह कि, यथार्थ ज्योंका त्यौं ज्ञान हुआहै, अरु तिसीविषे निश्चयहै, सो समाधि कहाती है, तूष्णीं होनेका नाम समाधि नहीं जिसके हृदयविषे संसाररूप सत्यताका क्षोभ नहीं, निरहंकार है, अरु अनउदयही उदय है, सो पुरुष समाधिविषे

कहाता है, ऐसा जो बुद्धिवान् है, सो मेरुते भी अधिक स्थित है ॥ हे साधो ! जो पुरुष निश्चित्त है, ग्रहणत्यागते जिसकी बुद्धि निवृत्त भई है, अरु पूर्ण आत्मतत्त्वही भासताहै, अरु व्यवहार भी करता दृष्ट आताहै, तौ भी तिसको समाधि कही है, जिसका चित्त एक क्षण भी आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, तिसकी अत्यंत समाधि हो जाती है, क्षणक्षण बढती जाती है, निवृत्त नहीं होती, जैसे अमृतके पान कियेते अमृतकी तृष्णा बढती जाती है, तैसे एक क्षणकी समाधि बढती जाती है, जैसे सूर्यके उदय हुएते सब किसीको दिन भासताहै, तैसे ज्ञानवान्को सब आत्मतत्त्व भासता है, इतर कदाचित् नहीं भासता है जैसे नदीका प्रवाह किसीते रोका नहीं जाता, तैसे ज्ञानवान्की आत्मदृष्टि किसीते रोकी नहीं जाती,जैसे कालकी गति कालको एक क्षण भी विस्मरण नहीं होती, तैसे ज्ञानवान्की आत्मदृष्टि विस्मरण नहीं होती, जैसे पवन चलते ठहरतेको अपना पवनभाव विस्मरण नहीं होता, तैसे ज्ञानवान्को चिन्मात्र तत्त्वका विस्मरण नहीं होता, जैसे सत् शब्दविना कोऊ पदार्थ सिद्ध नहीं होत., तैसे ज्ञानवान्को आत्माविना कोऊ पदार्थ नहीं भासता, जिस ओर ज्ञानवान्की दृष्टि जाती है, तहाँ अपना आप भासता है, जैसे दर्पणोंके मंदिरविषे सर्व ओर अपना मुख भासताहै, तैसे ज्ञानवान्को सर्व ओर अपना आपही भासता है, जैसे उष्णताविना अग्नि नहीं, शीतलता विना बर्फ नहीं, श्यामताविना काजर नहीं पायाजाता तैसे आत्माविना जगत् नहीं पायाजाता ॥ हे साधो ! जि[illegible]को आ[illegible]ते [illegible] पदार्थ कोई नहीं भासता, तिसको उत्थान कैसे होवै, सर्वदा मैं बोधरूप हौं, अरु सर्वदा निर्मल हौं, सर्व[illegible] सर्वात्मा स[illegible]र सर्वदा हौं [illegible]ते उत्थान मुझको कदाचित् नहीं, आत्माते भिन्न मुझको कोऊ नहीं भासता, सर्व प्रकार आत्मतत्त्व मुझको भासता [illegible] विचार[illegible] आत्मतत्त्व सर्वदा जानने योग्य है, सर्वदा और सर्वप्रकार आत्मा स्थित है, बहुरि समाधि अरु उत्थान कैसे होवै ? जि[illegible]ताते प[illegible]र्यकारणविषे विभागकलना न फुरती, अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित है, तिसको समाहित असमाहित क्या कहिये ? समाधि है, तिस[illegible] वास्तव कछु भेद नहीं, मिथ्या है, आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, द्वैतभेद कछु नहीं, तौ समाहित अस[illegible] सदा सुखी है, [illegible] इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे समाधिनिश्चयवर्णनं नाम सप्तपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५७ ॥ सुरघ उवाच ॥ न दृष्ट आवै, तौ भी ति[illegible] अब तू जागा है

अरु परमपदको प्राप्त भया है, अरु पूर्णमासीके चंद्रमावत् शीतल अंतःकरण भया है, अरु [illegible] नहीं करता, तैसे ज्ञान [illegible] भित भया है, अरु ब्रह्मलक्ष्मीकरि संपन्न परमानंदसों पूर्ण भया है, शीतल अरु स्निग्ध तेरा हृदयकमल वि[illegible]सारके इष्ट अनिष्ट [illegible] स्तृत गंभीरता तेरी मुझको प्रगट भासती है, अरु निर्मल शरत्कालके आकाशवत् तेरा हृदय भासता है, अहंका[illegible]सकते, जिम [illegible] नष्ट भया है ॥ हे राजन् ! अब तुझको सर्वत्र स्वस्थ अरु सर्वथा संतुष्टता है, अरु किसीविषे राग नहीं, वीतराग हो[illegible] जो पुरु[illegible] राजता है सार असारको तुझने भली प्रकार जाना है, अरु जानिकरि असार संसाररूपी समुद्रते पारको प्राप्त [illegible] है, [illegible] ॥ हे [illegible] को ज्योंका त्यों जानिकरि अखंड स्थिति पाई है, भाव अभाव पदार्थ दोनोंको तू जानत भया है, [illegible] सम [illegible], जैसे पदा[illegible] हैं, तिनते मुक्त भया है, मुदित शांत आशय हुआ है, इष्ट अनिष्ट ग्रहण त्याग तेरा निवृत्त भया है, राग द्वेष तृष्णारूपी [illegible] बादलोंते रहित निर्मल आकाशवत तू शोभता है, अरु अपने आपकरि तृप्त भया है, कछु इच्छा तुझको नहीं ॥ सुरघ उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! इस जगत्विषे ग्रहण करने योग्य वस्तु कोई नहीं जेते कछु दृश्य पदार्थ हैं, सो सब आभासरूप हैं, तौ किसको ग्रहण करिये अरु जो कहिये, ग्रहण करने योग्य नहीं तौ त्याग करिये, सो आभासरूप पदार्थोंका त्याग क्या करिये, अरु ग्रहण क्या करिये काहेते जो है नहीं, सब तुच्छ अतुच्छ पदार्थ हैं, जैसे सूर्यकी किरणोंविषे जल भासता है, सो जलभासका कौन अंग ग्रहण करिये, अरु कौन अंग त्याग करिये, तैसे यह जगत् भी है ॥ हे मुनीश्वर ! जगत्के तुच्छ पदार्थ हैं, एक अतुच्छ हैं, जो थोड़े कालविषे नष्ट हो जाते हैं, सो तुच्छ हैं, अरु चिरकालपर्यंत रहते हैं, सो अतुच्छ हैं, परंतु दोनों कालते उपजे हैं, अब मैं अकाल स्वरूपको देखा है, तब दोनों तुल्य हो गए हैं, बहुरि इच्छा किसकी करौं, जो है कछु नहीं ॥ हे मुनीश्वर ! जो रमणीय पदार्थ जानते हैं, तिसकी इच्छा करते हैं, सो त्रिलोकीविषे रमणीय पदार्थ कोऊ नहीं, सब तुच्छ नाशरूप हैं, अरु जीवोंको जो बड़े पदार्थ भासते हैं, सो अविचारकरि भासते हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध जेते इंद्रियोंके विषय हैं, सो सब असाररूप हैं, स्त्रीको बड़ा पदार्थ जानते हैं; सो देखने मात्र सुंदर है,

अंतरते रक्त मांस विष्ठा मूत्रका थैला बना हुआ है, इसविषे सार कछु नहीं, अरु पर्वत बड़े पदार्थ हैं, सो पत्थर बंटे हैं, अरु समुद्र है सो जल है, वनस्पती काष्ठ पत्र हैं, इनते आदि जो कछु पदार्थ हैं, सो आपातरमणीय हैं, सो विचारविना सुंदर भासते हैं, इनकी जो इच्छा करते हैं, सो अपने नाशके निमित्त करते हैं, जैसे पतंग दीपककी इच्छा करता है, सो अपने नाशके निमित्त करता है जैसे हरिण नाद श्रवणकी इच्छा करता है, सो नाशको प्राप्त होता है, तैसे जो विषयोंकी तृष्णा करते हैं सो अपने नाशको करते हैं,ताते विचारते रहित जो अज्ञानी है, सो पदार्थको रमणीय जानिकरि अपने नाशके निमित्त इच्छा करता है, अरु जो समदर्शी ज्ञानवान् हैं, सो अरमणीय जानिकरि किसी जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करते, जैसे सूर्य उदय हुएते अंधकारका अभाव होता है, ताते जब पदार्थोंका राग उठि गया, तब तृष्णा किसविषे रहै ॥ हे साधो! राग द्वेष इच्छा ग्रहण त्याग जेते कछु विकार हैं, तिन सबते रहित शुद्ध आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, बहुत कहनेकरि क्या है, जिस पुरुषके मनते वासना नष्ट हो गई है, सो उपशमवान् कल्याणमूर्त्ति परमपदको प्राप्त हुआ है, अरु संसारसमुद्रको तरि गया है ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सुरघपरघनिश्चयवर्णनं नाम अष्टपंचाशत्तमः सर्गः ॥ ५८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार सुरघ अरु परघ जगत्को भ्रमरूप विचारते भये, विचार करिकै परस्पर गुरु जानिकरि पूजते भये, बहुरि परघ चलता रहा ॥ हे रामजी! इसका परस्पर संवाद तुझको श्रवण कराया है, सो परमबोधका कारण है, इस विचारके क्रमकरि बोधकी प्राप्ति होती है, तीक्ष्ण बोधकरिकै जब विचार करैगा, तब अहंकाररूपी बादलका अभाव हो जावैगा, अरु शुद्ध हृदयरूपी आकाशविषे आत्मरूपी सूर्य प्रकाश हो जावैगा, ताते परमपदके लाभके निमित्त अहंकाररूपी बादलके अभावका यत्न करौ, सो आत्मा सत्य है, सब आनंदकी संपदा है, चिदाकाश है, तिसविषे स्थितिः पावैगा ॥ हे रामजी! जो पुरुष नित्य अंतर्मुखी अध्यात्ममय है, अरु नित्य चिदानंदविषे चित्तको जोड़ता है, सो सदा सुखी है, तिसको शोक कदाचित् नहीं होता, जो पुरुष आत्मपदविषे स्थित हुआ है; सो बड़े व्यवहार करै, अरु रागद्वेषसहित दृष्ट आवै, तौ भी तिसको कछु कलंक

प्राप्त नहीं होता, जैसे कमल जलविषे दृष्ट आता है, तौ भी ऊँचा रहता है, जल उसको स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्को व्यवहारका रागद्वेष अंतर स्पर्श नहीं करता ॥ हे रामजी ! जिसका अंतर मन शांत हुआ है, तिसको संसारके इष्ट अनिष्ट पदार्थ चलाय नहीं सकते, जैसे सिंहको मृग दुःख दे नहीं सकते, तैसे ज्ञानवान्को जगत्के पदार्थ दुःख नहीं दे सकते, जिस पुरुषको आत्मानंद प्राप्त भया है, तिसको विषयोंकी तृष्णा नहीं रहती, विषयों निमित्त दीन कदाचित् नहीं होता, जैसे जो पुरुष नंदनवनविषे स्थित भया है, सो कंकरेके वृक्षकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् जगत्के पदार्थकी इच्छा नहीं करता ॥ हे रामजी ! जिस जिस पुरुषने जगत्को अविद्यारूप जानिकारि त्याग किया है, तिसके चित्तको जगत्के पदार्थ दुःख दे नहीं सकते, जैसे विरक्तचित्त पुरुषकी स्त्री मारि जावै, तब उसको दुःख नहीं होता, सो ज्ञानवान्के चितविषे भोगोंकी दीनता नहीं उपजती, जैसे नंदनवनविषे कंटकका वृक्ष नहीं उपजता जिस पुरुषको आत्मबोध हुआ है, अरु संसारका कारण मोह निवृत्त भया है, सो जगत्के कार्यकर्त्ता दृष्ट आता है, परंतु उसको स्पर्श नहीं करता, जैसे आकाशविषे अंधकार दृष्ट आता है, परंतु आकाशको स्पर्श नहीं करता ॥ हे रामजी ! अविद्याके निवृत्तिका कारण विद्याहै, और किसी उपायतें निवृत्त नहीं होती, जैसे प्रकाशविना तम निवृत्त नहीं होता, तैसे विचारविना अविद्या निवृत्ति नहीं होती, अविचारका नाम अविद्याहै, अरु विचारका नाम विद्याहै, जब अविद्या नष्ट होवैगी, तब विषयभोग स्वाद न देवैंगे आत्मानंदकारि संतुष्टमान रहैगा ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्को विचारते इंद्रियोंके व्यवहार अंध नहीं कर सकते, जैसे जलविषे मच्छी रहती है, तिसको जल अंध नहीं कर सकता, और आप अंध रहता है, तैसे ज्ञानवान् व्यवहारविषे भी अंध नहीं होता और जीव अंध हो जाते हैं; जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होता है, तब अज्ञानरूपी रात्रि निवृत्त हो जाती है, अरु चित्त परमानंदको प्राप्त होताहै, अरु रागद्वेषरूपी निशाचर नष्ट हो जाता है, तब बहुरि मोहको प्राप्त नहीं होता जिसके हृदय आकाशविषे आत्मज्ञानरूपी सूर्य उदय हुआ है, तिसका जन्म अरु कुल सफल होताहै, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा अपने अमृतको पाइकरि अपनेविषे शीतल होताहै, तैसे जो पुरुष आत्मचिंतनाविषे अभ्यास

करता है, सो शांतिको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! बुद्धि भी वही है, श्रेष्ठ दिन भी वही, अरु मृत्युभी वही है, अरु शास्त्रभी वही है, जिस कारि संसारते वैराग्य उपजै अरु आत्मतत्त्वकी चिंतना उपजै, जब आत्मपदको पाता है, तब इसका सब क्लेश मिटि जाता है, अरु जिसको आत्म चिंतनाविषे रुचि नहीं, सो महाअभागी है, चिरपर्यंत कष्ट पावैगा ॥ जन्मरूपी जंगलका वृक्ष होवैगा ॥ हे रामजी ! जीवरूपी बलध है, अरु अनेक आशारूपी फांसियोंकारि बांधा है, अरु जरा अवस्थारूपी पत्थरों के मार्गकारिकै जर्जरी भाव होता है. भोगरूपी तलावडी गर्त्तविषे गिरा है कर्मरूपी भारकोलिये जन्मरूपी जंगलविषे भटकता हुआ कर्म चीकडविषे फँसा हुआ रागद्वेषरूपी मच्छरोंकारि दुःखी होता है, स्नेहरूपी रथको पकडि खैंचता है, अरु पुत्र स्त्रियादिककी ममतारूपी चीकडविषे गोते खाता है, अरु मोहसंसाररूपी मार्गविषे कर्मरूपी रथकेसाथ जोडता है, अरु ऊपरते अज्ञानरूपी तप्तताकारि जलता है, संतजन अरु सच्छास्त्ररूपी वृक्षकी छायाको नहीं पाता ॥ हे रामजी ! जीवरूपी बलध ऐसा है, सो निकसनेका यत्न करै, जब तत्त्वका अवलोकन करै, तब चित्तभ्रम नष्ट हो जावै ॥ हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र है, तिसके तरणेका उपाय सुन, महापुरुष संतजन है, सो मलाहहै, अरु तिसकी युक्तिरूपी जहाज होवै, तिसकारि संसाररूपी समुद्रको तारि जावेगा, और उपाय कोई नहीं, यह परमउपाय है, जिस देशविषे संतजनरूपी वृक्ष नहीं, जिनकी फलोंसहित शीतल छाया है नहीं, तिस निर्जन देश मरुस्थल विषे एक दिन भी न रहिये ॥ हे रामजी ! संतजनरूपी कैसे वृक्ष हैं, स्निग्ध अरु शीतल वचनरूपी जिनके पत्र हैं, अरु उनका प्रसन्न होना सुंदर फूल हैं; अरु उनका निश्चय उपदेशरूपी फलहैं, जब यह पुरुष तिनके निकट जावै, तब महामोहरूपी तप्तताते छूटैगा, अरु शांतिको प्राप्त होवैगा, अरु तिनको पाइकारि तृप्त होवैगा, अरु तिन फलोंको पाइकारि अघावैगा, सब दुःखोंते मुक्त होवैगा ॥ हे रामजी ! अपना आपही मित्र है, अरु अपना आपही शत्रु है, अपने आपको जन्मरूपी चीकड़विषे न डारै, जो देहविषे अहंभावनाकारि विषयोंकी तृष्णा करता है सो अपना आपही नाश करता है, अरु जो देहभावको त्यागिकारि आत्म अभ्यास करता है, तब अपना आप उद्धार करता है, सो

अपना आपही मित्र है, अरु जो आपको संसारसमुद्रविषे डारता है, सो अपना आपही शत्रु है ॥ हे रामजी ! प्रथम विचार यह करि देखै कि, जगत् क्या है, अरु कैसे उत्पन्न भया है, अरु कैसे निवृत्त होवैगा, अरु मैं कौन हौं, अरु सत्य क्याहै, अरु असत्य क्या है, ऐसे विचारकरि जो सत्य है तिसको अंगीकार करै, अरु जो असत्य है, तिसका त्याग करै ॥ हे रामजी ! न इसका धन कल्याण करता है, न मित्र बांधव न शास्त्र कल्याण करते हैं, अपना उद्धार आपही करता है, ताते अपने मनसाथ मित्राई करै, दृढ वैराग्य अरु अभ्यास करै तब संसार कष्टते छूटै, जब वैराग्य अभ्यासकरि तत्त्वके अवलोकनरूपी बेड़ी करै, तब संसारसमुद्रते तारि जाता है ॥ हे रामजी ! जीवरूपी हस्ती है; अरु जन्मरूपी गर्तविषे गिरा हुआ है, अरु तृष्णा अहंकाररूपी जंजीरोंसे बाँधा है, अरु कामनारूपी मदकरि उन्मत्त है, जब तिनते छूटै, तब मुक्त होवै ॥ हे रामजी ! हृदयरूपी नेत्रोंविषे अनात्मा अभिमानरूपी मल रक्त हो गया है जब विचाररूपी औषधीकरि तिसको दूर करिए, तब आत्मरूपी सूर्यका दर्शन होवै ॥ हे रामजी ! और उपाय कोई न करै, तौ एक उपाय करै जो देहको काष्ठ लोष्टवत् जानिकरि इसका अभिमान त्यागै, जब अहं अभिमानरूपी बादल नष्ट होवैगा, तब आपही आत्मारूपी सूर्य प्रकाश आवैगा, जब अहंकाररूपी बादल लय होवैगा, तब आत्मतत्त्वरूपी सूर्य भासैगा, सो परमानंद स्वरूप है, सुषुप्तिते मौन अंकुर है; केवल अद्वैत तत्त्व है, वाणी करि कहा नहीं जाता, अनुभवकरिकै आपही जानाजाता है, हे रामजी ! सब जगत् अनंत आत्मा है; जब चित्तका दृढ परिणाम उसविषे होवै, तब स्थावरजंगमरूप जगत्विषे वही दिव्य देव भासैगा, और वासना सब निवृत्त हो जावैंगी, केवल परमानंद आत्मतत्त्व अनुभवकरि दिखाई देवैगा, सो स्वरूप पूर्ण अद्वैत है, और सब जगत्का त्यागकरि तिसके पानेका यत्न करौ ॥ इति श्रीयोग० उपशमप्रकरणे कारणोपदेशवर्णनं नाम एकोनषष्टितमः सर्गः ॥५९॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! मनकरि मनको छेदौ; अरु अहं मम भावको त्यागौ, जबलग मन नष्ट नहीं होता तबलग जगत्के दुःख निवृत्त नहीं होते जैसे मूर्त्तिका सूर्य मूर्त्तिके नष्ट हुएबिना अस्त नहीं होता, जब मूर्त्ति नष्ट होवै तब सूर्यका आकार दूर हो जावै, तैसे जब

मन नष्ट होवै, तब संसारके दुःख नष्ट हो जावैंगे, अन्यथा नष्ट नहीं होते ॥ हे रामजी ! जैसे प्रलयकालविषे अनंत दुःख होते हैं, तैसे मनके होनेकरि अनंत दुःख होते हैं, जैसे मेघके वर्षणेकरि नदी वढ़ती जाती है, तैसे मनके जागेते आपदा बढ़ती जाती हैं, इसही पर पुरातन इतिहास मुनीश्वर कहते हैं सो परस्पर सुहृदोंका है, तू श्रवण कर ॥ हे रामजी ! सह्याचल पर्वतोंविषे वडा पर्वत है, तिस ऊपर फूलोंके समूह हैं अरु नानाप्रकारके वृक्ष हैं अरु जलके झरने चलते हैं, मोतियोंके स्थान अरु स्वर्णके शिखर हैं कहूं देवताके स्थान हैं पक्षी शब्द करते हैं, अरु तले क्रांत रहते हैं, ऊपर सिद्ध देवता विद्याधर रहते हैं पीठविषे मनुष्य रहते हैं, नीचे नाग रहते हैं, मानौ संपूर्ण जगत्का गृह यही है, तिसके उत्तर दिशा सुंदर तलाव है, वृक्ष फूलोंकरि पूर्ण है, महासुंदर रचना स्वर्ग जैसी उपमा तिनकी, तहां अत्रि नाम ऋषीश्वर रहताथा, साधुओंके श्रम दूर करनेहारा था, तिसके आश्रमकेपास दो तपस्वी आनि रहे, जैसे आकाशविषे बृहस्पति अरु शुक्र आय हैं, तैसे यह दोनों रहैं तिन दोनोंके गृहविषे दो पुत्र महासुंदर उत्पन्न भए, जैसे कमल उत्पन्न होवैं, तैसे उत्पन्न भए एकका नाम भास, एकका नाम विलास भया, दोनों क्रमकरि बड़े हुए जैसे अंगुरीके दोनों पत्र हैं, सो बढते हैं, तैसे बढ़ते जावैं, अरु परस्पर तिनकी प्रीति वहुत वढ़ी अरु इकट्ठेही रहैं, जैसे तिल अरु तेल इकट्ठेही रहते हैं, जैसे फूल अरु सुगंधि इकट्ठे रहते हैं, जैसे स्त्री अरु पुरुषकी प्रीति आपसमें होती है, तैसे उनकी प्रीति बढ़ी. अरु देखनेमात्र तौ दो मूर्त्ति दृष्ट आवैं, परंतु मानौ एकही हैं, स्नान आदिक क्रिया भी तिनकी एक समान, मानसी क्रियाभी एक समान, अरु महासुंदर प्रकाशवान्, जैसे चंद्रमा अरु सूर्य हैं, तैसे जब केताक काल व्यतीत भया, तब तिनके माता पिता शरीरको त्यागिकारि स्वर्गको गये, तिनके वियोगते दोनों शोकवान् भए, जैसे कमलकी कांति जलविना जाती रहै, तैसे उनके मुखकी कांति कुम्हलाय गई, फेरि इनके मरनेकी क्रिया सव करत भए, पाछे उनके गुण स्मरण करिकै विलाप कर महाशोकवान् होवैं, महापुरुष भी लोकमर्यादा लंघते नहीं ॥ हेरामजी ! इसप्रकार शोककरि उनका शरीर कृश हो गया ॥ इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणे भासविलासवृत्तांतवर्णनं नाम षष्टितमः सर्गः ॥६०॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे उजाड वनका वृक्ष जलविना सूख जाताहै, तैसे उनका शरीर सूख गया, तब दोनों विगतज्वर होइकरि विचरने लगे, जैसे यूथ समूहसों विछुरा हरिण शोकवान् होताहै, तैसे आपसमें विछुरि गए अरु शोकको प्राप्त भए, एकले एकले फिरने लगे, निर्मल ज्ञान तिनको प्राप्त न था, सो जब केताक काल व्यतीत भया तब बहुरि आय मिले अरु विलास कहत भये ॥ हे भाई ! मेरे हृदयको आनंद देनेहारे अमृतके समुद्र जीवनरूपी जो वृक्ष है, तिसका फल सुख है, सो तू एताकाल क्या सुखसों रहा है अरु तेरा मेरा वियोग हो गया, तब तू कैसी क्रिया करत भया, क्या तुझने कछु निर्मल चित्त किया है, क्या तुझने अब आत्मपद पाया है अरु क्या तेरी बुद्धि शोकते रहित है अब तुमको क्या विद्या फली है क्या तू अब कुशलरूप हुआ है ॥ भास उवाच ॥ हे साधो ! अब हमको कुशल भया है, जो तेरा दर्शन भया है, अरु जो जगत्विषे कहौ तौ कुशल कहां है, इस संसारविषे स्थित हुए हमको सुख अरु कुशल कहां है, हे साधो ! जबलग ज्ञेय परमात्मतत्त्वको नहीं पाया, अरु जबलग चित्तभूमिका क्षीण नहीं भई, अरु जबलग संसारसमुद्रको नहीं तरे, तबलग कुशल कहां है, जबलग चित्तसों दुःख निवृत्त नहीं होता, तबलग चित्तकी भूमिका नष्ट नहीं होती, जबलग संसारसमुद्रते पारको प्राप्त नहीं भया, तबलग हमको सुख कहाँ है जबलग चित्तरूपी क्षेत्रविषे आशारूपी कंटकोंकी वल्ली बढती जाती है, सो आत्मविचार रूपी रात्रिसाथ नहीं काटी, तबलग हमको कुशल कहां, जबलग आत्मज्ञान उदयनहीं भया, तबलग हमको कुशल कहां है ॥ हे साधो ! संसाररूपी विषूचिका रोग है, आत्मरूपी औषधविना दूर नहीं होता, सब जीव नित्य वही क्रिया करते हैं, जिसकरि दुःखकी प्राप्ति होवै है, सुखको नहीं प्राप्त होते, देहरूपी एक वृक्ष है, तिसविषे बाल अवस्थारूपी पत्र हैं, यौवन अवस्थारूपी फूल है, वृद्ध अवस्थारूपी फल है, सो मृत्युके मुखमें जाय पडता है, उपजता है, बहुरि नष्ट होता है, यह सुख जो लवाकार है, अरु दुःख जिसका स्थावर दीर्घते दीर्घ है, ऐसे जो शुभ अशुभ आरंभ हैं, तिनविषे इनको दिन रात्रि व्यतीत होते हैं ॥ हे साधो ! चित्तरूपी हस्ती है, सो वैराग्यरूपी सांकरविना

दूरते दूर तृष्णारूपी हस्तिनीके पाछे चला जाता है, जैसे इल्लपक्षी मांसकी ओर चला जाता है, तैसे चित्त विषयोंकी ओर धावता है, आत्मारूपी जो चिंतामणि है, तिसकी ओर नहीं जाता, अहंकाररूपी जो इल्ल है सो देहादिकरूपी मांसको धावता है, अरु सुखरूपी जो कमल है, अपमानरूपी धूलकरि धूसर हो जाता है, अरु योगरूपी बर्फकारि नष्ट हो जाता है ॥ हे साधो ! देहरूपी कूपविषे गिरा है, भोगरूपी तिसविषे सर्प है, अरु आशारूपी कंटक है, तृष्णारूपी जल है, तिसविषे यह दुःख पाता है ॥ हे साधो ! नानाप्रकारके रंग रंजनारूपी जिसविषे रंग हैं, अरु जिसविषे तृष्णारूपी चंचलता है ऐसे चैत्य दृश्यविषे मग्न है चित्तरूपी एक ध्वजा है, सो कालरूपी चंचलता वायुकरि भासती है, चित्तरूपी समुद्र है, अरु चिंतारूपी तिसविषे घुमर घेर हैं, जीवरूपी तृण तिसविषे आय कष्ट पाता है, अरु बुद्धिरूपी पक्षिणी है, वासनारूपी जालविषे कष्ट पाती है, यह मैंने किया है, यह करता हौं, यह करौंगा, इसी वासनारूपी जालविषे बुद्धिरूपी पक्षिणी कष्ट पाती है, एक क्षण भी विश्रामवान् नहीं होती ॥ हे भाई ! यह चित्तरूपी कमल है, इसको रागद्वेषरूपी हस्ती चूर्ण करता है, कि यह मेरा सुहृद् है, यह मेरा शत्रु है, अहं मम इसको मारता है, शुद्ध आत्मरूपको त्यागिकरि देहादिक अनात्मारूपविषे अहंभाव करता है, अरु दीनताको प्राप्त होता है, जैसे राज्यते रहित राजा कष्ट पाता है, तैसे आत्मभावते रहित कष्ट पाता है, देहाभिमान करिकै जन्ममरणके दुःखोंको देखता है, जब देहाभिमानका त्याग करै, तब कुशल होवै अन्यथा कुशल नहीं होता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे अनित्यताप्रकरणं नाम एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसप्रकार उनने परस्पर कुशलका प्रश्न किया, जब केताक काल व्यतीत भया, तब अभ्यासद्वारा उनको निर्मल ज्ञान प्राप्त भया, अरु मोक्षपदको प्राप्त हुये, ताते हे रामजी ! ज्ञानते और मार्ग कल्याणनिमित्त कोऊ नहीं, जिसका चित्त आशारूपी फाँसीसे बँधा हुआ है, सो संसारसमुद्रके पार होनेको समर्थ नहीं होता, ताते जीव संसारसमुद्रविषे गोते खाता है, अरु ज्ञानवान् शीघ्रही तारि जाता है, जैसे गोपद लंघनेविषे सुगम होता है, अरु जिस पक्षीके पक्ष टूटे हैं, सो समुद्रको नहीं तर सकता, बीचमेंही गिरिकै गोते खाता है,

अरु पंखोंसे गरुड शीघ्रही लंघि जाता है, तैसे जिन पुरुषोंके वैराग्य अरु अभ्यास रूपी पंख टूटे हैं, सो संसारसमुद्रते पार नहीं हो सकते अरु जिन पुरुषोंके वैराग्य अभ्यासरूपी पंख हैं ऐसे ज्ञानवान् शीघ्रही तरिजाते हैं ॥ हे रामजी ! जो देहते अतीत महात्मा पुरुष चिन्मात्रतत्त्वविषे स्थित हुए हैं, सो ऊंचे होकरि देखते हैं, अरु अपने देहको देखि हँसते हैं जैसे सूर्य जनताको देखि हँसता है. अर्थ यह कि, जगत्की क्रियाते निर्लेप रहता है, जैसे रथके टूटेते रथ वायुको खेद कछु नहीं; तैसे देहके दुःखकरि ज्ञानवान्को खेद कदाचित् नहीं होता, अरु मनके क्षोभकरि भी आत्मतत्त्वविषे कछु क्षोभ नहीं होता, जैसे तरंगके ऊपर धूलि परती है, तिसकरि समुद्रको कछु लेप नहीं होता, तैसे मनके दुःखकरि आत्माको क्षोभ नहीं होता ॥ हे रामजी ! देह अरु आत्माका संयोग कछु नहीं, जैसे जल अरु हंसका संयोग कछु नहीं, जैसे जल अरु वेडीका संवंध कछु नहीं, तैसे देह अरु आत्माका संबंध कछु नहीं, जैसे पहाड़ समुद्रका संवंध कछु नहीं, जैसे जल अरु पत्थर अरु काष्ठ एक ठौर रहते हैं, परंतु संवंध कछु नहीं, जैसे जल अरु बेडी संघट्ट होता है, तौ जलकणके उठते हैं. तैसे देह अरु आत्माके संयोगते चित्तवृत्ति फुरती है ॥ हे रामजी ! इसको दुःख जो होता है, सो संगकरि होता है, जहां अहं मम अभिमान होता है, तहां दुःख भी होता है, अरु अहं ममका अभिमान नहीं, तहां दुःख भी कछु नहीं, अरु मच्छीको जलविषे ममत्व होता है, तिसके वियोगकरि कष्ट पाती है, तैसे जिस पुरुषको देहविषे अहं ममभावहै, सो बड़ा कष्ट पाता है, अरु जिसको देहविषे अभिमान नहीं, तिसको दुःख भी कछु नहीं ॥ हे रामजी ! ज्यों ज्यों मनते संसर्गता निवृत्त होती है, त्यों त्यों भोगप्रवाह कष्ट नहीं देते. जैसे जल अरु पत्थरको कष्ट नहीं होता, जैसे दर्पणविषे पर्वतका प्रतिबिंब होता है, सो दर्पणको प्रतिबिंबका संग नहीं होता अरु कष्ट भी नहीं होता, तैसे जब देहविषे संसर्गभाव उठि जावै, तब कष्ट कोई नहीं होता, जैसे दर्पणको कछु नहीं होता, तैसे आत्मा अरु जगत्की क्रिया है ॥ हे रामजी ! सर्वथा संवित्मात्र आत्मतत्त्व स्थित है, सो शुद्ध है, द्वैत शब्दके फुरणेते रहित है, जो तिसविषे स्थित है, तिसको द्वैत शब्द नहीं फुरता, अरु जो अज्ञानी है, तिसको द्वैतकलना उठती है ॥

हे रामजी! यह सब जीव अदुःखरूप हैं, परंतु अज्ञानभ्रमकरि आपको दुःखी जानते हैं, जैसे स्थाणुविषे चोरभावना अविचारकरि होती है, तैसे आत्माविषे दुःखकी भावना अविचारकरि होती है ॥ यह पुरुष अशब्द रूप है, परंतु कलनाके वशते आपको संबंधी जानता है, जैसे स्वप्नविषे अंगना बंधन करती है, जैसे स्थानविषे वेताल भासता है, अरु भयको प्राप्त करताहै, तैसे अपनी कल्पना करि बंधमान होता है ॥ हे रामजी! देह अरु आत्माका संबंध असत्य है, जैसे जल अरु बेडीका संबंध असत्य है, जब जलका अभाव होवै, तब बेडीको चिंता कछु नहीं होती अरु बेडीका अभाव हो जावै तौ जलको कछु चिंता नहीं होती ताते असत्य संबंध है, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध असत्य है, जब ऐसे जानकरि अंतर संगते रहित होव, तब देहका दुःख कछु नहीं लगता, देहके दुःखविषे आपको दुःखी मानना, देहविषे अहंभावनाकरि आत्मा दुःखी होता है; जब देहविषे अभिमानको त्यागि देवै, तब सुखी होवै, ऐसे बुद्धीश्वर कहते हैं, जैसे जल अरु पत्थर इकट्ठे रहते हैं, परंतु अंतरसंगका अभाव है, ताते दुःख कछु नहीं लगता, तैसे अंतरते संगरहित होवे तब देह इंद्रियोंके होते भी दुःखका स्पर्श कछु न होवै निर्दुःख पदविषे प्राप्त होवै ॥ हे रामजी! जिसको देहविषे आत्माभिमान है, तिसको जन्म मरण दुःखरूप संसार है, जैसे बीजते वृक्ष उत्पन्न होता है, तैसे देहाभिमानते सुखदुःखरूप संसार उत्पन्न होता है, अरु संसारसमुद्रविषे डूबता है, अरु जो अंतरसंगते रहित होता है, सो संसारसमुद्रके पारको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी! जिसके अंतर देहाभिमान है, तिसके चित्तरूपी वृक्षविषे अनेक मोहरूपी शाखा उत्पन्न होती हैं, अरु जो अंतर संगते रहित है, तिसका मोह लीन हो जाता है, वह चित्त लीन कहाता है, जिसका चित्त देहादिकोंविषे बंधमान है, तिसको नानाप्रकारका भ्रमरूप जगत् भासता है, अरु जिसका चित्त देहादिकोंविषे बंधमान नहीं, सो एक आत्मभावको देखता है, जैसे टूटी आरसीविषे अनेक प्रतिबिंब भासते हैं, अरु सारी एकही प्रतिबिंबको ग्रहण करती है, तैसे संशयित चित्तविषे नानाप्रकारका जगत् भासता है. अरु शुद्धचित्तविषे एक आत्मा भासता है ॥ हे रामजी! जो पुरुष व्यवहार करता, अरु संगते रहित है, ऐसे जो निर्मल पुरुष हैं, सो

संसारते मुक्त हैं अरु जो सर्व व्यवहारको त्यागि बैठा है अरु तप भी करता है, अरु अंतर चित्त आसक्त है, सो बंधनमें है। अरु जो अंतरसंगते रहित है सो मुक्त है, अरु अंतरचित्त किसी पदार्थविषे बंध है सो बंध है. बन्ध अरु मुक्तका एताही भेद है, अंतर असंग है सो सब कार्यकर्त्ता भी अकर्त्ता है, जैसे नट स्वांगको धरता भी अलेप है, तैसे वह पुरुष अलेप है, अरु जो अंतर अभिमानसहित है, सो कछु नहीं करता है, तौ भी करता है, जैसे सर्व व्यवहार त्यागिकरि शयन करता है, अरु स्वप्नविषे अनेक सुख दुःख भोगता है तैसे वह सब कछु कर्त्ता है चित्तके करनेकरि कर्त्ता है, चित्तके अकरनेकरि अकर्त्ता है, शरीरकरि करना सो करना नहीं, अरु शरीरकरि अकरना सो अकरना नहीं जो ब्रह्महत्या करता है, तौ असंसक्त पुरुषको कछु पाप नहीं लगता अरु जो अश्वमेध यज्ञ करे तौ कछु पुण्य नहीं होता, जिसके चित्तते सर्व आसक्तता दूर भई है, सो पुरुष मुक्तस्वरूप है; अरु धन्य धन्य है, अरु जिसका चित्त आसक्त है, सो बंध अरु दुःखी है, जो पुरुष आसक्ततासे रहित है, सो आकाशकी नाईं निर्मल है, समभाव एक अद्वैत आत्मतत्त्वविषे स्थित है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे अंतरासंगविचारो नाम द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२॥ राम उवाच॥ हे भगवन्! संग किसको कहते हैं, अरु बंधरूप संग किसको कहते हैं, अरु मोक्षरूप संग किसको कहते हैं, अरु संगबंधनोंते मुक्त किसको कहते हैं, अरु किस उपायकरि मुक्त होता है, सो कहौ॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! देह अरु देहीका जो विभाग है, तिसका त्याग कर, अरु तिससाथ जो मिलिकरि करता है, अरु देहमात्रविषे अपना विश्वास करता है, जो एताही मात्र मैं हौं, इसीको संग अरु बंध कहते हैं॥ हे रामजी! आत्मतत्त्व अनंत है, अरु देहमात्रविषे अहंभावनाकरि आपको एता मान पुरुष जानताहै, तिसविषे अभिमान करता है, अरु सुखकी इच्छा करता है, इसका नाम बंध अरु संग कहते हैं, अरु जिसको यह निश्चय हुआ है कि, सर्व आत्माही है, किसकी इच्छा करौं, अरु किसका त्याग करौं, इस असंगकरि जीवन्मुक्त कहाता है, अथवा न मैं हौं, न यह जगत् है, सर्व भाव अभावको त्यागिकरि अद्वैत सत्ताविषे स्थित होता है, इसका नाम जीवन्मुक्त है, न कर्मोंके त्यागकी इच्छा है, न करनेकी इच्छा है

अरु अंतरते कर्तृत्वभाव नहीं इस संगका जिसने त्याग किया है, सो असंग कहाता है ॥ हे रामजी! जिसको आत्मतत्त्वविषे निश्चय है, अरु राग द्वेष हर्ष शोकके वश नहीं होता, सो असंसर्ग कहाता है, अरु सर्व कर्मोंका फल जिसने त्याग किया है, कि मैं कछु नहीं करता, ऐसा जो मनकरि त्यागी है, सो असंसर्ग कहाता है, तिसको कोऊ कर्म बंधन नहीं करि सकता, सर्व संपदा तिसको होती हैं, अरु जो संसक्त पुरुष कर्तृत्वभोक्तृत्वके अभिमानसहित है, तिसको अनंत दुःख उत्पन्न होते हैं, जैसे कोई गर्त्तविषे गिर पड़े, तिसविषे कंटकोंके वृक्ष होवें, तिसकरि कष्ट पाता है, तैसे संसक्त पुरुष कष्ट पाता है ॥ हे रामजी! संगके वशते विस्तृत दुःखकी परंपरा उत्पन्न होती है, जैसे टोयेके वृक्षसाथ कंटक उत्पन्न होवे ॥ हे रामजी! जैसे नासिकाविषे रसडी पाइकरि ऊंट, बैल, गंधर्व भार उठाये फिरते हैं, अरु मार खाते हैं, तैसे संसक्त पुरुष आशारूपी फांसीसाथ बांधे हुये दुःख पाते हैं, वही संसक्तताका फल ऊंटादिक भोगते हैं, जलविषे रहते हैं, शीत उष्णकरि कष्टमान होते हैं, अरु कुहाडेसाथ काटते हैं, इसप्रकार संसक्तताका फल वृक्ष भोगते हैं, पृथ्वीके छिद्रविषे कीट होते हैं, अरु अंगपीडाकरि कष्ट पाते हैं, सो संसक्तताका फल पाते हैं, और जो क्रियादिक अन्नादिक उगते हैं, अरु दात्रीसाथ काटते हैं, सो अंतर दुःख पाते हैं, बहुरि बोता है, बहुरि काटते हैं, सो संसक्तताका फल भोगते हैं, इसप्रकार योनिको पाते हैं, अरु कष्टमान् होते हैं, सो संसक्त हैं, हरे तृणोंको हिरण खाते हैं, अरु वधिक इसको बाणकरि मारता है, अरु कष्टमान् होता है, जो जीव तुझको दृष्ट आते हैं, सो इसप्रकार संसक्तताकरि बांधे हुये हैं, सो संसक्तता भी दो प्रकारकी है, एक बंध है, एक बंधन करने योग्य है, जो मूढ़ जीव हैं, अरु जो तत्त्ववेत्ता हैं, सो वंदना करने योग्य हैं ॥ हे रामजी! आत्मतत्त्वते जो गिरा है, अरु देहादिकविषे अभिमानी हुआ है, सो मूढ है, संसारविषे जन्ममरणको प्राप्त होता है, अरु जिसको आत्मतत्त्वका ज्ञान हुआ है, अरु निष्ठा है, सो वंदना करने योग्य है, तिसको बहुरि जन्म मरण संसार नहीं होता, शंख चक्र गदा पद्म जिसके हाथविषे हैं, अरु आत्मतत्त्वविषे निश्चय है, आत्मतत्त्वविषे संसक्त है, अरु तीन लोककी पालना करता है, सो वंदना करने योग्य है, अरु जो निरालंब

सूर्य आकाशविषे विचरता है, अरु सदा स्वरूपनिष्ठा है, सो वंदना करने योग्य है, अरु जो महाप्रलयपर्यंत जगत्‌को उत्पन्न करता है, अरु सदाशिव स्वरूपविषे संसक्त है, ब्रह्मारूप होकरि विराजता है, सो वंदना करने योग्य है, अरु जो लीलाकरि स्त्रीको अर्धांग रखता है, उसके प्रेमरूपी बंधन साथ बांधा है, अरु विभूतिको लगाता है, सदा स्वरूपविषे संसक्त है, शंकरवपुको धारिकारि स्थित है, सो वंदना करने योग्य है, इसते आदि लेकरि सिद्ध देवता विद्याधर लोकपाल जिनकी संसक्ति स्वरूपविषे है, सो मुक्तस्वरूप है, अरु वंदना करने योग्य है, अरु जो देहादिकोंविषे संसक्तहै, सो बंधहै, जन्म जरा मृत्युको पाताहै, अरु कष्टमान होता है ॥ हे रामजी ! जिनको शरीरविषे अभिमान है, अरु बाहरते उदार भी दृष्ट आता है, परंतु जब भोगोंको देखता है, तब इसप्रकार गिरता है, जैसे मांसको देखिकर आकाशते इच्छ पखेरू गिरते हैं, तैसे वे गिरते हैं, अरु वृथा यत्न करते हैं ॥ हे रामजी ! संसक्त जो जीव है, सो बांधे हुए कई देवतारूप धारी स्वर्गविषे रहते हैं, कई मनुष्यलोकविषे रहते हैं, कई सर्प आदिक पातालविषे रहते हैं, तीनों लोकोंविषे भटकते फिरते हैं, जैसे गूलरविषे मच्छर रहते हैं, तैसे ब्रह्मांडविषे संसक्त जीव रहते हैं, अरु मिट जाते हैं, कालरूपी बालकका जीवरूपी गेंद है, कभी अधको उछालता है, कभी ऊर्ध्वको उछालता है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगत् है सो सब असत्यरूप है, मनरूपी चितेरेने संगरूपी रंगसाथ शून्य आकाशविषे देहादिक जगत् लिखा है, सो सब असत्यरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंग उपजते अरु मिट जाते हैं, तैसे जीव ब्रह्मांडविषे उपजते रहते हैं, जिसका मन देहादिकविषे संसक्त है, सो तृष्णारूपी अग्निकरि तृणोंकी नाईं जलते हैं ॥ हे रामजी ! जो संसक्त पुरुष हैं तिनके शरीर पानेकी कछु संख्या नहीं, मेरुके शिखरते लेकरि चरणोंपर्यंत गंगाका प्रवाह चलै, तरंगोंसहित तिसके मोतियोंवत् जो लव-कणके हैं, तिनके गिननेकी संख्या होवै, परंतु संसक्त जीवके शरीर गिननेकी संख्या नहीं, अरु जेती कछु आपदा है, सो तिनको प्राप्त होती है, जैसे समुद्रविषे सब नदियां आय प्राप्त होती हैं, तैसे सब आपदा तिसको प्राप्त होती हैं ॥ हे रामजी ! जो देह अभिमानी सदा विषयोंकी सेवना करता है, सो

रौरव कालसूत्र आदिक जो नरक हैं, सो नरक अग्निकी लकडियां होवैंगे, जलैंगे, कष्ट पावैंगे, और जेते कछु दुःखके स्थान हैं, सो सब संसक्त जीवको प्राप्त होवैंगे, अरु जो असंग संगति चित्त हैं, तिन पुरुषोंको सब विभूति पदार्थ प्राप्त होवैंगे, जैसे वर्षाकाल विषे नदियां जलकरि पूर्ण होती हैं, जैसे मानससरोवरविषे सब हंस आनि स्थित होते हैं, तैसे असंसक्तचित्त पुरुषको सब संपदा प्राप्त होती हैं, अरु जिस पुरुषका देहाभिमान बढ़िजाता है, सो विषकी नाईं जान अरु जिसका देहाभिमान घटि जाता है, तिसको अमृतरूप जान, विष ज्यों ज्यों बढ़ता है, त्यों त्यों मारता है, अरु अमृत ज्यों ज्यों बढ़ता है, त्यों त्यों अमर करता है॥ हे रामजी! जो पुरुष देहाभिमानका त्यागकरि स्वरूपविषे संसक्त होता है, सो सुखी होता है अरु जिसको अंतर दृश्यका संग है, तिसको यह संसक्तरूपी अंगार अंगोंको जलावैगा, अरु जिसके अंतर संग नहीं वह असंगरूपी अमृतकरि सुखी होवैगा अरु चंद्रमाकी नाईं शीतल मुक्तरूप है, अविद्यारूपी विषूचिका रोग तिसका नष्ट हो जाता है, शांतरूप होता है॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसक्तविचारो नाम त्रिषष्टितमः सर्गः॥ ६३॥ वसिष्ठ उवाच॥ हे रामजी! यह जो मैंने तुझको उपदेश किया है, तिसको विचार करि अभ्यास कर,जो सर्वकाल सर्व स्थान सर्व कर्मोंको कर्ता चित्तको देहादिकविषे संसक्ति मत कर, केवल आत्मचेतन विषे स्थित होहु॥ हे रामजी! न संसक्तविषे, चित्त होवै, न चेष्टाविषे चित्त होवै, न किसी वस्तुविषे सत्य जानि चित्त होवै, न आकाशविषे, न अधविषे न ऊर्ध्व, न दिशाविषे, न बाहर, न अंतर, चित्त होवै, न प्राणोंविषे, न उरविषे,न मूर्धा तालुविषे, न भौंहके मध्यविषे, न नासिकाविषे, न जाग्रदस्वप्नसुषुप्तिविषे; न तम न प्रकाशविषे, न श्यामवर्ण, न रक्त पीत श्वेतविषे, न स्थिर विषे, न चलविषे, न आदि, न अंतविषे, न मध्यविषे, न दूर न निकटविषे, किसी पदार्थविषे, न चित्तादि अंतःकरणविषे, न शब्द स्पर्श रूप रस गंधविषे, न कलना अकलनाविषे, चित्तको लगावहु, सर्व ओरते चित्तको वर्जिकरि चेतनतत्त्वविषे विश्राम कर कछुक द्वैतको लेकरि चेतनतत्वका आश्रय न कर. हेरामजी! जब सर्वते निराश हुआ, अरु आत्मतत्त्वविषे स्थित हुआ, तब विगतसंग

होवैगा, जीवका जीवतत्त्व चलता रहैगा, केवल चिदात्मा होकरि स्थित होवैगा, सर्व व्यवहार करै, अथवा न करै, करते भी अकर्ता होवैगा, अथवा इसका भी त्यागकरि केवल चिदानंद शांतरूप जो तत्व है, तिसविषे स्थित होउ, अद्वैतरूप तत्व स्वाभाविक भासैगा, जैसे बादलोंके दूर भये सूर्य स्वाभाविक भासि आवैगा, तैसे फुरणेते रहित चेतनतत्व भासि आवैगा ॥ जैसे चिंतामणि प्रकाशरूप स्वाभाविक भासि आती है, तैसे आत्मा प्रकाश स्वाभाविक भासि आवैगा, बहुरि जो कछु क्रिया करैगा, सो फलदायक न होवैगी, जैसे कमलको जल नहीं स्पर्श करता तैसे तुझको क्रिया स्पर्श न करैगी, अरु चित्त आत्मगत निर्वाणरूप होवैगा, क्रिया कर्ता भी अकर्ता रहैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे शांतसमाचारयोगोपदेशो नाम चतुःषष्टितमः सर्गः ॥ ६४ ॥ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! असंसक्त पुरुष है सो ध्यान करै, अथवा व्यवहार करै, सदा ध्यानविषे स्थित है, अरु शोकते रहित है; जैसे बाह्य क्षोभमान् दृष्ट आता है, परंतु अंतर सर्व कलनाते रहित है, वह संपूर्ण लक्ष्मीकरि शोभता है ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषका चित्त चैत्यते रहित अचलचित्त है, सो विगतज्वर है, तिसको कछु दुःख स्पर्श नहीं करता, जैसे जल कमलोंको स्पर्श नहीं करता, किन्तु वह औरोंको भी निर्मल करता है, जैसे निर्मली मलीन जलको निर्मल करती है, तैसे वह जनताको निर्मल करता है, अरु जो आत्मतत्वविषे लीन है, सो क्षोभमान भी दृष्ट आता है, परंतु क्षोभ कदाचित् नहीं, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब क्षोभमान् दृष्ट आताहै परंतु सूर्यको क्षोभ कदाचित् नहीं, तैसे ज्ञानवान् का चित्त क्षोभायमान् दृष्ट आता है, तौ भी क्षोभ कदाचित् नहीं ॥ हे रामजी ! आत्मारामी जो पुरुष है, सो बाह्य मोरके पुच्छवत् चंचल भी दृष्ट आता है, परंतु अंतर सुमेरु पर्वतकी नाई अचल है, जिनका चित्त आत्मपदविषे स्थित भया है, तिनको सुख दुःख अपने वश करि सकते, जैसे फाटकको प्रतिबिंबका रंग नहीं चढता, तैसे ज्ञानवानको सुखदुःखकारंग नहीं चढता, जिस पुरुषको परावर ब्रह्मका साक्षात्कार हुआ है, तिनका चित्त रागदोषकरि रंजित नहीं होता, जैसे आकाशविषे बादल दृष्ट आता है, परंतु आकाशको स्पर्श नहीं करता, तैसे ज्ञानवान्के चित्तको रागदोष स्पर्श नहीं करते, जो

आत्मध्यानी है, जिसको परमबोधका साक्षात्कार भया है, अरु कलनामलते मुक्त हुआ है,सो पुरुष असंसक्त कहाताहै ॥ हेरामजी ! जो आत्मारामी पुरुष है, तिसको आत्मज्ञानके अभ्यासकारि संसक्तता निवृत्त होजाती है, अन्यथा संसक्तभाव निवृत्त नहीं होता, जब चित्त परिणाम आत्माकी ओर होवैगा, जैसे चंद्रमा परिणामके वशते अमावास्याको सूर्यरूप हो जाता है, तैसे चित्त दृढपरिणामके वशतें आत्मरूप हो जाता है, जब चित्त चैत्यभावते हीन होता है; तब क्षीणचित्त कहाता है, अरु शांत कलना कहाता है, तब जाग्रत् इसको सुषुप्तिरूप हो जाता है, तिस अवस्थाविषे जो कछु क्रिया करता है, सो फलका आरंभ नहीं होता. काहेते कि, निरहंकार हो जाता है, जैसे यंत्रीकी पुतली अहंकारते रहित चेष्टा करती है, अरु संवेदनते रहित है, तिसको कोऊ दुःख नहीं होता, तैसे निरहंकार निःसंवेदन पुरुष निर्दुःख अरु निर्लेप कहाता है ॥ हे रामजी ! इष्ट अनिष्ट भावअभावरूपी जगत् चित्तविषे होता है, जब चित्त आत्मभावको प्राप्त हुआ, तब किसकारि किसको किसका बंधन होवै, सर्व आत्मतत्व होताहै, जैसे नट सर्व स्वांगको धारता है, अरु अपना अभिमान किसीविषे नहीं होता, तैसे सुषुप्ति बोध पुरुष जगत्की क्रिया करता है, अरु बंधमान नहीं होता,जीवन्मुक्त होकारि स्थित होता है ॥ हे रामजी ! सुषुप्तिबोधको आश्रय करिकै जगत्की क्रिया करौ, क्रिया कर्म कर्ता त्रिपुटीकी भावनाते रहित होहु, तब तुमको दुःख कछु न होवैगा, न आदानाविषे न त्यागविषे अभिमान होवैगा, यथाप्राप्तिविषे स्थित होवैगा, सुषुप्ति बोधविषे स्थित है, सो कर्ता हुआ भी कछु नहीं करता; ऐसे निश्चयको धारिकारिकै जैसे इच्छा होवै तैसे करौ ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्की चेष्टा बालकवत् होती है, जैसे बालक अभिमानते रहित पिंगुडेविषे अंगोंको हिलाता है, तैसे ज्ञानवान् अभिमानते रहित कर्म करता है, फलका स्पर्श नहीं होता, जब चित्त अचित्तरूप हो जाता है, तब जाग्रत् जगत् सुषुप्तिरूप हो जाता है, अरु जो कछु क्रिया करता है, सो स्पर्श नहीं करती ॥ हे रामजी ! इसको जब जगत्ते सुषुप्तिदशा प्राप्त भई, तब इसका अंतर शीतल हो जाता है, रागदोष कछु नहीं फुरते, आत्मानंदकारि पूर्ण होता है, जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे वह शोभता है, जो सुषुप्ति बोधाविषे स्थित है,

सो महातेजवान् महाधूर्म होता है, आत्मानंदकरि पूर्ण चंद्रमाकी नाईं हो जाता है ॥ हे रामजी ! जो पुरुष सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित है, सो किसी संसारके क्षोभकरि चलायमान नहीं होता. जैसे पर्वत सर्व कालविषे क्षोभायमान नहीं होता, जैसे भूकंपाविषे सब वृक्षादिक चलायमानहोते हैं, अरु अस्ताचलपर्वत कंपायमान नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् नहीं होता, चलायमान जैसे पर्वत सर्व कालविषे सम रहता है, अरु तरु डगिके गिर पडता है, पर्वत ज्योंका त्यों रहता है, तैसे ज्ञानवान् अनेक प्रकारकी क्रियाविषे सम रहताहै ॥ हे रामजी! ऐसी सुषुप्तिदशा अभ्यासयोगकरि प्राप्त होती है, जब यह दशा प्राप्त होती है, तब इसको तत्ववेत्ता तुरीयापद कहते हैं, सो परमानंदरूप है, तिसविषे सर्व दुःख नाश हो जाते हैं, असंसक्त हो जाता है, मनका मननभाव निवृत्त हो जाता है, तब ज्ञानवान्‌को परम सुख उदय होता है, तिसकरि परमानंद घूर्म हो जाता है, इस संसाररचनाको लीलारूप देखता है, सर्व शोकते रहित निर्भय होता है, संसारभ्रम दूर हो जाता है, जब तुरीया पदविषे प्राप्त हुआ है, तब संसारविषे बहुरि नहीं गिरता, जो यत्नवान् पुरुष परमपावन पदविषे स्थित हुए हैं, सो संसारकी अवस्थाको देखिकरि हँसते हैं जैसे पहाडकेऊपर बैठा पुरुष नगरको जलता देखिकरि हँसता है तैसे ज्ञानवान् आत्मानंदको पाइकरि संसारके कार्योंमें दुःख जानिकरि हँसते हैं ॥ हे रामजी ! तुरीयावस्थाविषे स्थित है सो अविनाशी होता है, अरु आनंदरूप आनंदकलनातेआनंदकलना है, जब ऐसे तुरीयातीत पदको प्राप्त होता है, तब जन्ममरणके बंधनते मुक्त होता है, अभिमान आदिक कलनाते रहित परम ज्योतिविषे लीन होता है, जैसे लूनकी गोली समुद्रविषे जलरूप हो जाती है, तैसे वह आत्मरूप हो जाता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसक्तचिकित्सा नाम पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जबलग तुरीयापदविषे स्थित होता है, तबलग केवल जीवन्मुक्त होता है, इसते उपरांत विदेहमुक्त तुरीयातीत है, सो वाणीका विषय नहीं, जैसे आकाशको भुजाकरि कोई पकडि नहीं सकता, तैसे तुरीयातीत वाणीका विषय नहीं; तुरीयातीत पदते विश्रांति भी दूर है, विदेहमुक्त कर पाता है अब तुम कछुक काल ऐसी सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित हो, पाछे परमानंदपदविषे स्थित होना ॥ हे रामजी !

तुरीयावस्थाविषे जो स्थित हुआ है, सो निर्द्वंद्वभावको प्राप्त हुआ है, जब तू सुषुप्ति अवस्थाविषे स्थित होवैगा तब जगत्‌के कार्य भी करता रहैगा सदा पूर्ण रहैगा, उदय अस्तके भावको कदाचित् प्राप्त न होवैगा, जैसे मूर्तिका चंद्रमा लिखा उदय अस्तको नहीं प्राप्त होता है, तैसे तू उदय अस्तभावको प्राप्त न होवैगा ॥ हे रामजी ! इस शरीरको आप जानिकरि रागदोषविषे जलता है, जिस पदार्थका सन्निवेश होता है, तिसके नष्ट हुए नष्ट हो जाता है, जैसे मृत्तिकाका अन्वय घटविषे होताहै, घटके नाश हुए मृत्तिकाका नाश न होवै, तैसे भ्रमको मत अंगीकार करहु, तू सदा ज्योंका त्यों है, तेरा सन्निवेश तौ इसविषे कछु न हुआ, ताते ज्ञानवान् देहके नाश हुए शोकवान् नहीं होता, अरु देहके स्थित हुए सुखी भी नहीं होता. काहेते कि, देहके साथ संबंध कछु नहीं, जो तत्त्वदर्शी पुरुष है, सो यथाप्राप्तिविषे निर्दोष होकरि विचारता है, अभिमानादिक विकारोंते रहित निर्मल आकाशवत् है, जैसे शरत्कालकी रात्रिविषे चंद्रमाकरि आकाश निर्मल होता है, तैसे मनकी वृत्ति विकारोंते रहितकरि आत्मपदविषे स्थित होता है, संसारकी ओर नहीं गिरता, जैसे योग मंत्र तप सिद्धिकरि संपन्न आकाशविषे उड़ता जाता है, सो पुरुष पृथ्वीपर नहीं गिरता ॥ हे रामजी ! तू भी अपने प्रकृतिभावविषे स्थित होकरि यथाप्राप्त क्रियाको कर्ता निर्द्वंद्व होउ, अरु तू भी अब स्वरूपका ज्ञाता हुआ है, परमपदविषे जागा है, अपने स्वरूपको प्राप्त हुआ है, पृथ्वीविषे विशोकवान् हुआ विचरौ, इच्छा अनिच्छाको त्यागिकरि शीतल प्रकाश अंधकार तप्त अरु मेघते रहित शरत्कालके आकाशवत् निर्मल शोभैगा ॥ हे रामजी ! यह जगत् चिदानंदस्वरूप है, अरु आदि अंतते रहित है, अहं त्वं आदिक भ्रमते रहित तिसविषे स्थित होउ आत्मा केवल अव्यक्त चिंतनाते रहित है, तिसका शरीरसाथ संबंध कैसे होवै, आत्मा आदिक नाम भी उपदेश व्यवहारके निमित्त कल्पे हैं, नामरूप भेद भयते रहित अशब्द पद है, सोई जगत्‌रूप होइकरि स्थित भया है, जगत् कछु भिन्न वस्तु नहीं, जैसे जल तरंगरूप हो भासता है, सो जलते कछु भिन्न वस्तु तरंग नहीं, तैसे आत्माते भिन्न जगत् कछु नहीं जैसे समुद्र सब जलरूप है, जलते इतर कछु भिन्न नहीं, तैसे सब जगत् आत्मरूप है, भिन्न कछु नहीं, जैसे जल अरु

तरंगविषे भेद नहीं, पट अरु तंतुविषे भेद नहीं, तैसे ब्रह्म अरु जगतविषे भेद नहीं ॥ हे रामजी ! और द्वैत कछु वस्तु है नहीं, परंतु मैं तेरे उपदेशके निमित्त द्वैतको अंगीकारकरि कहता हौं, यह जो शरीर है, तिसकेसाथ तेरा संबंध कछु नहीं, जैसे धूप अरु छायाका संबंध नहीं होता, प्रकाश अरु तम इकट्ठे नहीं होते, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध नहीं, देह जड अरु मलिन है, अरु दृश्य असत्य है, आत्मा निर्मल चेतन है, अरु सत्य है, तिसका देहसाथ संबंध कैसे होवै, जैसे शीत अरु उष्णका परस्पर विरोध है, तैसे आत्मा अरु देहका संबंध नहीं जैसे वनको अग्नि लगेते जंतु जलते हैं, तैसे भ्रम दृश्यरूप देहविषे अहंभाव करिकै जलते हैं ॥ हे रामजी ! जैसे दावाग्निविषे कुबुद्धि जलबुद्धि करै तैसे अज्ञानी देहविषे आत्मबुद्धि करते हैं, जैसे मरुस्थलविषे सूर्यकी किरणोंमें जल भासता है, तैसे आत्माविषे देहभाव रखते हैं ॥ हे रामजी ! चिदात्मा निर्मल अरु नित्य स्वयंप्रकाश है, अरु देह मलिन है, अस्थि मांस रक्तमय है, इसकेसाथ आत्माका संबंध कैसे होवै, आत्माविषे देहका अभाव है, केवल एक अद्वैत तत्त्व अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैतभ्रम कैसे होवै ॥ हे रामजी ! स्वरूपते न कोऊ बंध है, न कोऊ मुक्त है, सर्व सत्ता एक आत्मतत्त्वस्थित है अंतर बाहर सर्व वही है, मैं सुखी हौं, मैं दुःखी हौं, मैं मूढ हौं, इस मिथ्या दृष्टिको दूरते त्याग, आपको केवल आत्मरूप जानिकरि स्थित होहु, यह जो दृश्य है, सो परम दुःख देनेहारा है, इसकरि दुःख प्राप्त होवैगा, जैसे तृण अरु पहाड़की एकता नहीं होती, पट अरु पत्थरकी एकता नहीं होती, तैसे आत्मा अरु शरीरकी एकता नहीं होती, जैसे तम अरु प्रकाशका संयोग नहीं होता, तैसे देह अरु आत्माका संयोग नहीं होता, अरु दोनों तुल्य भी नहीं होते, जैसे शीत अरु उष्णकी एकता नहीं होती; जैसे जड़ अरु चेतनकी एकता नहीं होती, तैसे शरीर अरु आत्माकी एकता नहीं होती ॥ हे रामजी ! शरीर जो बोलताहै, सो वायुके बलकरि चलता बोलता है, आठ स्थानोंविषे वायुके बलकरि अक्षरोंका उच्चार होता है, उर, कंठ, शिर, जिह्वामूल, दंत; नासिका, होठ, तालु, यही अष्ट स्थान हैं, क ख ग घ, इन चारोंका उच्चार कंठविषे होता है, च छ ज झ, इन चारोंका तालुस्थानविषे उच्चार होता है, ट ठ ड ढ, इन

वर्गोंका मूर्द्धनी (शिर) विषे उच्चार होता है, त थ द ध, इनका दंतोंविषे उच्चार होता है, प फ ब भ म, इन पांचोंका होठोंविषे उच्चार होता है, ङ ञ ण न, इनका नासिकाविषे उच्चार होता है, जिह्वाविषे जिह्वामूलीयाका उच्चार होता है, जिस पदके आदिक हकार होवै, सो हृदयविषे उच्चार होता है, आठों स्थानोंविषे इन वर्गोंका वायुकरि उच्चार होता है, अरु नव ज्वर सूक्ष्मका उच्चार होता है, आत्मा इनते निर्लेप होता है, जैसे बाँसुरी वायुकरि शब्द करती है, तैसे यह पांच तत्वोंकरि शब्द होता है, इनविषे आत्मा भिधान करना कि मैं कर्त्ता हौं, सो महामूर्खता है, अरु नेत्रादिक भी इंद्रियां वायुकरि चेष्टा करती हैं, ताते इस भ्रमको त्यागिकारि आत्मपदविषे स्थित होउ, आत्मा आकाशवत् सर्वविषे पूर्ण है, जैसे आकाश सब ठौरविषे पूर्णहै परंतु जहां आदर्श होता है, तहां प्रतिबिंब होकरि भासता है, तैसे आत्मा सब ठौरविषे पूर्ण है, परंतु जहां चित्त होता है तहां भासता है ॥ हे रामजी ! जहां वासनाकरि चित्तरूपी पक्षी जाता है, तहां आत्माको अनुभव होता भासता है, जो मैं इहां हौं, जैसे जहां पुष्प होता है, तहां सुगंधि भी होती है, तैसे जहां चित्त होता है, तहां अहंभाव भी होता है, जैसे आकाश सर्व ठौरविषे है, परंतु जहां प्रतिबिंब होता है, तहां भासता है, जैसे जल सर्व पृथ्वीविषे है, परंतु भासता तहां है, जहां खोदाजाता है, तैसे आत्मा सब ठौर पूर्ण है, परंतु भासता तहां है जहां चित्त है, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सब ठौर है, परंतु जहां आदर्श अथवा जल है, तहां भासता है, तैसे आत्मा जहां तहां पूर्ण है, परंतु चित्तके अहंभावकरि भासता है, आत्माका प्रतिबिंब चित्तहीविषे भासता है, सो चित्त आत्माकी सत्ताकरि जगत्रचनाको पसरता है, जैसे सूर्यकी किरणैं धूपको पसारती हैं ॥ हे रामजी ! भूतोंका कारण अंतःकरणही है, अरु आत्मा तत्त्व तौ अतीतही है, आदिकारण नहीं है, अरु वास्तवते अकारण है, जगत् जो सत् भासता है, सो अविचारकरि भासता है, तिसके निवृत्तिका उपाय आत्मज्ञान है ॥ हे रामजी ! संसारका कारण अंतःकरण है, असम्यक् ज्ञानकरिकै सत्यरूप भासता है, जैसे मरुस्थलविषे असम्यक् ज्ञानकरिकै जल भासता है, जब यथार्थ ज्ञान होता है, तब जगत्का कारण चित्त नष्ट हो जावै, जैसे दीपकके प्रकाशकरि अंधकार नष्ट हो जाता है,

तैसे आत्मज्ञानकरि चित्त नष्ट हो जाता है, संसारका कारण अपना चित्तही है, इसका नाम जीव, अंतःकरण, चित्त, मन है ॥ राम उवाच ॥ हे महाआनंदके देनेहारे! एती संज्ञा चित्तकी कैसे हुई है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! सर्वभावरूप एक परमात्मा तत्त्व है, जैसे समुद्र, नदियां, तरंग आदि संज्ञा एक जलही धरता है, तैसे चित्तादिक अनेक संज्ञाको आत्मा धारता है, अरु सदा एकरूप है संवेदन फुरणेकरि अनेकरूप धारता है, जैसे एक जलको अनेक तरंग, कहूं बुद्बुदे, कहूं जल, कहूं चक्र, कहूं स्थिर, एती संज्ञाको धारता है, परंतु सबही जलरूप हैं, तैसे सर्वशक्ति आत्मा सर्व शरीरोंविषे सर्वरूप होता है, जब स्पंदकलना दूर होत, है, तब शुद्ध स्वरूप हो भासता है, अरु जहाँ अज्ञान संसरणेको अंगीकार करता है, तहां वही अनंत आत्मा जीव कहाता है, जैसे केसरी सिंह पिंजरेविषे फँसता है, तैसे यह जीवरूप होता है ॥ हे रामजी! जहां अहंभाव फुरता है, तहां जीव कहाता है, अरु जो निश्चय वृत्तिकरि फुरता है, तिसको बुद्धि कहते हैं, संकल्पविकल्पकरि मन कहाता है, चिंता करनेते चित्त कहाता है, प्रकृत भावकरि प्रकृति कहाता है ॥ हे रामजी! प्रकृतिरूप जो पदार्थ है, सो जड़ कहाता है, अरु चेतन है सो जीव कहाता है, अरु जड़ जो दृश्यभावकरि संवित् भाग है, अजड़ जो जीव अहं सो द्रष्टाभावकरि सिद्ध होता है, इनके जो मध्य है, सो परमात्मा तत्व है, सो नानारूप हो भासता है, यह रूप जीवका बृहदारण्यउपनिषद्‌विषे बहुत प्रकार करिकै और वेदांतशास्त्रोंविषे कहा है, इसते इतर संज्ञाशास्त्रकारोंने कल्पिकरि कही है, सो वृथा कल्पना कही है, जबलग अहंभावकरिकै चित्त संसरता है तबलग जगत्भ्रम होता है, जैसे जबलग सूर्य है तबलग प्रकाश होता है, जब सूर्य अस्त होता है, तब प्रकाश जाता रहता है, तैसे जब चित्तका अभाव हुआ, तब जगत्भ्रम जाता रहता है, देहविषे आत्माबुद्धि करनी सो महामूर्खता है, काहेते यह अधोर्ध्व संयोग है जो आत्माका, ऐसे संयोग होवै तौ देहके नाश हुए आत्मा भी नाश हो जावै, देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे वृक्षके पात नाश हुए वृक्षका नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे घटके नाश हुए आकाशका नाश नहीं होता, तैसे शरीरके

नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे पुरातन वस्त्रको त्यागिकरि पुरुष नूतन वस्त्र पहिरता है, तैसे आत्मा पुरातन शरीरको त्यागिकरि नूतन शरीरको अंगीकार करता है इसका नाम मूर्ख मृत्यु कहते हैं, शरीरके नाश हुए आत्माका नाश तौ कछु नहीं होता॥ हे रामजी ! जिसका चित्त निर्वासनिक हुआ है, उसका शरीर जब छुटता है, तब उसका चित्त चिदाकाशविषे लीन हो जाताहै, अरु जिसका चित्त वासनासहित है, सो एक शरीरको त्यागिकरि और शरीरको पाताहै, तौ भी शरीरके नाश हुए, आत्माका नाश नहीं होता, जो देहके नाश हुए आपको नाश मानता है, सो मूर्ख है, जैसे स्थाणुविषे अज्ञानकरिके वेताल भासता है, जैसे माताके स्थानोंविषे मूर्ख बालकको वेताल भासता है, तैसे अज्ञानकरि आत्माविषे मृत्यु भासता है, अरु जो इसका आत्मतत्व नाश होवै, अर्थ यह कि चित्तनाश हो जावै, बहुरि फुरै नहीं सो तौ आनंद हुआ, अरु जो शरीरके नाश हुए आत्माका नाश कहते हैं, सो मूढ हैं, मिथ्या कहते हैं, जैसे कोऊ देशते देशांतरको जाता है, तौ उसका अभाव नहीं होता, तैसे शरीरको त्यागि करि और शरीरको प्राप्त होता है, आत्माका नाश नहीं होता, जैसे जलविषे तरंग फुरता है, बहुरि लीन होकरि और ठौरविषे जाय फुरता है, तैसे आत्मा एक शरीरको त्यागिकरि औरको धारता है, जैसे पक्षी उड़ता उड़ता दूर जाता है. तब दृष्ट नहीं आता, परन्तु नाश नहीं होता, तैसे शरीरके नाश हुए आत्मा और ठौर प्रगट होता है, नाश नहीं होता ॥ हे रामजी ! वासनाके वशते यह जीव एक शरीरको त्यागिकरि और शरीरको जाय प्राप्त होता है, इसी प्रकार वासनाके अनुसार जीव फिरताहै, वासनारूपी जेवरीसाथ बांधा जीवरूपी वानर शरीररूपी स्थानोंविषे भटकता है ॥ हे रामजी! जीव वासनारूपी रसडीसाथ बांधा हुआ, कबहूं ऊर्ध्वलोक कबहूं मनुष्यलोकविषे घटीयंत्रकी नाईं भ्रमता है ॥ हे रामजी ! जीवको हृदयाविषे जो वासना होती है, तिसकरि जरा मृत्यु जन्म आदिक दुःखोंको पाता है, अरु कर्मोंरूपी भारको उठाइ फिरता है, कबहूं स्वर्गको जाता है, कबहूं पातालको जाता है, कबहूं मध्यस्थानविषे जाता है, शांतिको प्राप्त कदाचित् नहीं होता ॥ ताते हे रामजी ! अविद्यारूपी जो संसार है, इसको भ्रमरूप जानिकरि इसकी

वासनाका त्यागकरि अपने स्वरूपविषे स्थित होउ ॥ वाल्मीकिउवाच ॥ इसप्रकार जब सब वसिष्ठजीने कहा, तब सूर्य अस्त हुआ, सब सभा स्नानके निमित्त उठी, परस्पर नमस्कार करिके अपने अपने स्थानको गए, रात बिताय सूर्यकी किरणोंसाथ आइ बैठे ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारयोगोपदेशो नाम षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आत्मा देहके उपजेते उपजता नहीं, अरु नाश हुएते नाश नहीं होता, सो तू निष्कलंक आत्मा है, तुझको देहसाथ संबंध कदाचित् नहीं, जैसे कुंजाविषे फूल फल होता है, जैसे घटविषे घट आकाश होता है, सो परस्पर भिन्नरूप होता है, एकके नाश हुए दूसरेका नाश नहीं होता तैसे देहके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता अरु जो देहके नाशविषे अपना नाश मानता है, सो मूर्ख जड़ है, तिस अर्थ चेतनताको धिक्कार है ॥ हे रामजी ! जैसे रथ अरु रसडियां अरु घोड़का स्नेहते रहित संयोग होता है, तैसे शरीर अरु चित्त अरु इंद्रियांका संयोग है ॥ हे रामजी ! रथ टूटेते रथ वायुकी हानि तौ नहीं होती, तैसे देह इंद्रियोंके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसे पृथ्वी पहाड़ऊपर जलके प्रवाहका संयोग होता है, अरु वियोग भी होता है, सो एकके नाश हुएते दूसरेका नाश नहीं होता है, तैसे देह इंद्रियका संयोग है, इनके नाश हुए आत्माका नाश नहीं होता, जैसें स्थाणुविषे वेताल भासता है, अरु भयमान होता है, तैसे देहाविषे अहंभावकरि राग, द्वेष, सुख, दुःख पावता है, जैसे एक काष्ठकी अनेक पुतलियां होतीं हैं, सो काष्ठते इतर कछु नहीं, तैसे जेते कछु शरीर हैं, सो पंच भूतोंके हैं, पांच भूतोंते हैं, इतर कछु वस्तु नहीं, बहुरि यह पंच भूतोंका शरीर पंच भूतोंविषे लीन होता है, तिसको मृतक हुआ कहते हैं, यह आश्चर्य है, जो प्रत्यक्ष पंचभूतोंका शरीर है, तिसविषे आत्मभावना श्वान करते हैं, बहुरि हर्षकारि शोकको प्राप्त होते हैं, इसीते मूर्ख हैं ॥ हे रामजी ! न कोऊ पुरुष है, न कोऊ स्त्री है, अरु इनके निमित्त मूढ रुदन करते हैं जैसे मृत्तिकाके खिलोने हस्ती घोडा आदिक विचित्र रचना होती है, तिसकी प्राप्ति अप्राप्तिविषे अज्ञानी बालक तुष्टिवान् अरु खेदवान् होता है, तैसे अज्ञानी पांचभौतिक रचना देखिकरि प्राप्तिविषे राग द्वेष करता है, ज्ञानवान्को सब भूत भ्रांतिमात्र भासते हैं,

जैसे माटीके पुरुष आपसमें मिलैं तब उनको राग द्वेष कछु नहीं होता है, तैसे बुद्धि इंद्रियां मन आत्माका मिलाप है, तिसविषे तुझको रागद्वेष कछु नहीं होता, जैसे पाषाणकी पुतलियां मिलती हैं, उनको स्नेहबंधन कछु नहीं होता, तैसे देह इंद्रियां प्राण आत्मा का आपसमें स्नेह बुद्धिते रहित है, ताते तू स्नेहते रहित होउ, शोक काहेको करता है, जैसे तृण अरु जलके तरंगका संयोग होताहै, तृण इधर उधर जाता, है, जलको कछु हर्ष शोक नहीं होता है. तैसे देहभूत आत्माका योग है इनको मिलाप अरु विछुरेका दुःख सुख कछु नहीं होता, आत्मा अरु अनात्मा देह इंद्रियां प्राण मन बुद्धि आदिक विलक्षण भाव है परस्पर इनके क्षय अरु उदयविषे हर्ष शोक कछु नहीं परंतु चित्तके उदयकरिकै अनात्मा धर्म आत्माविषे प्रतिबिंबित भासता है, ताते तुम तत्त्वबोधका विचार करिकै चित्तको त्यागि अपने स्वरूपविषे स्थित होउ, जैसे जल तरंगभावको त्यागिकरि अपने स्थित स्वभावको प्राप्त होता है, तैसे तू अपने अक्षोभभावको प्राप्त होवैगा, तब भौतिक देहते आपको भिन्न जानैगा, जैसे वायुमंडलको प्राप्त हुआ देहादिक जीव पृथ्वीमंडलको देखता है, तैसे तू आत्मपदको स्थित हुआ देहादिक भूतोंको देखैगा ॥ हे रामजी ! तू देहादि भूतोंको देख त्यागिकरि अतीत अजन्मा पुरुष होइ रहौ, तब तुम परम प्रकाशको पावैगा जैसे सूर्यकांतमणि सूर्यके उदय हुए परम प्रकाशको प्राप्त होता है, तैसे जब बोधकरिकै द्रष्टा दर्शन दृश्यभाव तेरा जाता रहैगा, तब तू अपने भावको ज्योंका त्यों जानैगा, जैसै मद्यकरि क्षीव हो जाता है, मद्यके उतरेते आपको ज्योंका त्यों जानता है, अरु मद्यभावको स्मरण करता है, तैसे स्मरण करैगा, आत्मतत्त्वका जो स्पंद फुरना हुआहै, तिसका नाम चित्त है, सो अवस्तुरूप है, जैसे समुद्रविषे तरंगभाव उदय होता है, सो कछु वस्तु नहीं, तैसे चित्तादिक कछु वस्तु नहीं, भ्रांतिरूप है, इसप्रकार जानिकरि महाबुद्धिवान् वीतराग निष्पापरूपी जीवन्मुक्त हुए हैं, महा शीत पदकी प्राप्तिमें विचरते हैं जैसे रत्नमणिकी किंचन नानाप्रकारकी लहरी होती हैं, सो मनन कलनाते रहित चमत्कार है, तैसे मनुष्योंविषे जो ज्ञानवान् उत्तम पुरुष हैं तिनका व्यवहार कलनाते रहित होता है, जैसे कूपविषे प्रतिबिंब पड़ता है, जैसे आकाशविषे धूलि उड़ती भासती है, आकाश मल

भावको प्राप्त नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् पुरुष अपने व्यवहारविषे कर्तृत्वके अभिमानको नहीं प्राप्त होता, जैसे मेघके आने जानेकरि समुद्रको राग द्वेष नहीं होता, तैसे आत्मा ज्ञेय पुरुषको भोगोंके आने जानेविषे राग द्वेष नहीं होता ॥ हेरामजी ! जिस मनविषे जगत्के किसी पदार्थोंकी मननवासना नहीं फुरती, तिस चित्तविषे जो कछु फुरणा भी भासता है सो विलास स्वरूप जान, उसको बंधनका कारण कछु नहीं होता, अरु जिस चित्तविषे अहं त्वं आदिक जगत्की भावना है, परंतु अंतरते तिसको सत्यताबुद्धि है, तिसकारि वह दृश्य द्रष्टा अरु दर्शन संबंध तीनों कालोंसंयुक्त जगत्को विस्तारैगा, जो कछु दृश्य है, सो असत्यरूप है, अरु जो सत्य है, सो एक अव्यक्तरूप है, तिसको आश्रयकरिकै अलेप होहु, तब हर्षशोककी दिशा कहां है, जेता कछु दृश्य जगत् भासताहै, सो सब असत्य रूप है, जो सत्य है, सो सदा ज्योंका त्यों है, असत्यरूप दृश्यके निमित्त तू क्यों वृथा मोहको प्राप्त होता है, असम्यक् दर्शनको त्यागिकारि सम्यक्दर्शी होहु ॥ हे सुलोचन रामजी ! जो सम्यक्दर्शी है, सो मोहको नहीं प्राप्त होता, दृश्य जो विषय अरु दर्शन कहिये इंद्रियां, तिनके विषे संबंध मिलनेविषे जो आत्मसुख है अनुभवरूप सो परब्रह्म कहाता है, अरु अनुत्तम सुख सो तिस संवित्ताविषे स्थित है, सो ज्ञानवान् है; तिसको मोक्षप्राप्तिहै, अरु जो दृश्य दर्शनविषे स्थित होताहै, तिस अज्ञानीको वह संवित् संसारभ्रम दिखावती है, अरु दृश्य दर्शनविषे जो अनुभवसत्ता है, सो सुख आत्मारूप है, जो दृश्यसाथ लगा है, सो बंध है, अरु जो दृश्यते मुक्त होई संवित्ताविषे स्थित है, सो मुक्त कहाता है ॥ हे रामजी ! दृश्य दर्शनके संबंधविषे मध्य जो संवित् है, सो अनुभवगोचर है, तिस संवित्को आश्रय करिकै दृश्य दर्शनते जो मुक्त है, सो संसारसमुद्रको तरैगा, यह सुषुप्तिरूप अवस्था है, इसको प्राप्त हुआ परम प्रकाशको प्राप्त होता है, इसीको मुक्त कहते हैं, जो दृश्य दर्शनते मुक्तबुद्धि है, सो मुक्त कहाता है, अरु जो दृश्य दर्शनसाथ बांधाहै, सो बंध है, अन्य सर्वोंका अनुभव करनेहारा आत्मा है, सो न स्थूल है, न अणु है, न प्रत्यक्ष है, न अप्रत्यक्ष है, न चेतन है, न जड़ है, न सत्य है, न असत्य है, न अहं है, न त्वं है, न एक है, न अनेक है, न निकट है न दूर है, न अस्ति है, न नास्ति है,

न प्राप्ति है, न अप्राप्ति है, न सर्व है, न असर्व है, न पदार्थ है; न अपदार्थ है, न पांचभौतिक है, न अपांचभौतिक है, जेती कछु दृश्य जाति है, सो मनसहित षट् इंद्रियोंकरि भावको प्राप्त होता है, जो इनते अतीत है, सो इनका विषय नहीं, सो विषय कैसे होवै, निष्किंचनरूप है, अरु यह भी सब वही रूप है, ज्योंका त्यों जानेते सब आत्मरूप है, जगत् अनात्मरूप कछु नहीं, सम्यक्ज्ञानकरि ऐसे भासता है, यह जो कठिनरूप पृथ्वी भासती है, द्रवतारूप जल भासता है, स्पंदरूप वायु, उष्णतारूप अग्नि, अवकाशरूप आकाश भासता है, सो सब आत्मरूप है, जो कछु वस्तु अवस्तुरूप जगत् भासता है, सो आत्मसत्ताते इतर कछु नहीं, आत्माते इतर जगत्को मानना उन्मत्तचेष्टा है, मूर्ख मानते हैं, महात्मा पुरुषको काल कलनारूप जगत् सब आत्मरूप है, कल्पते आदि लेकरि अंतपर्यंत सब आत्माका चमत्कार है, इतर कछु नहीं ऐसे जानिकरि तुम अपने स्वरूपविषे स्थित होहु, अरु संसारसमुद्र तरि जावहु ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मोक्षस्वरूपोपदेशो नाम सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह जो मैं तुझको द्वैतके त्यागकी विचार दृष्टि कही है, इसविचार करिकै अपना जो आत्मस्वभाव है, सो प्राप्तहै, जैसे बुद्धिवान्को उपासना अभ्यासकरिकै चिंतामणि प्राप्त होताहै, अरु इसके उपरांत और भी परम दृष्टि सुन, जिस दृष्टिकरिकै अचल आत्मरूपको देखता है, कि मैंही आकाश हौं, मैंही दिशा हौं, मैंही सूर्य हौं, अध ऊर्ध्व मैंही हौं, देवता दैत्य मैंहीं हौं, प्रकाश तम अरु मेघ पर्वत मैंही हौं, पृथ्वी समुद्र पवन धूलि अग्नि आदिक स्थावर जंगम जगत् मैंही हौं ॥ हे रामजी ! सर्व जगत् आत्माही है, तौ अहं अरु त्वंते भिन्न और अनेक अरु एक कैसे होवै, ऐसा निश्चय जिसके अंतर होता है, तिसको सब जगत् आत्मरूप भासता है, सो पुरुष हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता, जो सब जगत् मनोमात्र है, तौ अपना अरु पराया क्या कहिये ? ज्ञानवान्को आत्माते इतर नहीं भासता, ताते हर्षविषादको नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी ! अहंकार भी तीन प्रकारके हैं, दो प्रकार सात्त्विक निर्मल हैं, तत्त्वज्ञानकरि प्रवर्त्तता है, अरु मोक्षदायक परमार्थरूप है, अरु तीसरा संसारको दिखावता है, एक अहं है, जो तुझको कहा है, सर्व मैंही हौं, मुझते

अन्य कछु नहीं, अरु दूसरा यह जो परम अणु जो सूक्ष्मते अतिसूक्ष्म है, साक्षिभूत अव्यक्तरूप हौं, यह दोनों मोक्षदायक हैं, अरु तीसरा यह जो आपको नख शीशपर्यंत देहरूप जानना, सो दुःखदायक संसारका कारण है; शांति सुखका कारण नहीं, अथवा इन तीनोंको त्यागकरि स्थित होउ, यह सर्व सिद्धांतका कारण है, जैसे तेरी इच्छा होवै तैसे कर, आत्मा सर्वते अतीत है, अरु सर्वते परे है, तौ भी अपनी सत्ताकरिकै जगत् पूर्णकरि रहा है, अरु सर्वका प्रकाशरूप वही है, अपने अनुभवकरि सदा वस्तु उदयरूप है, अरु किसी प्रमाणका विषय नहीं, अनुमान आदिक अरु सत्यवाद इनते परे रहित है, अरु सर्वकाल सर्वको अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है, अरु यह जो दृश्य जगत् है, सो सब आत्मा भगवान् है, अरु दृश्य दर्शन सत् असत् सूक्ष्म स्थूल सबते आत्मा रहित है, अरु वही सर्वरूप है, सर्वकी वाणी कहनेविषे भी वही आता है, अरु किसीके कहनेविषे भी नहीं आता, जो नानात्व भासताहै, सो भी तिसते अन्य कछु नहीं, आत्मा आदिक संज्ञा भी शास्त्रोंने उपदेशके निमित्त कल्पी हैं, सर्व शक्ति तिसविषे कल्पी हैं, सर्वत्र तीनों कालोंविषे स्थित है, अरु प्रकाशरूप है, सूक्ष्म भावकरि भी वही है, स्थूलरूप भावकरि भी वही है, सो सर्व ठौर व्यापक है, अरु अपने फुरणेकरि जीवरूप हो भासता है, जब चित्तसंवित् फुरणेरूप होती है, तब जीव आदिकरूप हो भासता है, फुरणेते रहित द्वैतकलना मिटि जाती है, जैसे आकाशविषे जब पवन फुरता है तब उष्ण शीत हो भासता है,तैसे फुरणेकरि जीवादिक भासता है, अरु आत्मा चेतन सर्वत्र व्यापकरूप है, अरु कबहूं किसी भावको प्राप्त नहीं भया, जैसे पदार्थ अपने अपने भावविषे स्थित हैं, तैसे परम स्वर आत्मा अपने स्वभावविषे स्थित है, परंतु तिसका भासना पुर्यष्टकाविषे होता है, जैसे वायुविना धूलि उड़ती नहीं, जैसे अंधकारविषे प्रकाशविना पदार्थ भासता नहीं, तैसे पुर्यष्टकाविना आत्मा भासता नहीं, पुर्यष्टकाविषे प्रतिबिंब भासता है, जैसे सूर्यके उदय हुए, सर्व जीवोंका व्यवहार होता है,अरु सूर्यके अस्त हुएते लीन होता है अरु सूर्य दोनोंविषे अलेप है, तैसे आत्मा सर्वका प्रकाशक अरु निर्लेप है, शरीरोंके व्यवहार होनेविषे अरु इष्टताविषे ज्योंका त्यों है. न उपजता है,न विनशताहै, नं वांछताहै,

न त्यागता है, न मुक्त है, न बंध है, सर्वदा सर्व प्रकार आत्मा ज्योंका त्यों एकरूप है ! तिसके अज्ञानकरि जीव अनात्मभावको प्राप्त होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, अरु केवल दुःखोंका कारण होता है आत्मा आदि अंतते रहित अज अविनाशी है, अपने आपते इतर कछु नहीं हुआ इसते वांछा त्यागि देश काल वस्तुके परिच्छेदते रहित है, ताते बंध नहीं, जो बंध नहीं तौ मुक्ति कैसे होवै ? सर्व कलनाते रहित ऐसा आत्मा सर्वका अपना आप है, अविचार करिकै मूढ रुदन करते हैं, ताते मैं जो तुझको उपदेश किया है, तिसको आदिते लेकरि अंतपर्यन्त भलीप्रकार विचारि देख, इस युक्तिकरिकै शोकका त्याग कर, मूर्खोंवत् लोकोंविषे शोकको मत प्राप्त होहु ॥ हे सुमते ! बंधमोक्षकी कल्पनाका त्याग कर, न बंधके त्यागकी इच्छा कर, न मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छा कर, यंत्रकी पुतलीवत् अभिमानते रहित चेष्टा कर, इसका नाम आत्मा मौन है ॥ हे रामजी ! मोक्षका नाम कोऊ पदार्थ आकाशविषे स्थित नहीं, न कोउ पातालविषे स्थित है, न भूमिलोकविषे स्थित है, चित्तका निर्मल होना मोक्ष है, जो आनात्मासाथ आपको मिलावना तिसाविषे आत्म अभिमान करना, यह मैल है इसका त्याग करना, अरु शुद्ध आत्माविषे चित्तको लगावना, इसका नाम मोक्ष है, जब चित्तसों गुणोंमें वृत्तिका त्याग होवै, अरु सम्यक् आत्मज्ञान होवै, तिसको तत्वदर्शी मोक्ष कहते हैं ॥ हे रामजी ! जबलग आत्मबोध नहीं होता, तबलग यह दीन दुःखी होता है, जब आत्माका निर्मल बोध होता है, तब दुःखोंते मुक्त होता है, ताते और उपायोंको त्यागि भक्ति करिकै मोक्षकी वांछा कर, अरु चिरकालकरिके जब इस बोधको साध्य चित्त विस्तृत पदको प्राप्त हुआ, तब दश मोक्षकी वांछा नहीं करता, एक मोक्ष क्या है ॥ हे रामजी ! जीवको और उपाय मोक्षका कोऊ नहीं, आत्मबोधको पाइकरि सुखी होवैगा, जब चित्त अचित्त होता है, तब सब जगद्भ्रम मिटिजाता है, अरु जगत् कछु दूसरी वस्तु नहीं, अद्वैत आत्मतत्व है, जो वही है तौ बंध किसको कहिये ? अरु मोक्ष किसको कहिये ? बंधमोक्षकी कल्पना तुच्छहै, तिसका त्यागकरि चक्रवर्तीहो पृथ्वीकी पालना कर, तुझको कर्तृत्वका स्पर्श कछु न होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे आत्मविचारो नाम अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इसके संकल्पते जगत् उपजा है. अज्ञान करिकै आपको शरीर जानता है, अपने संकल्पको उपजाइकै अपना स्वरूप जानता है, जैसे कोऊ सुंदर पुरुष होवै, तिसको देखेविना कुरूप जानै, तैसे आत्माके साक्षात्कारविना देहरूप आत्मा को जानता है कि, मैं देह हौं, ज्यों ज्यों आत्माका प्रमाद होता है, त्यों त्यों देहविषे अधिक अभिमान होता है, जैसे ज्यों ज्यों मद्य पान करता है त्यों त्यों उन्मत्त होता है ॥ हे रामजी ! यह जो नानाप्रकारका दृश्य जो भासता है, सो अज्ञानकरि भासता है, जैसे सूर्यकी किरणोंकरिके मरुस्थलविषे जल भासता है, तैसे असम्यक्ज्ञान करिकै आत्माविषे जगत् भासता है, एक कलनाके फुरनेकरि मन बुद्धिचित्त अहंकार इंद्रियां देह भासते हैं, सो एक फुरणेकी एती संज्ञा है, जैसे एक जलकी अनेक संज्ञा होती हैं, तैसे एक फुरणेकी अनेक संज्ञा हुई हैं. जो चित्त है, सो अहंकार है, जो अहंकार है, सोई मन है, जो मन है, सोई बुद्धि है, इनविषे भेद कछु नहीं, जैसे बर्फ अरु शुक्लता अरु शीतलताविषे भेद कछु नहीं तैसे मन बुद्धि आदिकविषे कछु भेद नहीं, एकके नाश हुए दोनोंका नाश होजाता है, ताते मनविषे जो कछु कलनाहै, तिसको त्यागकरि मोक्षकी इच्छाका भी त्यागकरि बंधन वृत्तिको भी त्याग कर ॥ हे रामजी ! वैराग्य अरु विवेक अभ्यासकरिकै मनको निर्मल करौ, जब मन निर्मल हुआ, तब मनका मननभाव नष्ट हो जावेगा, जब यह फुरणा फुरता है कि, मैं मुक्त होऊं, तब भी मन जागि आता है, अरु मनके जागते मनन भी हो आता है, मनन हुआ, तब अपनेसाथ शरीर भी भास आता है, अरु अनेक दुःखभी भास आते हैं ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्व सबते अतीत है, अरु सर्वरूप भी वही है, तब कौन बंध है अरु कौन मोक्ष है, जब मनका मनन निवृत्त हुआ, तब न कोऊ बंध है, न कोऊ मुक्त है, आत्मा सर्व क्रियाते अतीत है, अरु क्रिया भी इसप्रकार होती है, जैसे वायुके हिलनेकरि वृक्षके पत्र फूल हिलते हैं, तैसे प्राणोंके फुरणे करि हाथ पांव आदिक इंद्रियां चेष्टा करती हैं ॥ हे रामजी ! चित्तशक्ति है सो सर्वव्यापी सूक्ष्म है अरु अचल है, न आपही चलती है, न और किसीकी प्रेरी हुई चलती है सदा स्थितिरूप है, जैसे मेरु पर्वत न आपही चलता है, न वायुकरि चलाया चलता है, तैसे चित्तशक्ति

अचल है ॥ हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ भासते हैं, सो आत्मारूपी दर्पणविषे प्रतिबिंबित भासते हैं, जैसे सर्व पदार्थोंको दीपक प्रकाशता है, तैसे सब पदार्थोंको आत्मा प्रकाश करता है अरु सब पदार्थोंविषे एक आत्मा अनुस्यूत प्रकाशता है, अहं त्वं आदिक कलनाते रहित है, जहां अहं त्वं आदिक कलना नहीं फुरती, तहां सुख दुःख भी नहीं फुरता, जैसे वृक्षों अरु पहाडोंते अहं त्वं शब्द नहीं फुरता, तैसे आत्माविषे नहीं फुरते, ताते ज्ञानवान्‌विषे कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं फुरते ॥ हे रामजी ! आत्मा निरहंकार अरु निराकार है, तिसविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवै ? कर्तृत्व भोक्तृत्व आत्माविषे अज्ञानकरि भासता है, जैसे मरुस्थलविषे जळ भासता है ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूपी मदिरापान करिकै मनरूपी मृग मन हुआ है, तिसकरि सतअसत्‌का विचार नहीं करि सकता, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत्‌ही सत् भासती है, मृग तिसको सत् जानिकरि पान करनेके निमित्त दौड़ता है, तैसे यह जीव अरूपसंसारको रूप जानिकरि दौड़ता है, जब आत्मसत्ताका सम्यक् बोध होता है, तब यह अविद्या नाश हो जाती है, जैसे ब्राह्मणोंके मध्य चंडाली आनि बैठे, जब उन ब्राह्मणोंने उसको पिछानी कि, यह चंडाली है, तब छुप जाती है, तैसे जब अविद्याको जाना कि, यह अविद्या है, तब नष्ट हो जाती है ॥ हे रामजी ! जब अविद्याको ज्योंकी त्यों जानी तब अविद्यारूप जगत् मनको खैंच नहीं सकती, जैसे मृगतृष्णाकी नदीको जब जाना, तब तृष्णा होवै तौ भी मनको जल खैंच नहीं सकता ॥ हे रामजी ! जब परमार्थसत्ताका बोध हुआ, तब मूलते वासना नष्ट हो जाती है, जैसे दीपके उदयते अंधकार नष्ट हो जाता है, तैसे आत्मज्ञानकरि अविद्या वासनासहित नष्ट हो जाती है ॥ हे रामजी ! अविद्या अविचारते सिद्ध है, जब सच्छास्त्रोंकी युक्तिकरि विचार इसको प्राप्त होता है, तब अविद्या नाश हो जाती है, जैसे बर्फका कणका धूपकरि गलि जाताहै, अरु जलमय हो जाता है, तैसे विचारकरि अज्ञान नष्ट हो जाताहै ॥ हे रामजी ! देह जड़ है, आत्मा सदा चेतनरूप है, बहुरि देह जड़के निमित्त भोगोंकी वांछा करनी यह बडी मूर्खता है, जो ज्ञानवान् पुरुष हैं, सो इस बंधनको तोडि डारते हैं ॥ हे रामजी ! आशारूपी फाँसीको हृदयते काटौ, जब आशारूपी आवरण दूर भया,

तब पूर्णमासीके चंद्रमावत् अंतर शीतल हो जावैगा, तैसे यह पुरुष भी तीन तापोंते मुक्त शीतल हो जाता है, जैसे पर्वत होकरि अग्नि लगै, तिसके ऊपर जलकी महत् वर्षा होवै, तब तप्ततातै मुक्त हुआ शांतिवान् होता है ॥ हे रामजी! जैसे केसरी सिंह पिंजरेको तोडिकरि निकसता है, तैसे ज्ञानवान् पुरुष भोगवासनाके बंधनको तोरि डारता है ॥ हे रामजी! आत्माके साक्षात्कार हुए परमानंदको प्राप्त होता है, जैसे रंकको त्रिलोकीके राज्य मिलनेकरि आनंदकी प्राप्ति होवै, तैसे ज्ञानवान्को आनंद प्राप्त होता है, परम निर्मल लक्ष्मी करि शोभता है, जब इसके हृदयसों आकाशरूपी मैल जाता है, तब जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल शोभता है, तैसे शोभता है॥ हे रामजी! ज्ञानवान् पुरुष अपने आपविषे नहीं समावता है, जैसे महाकल्पका समुद्र नहीं समावता अरु जैसे मेघ जलको त्यागिकरि मौन हो जाता है, तैसे ज्ञानवान् आशाको त्यागिकरि आत्ममौन हो जाता है, जैसे अग्नि लकड़ीको जलाइकरि धुंवाते रहित अपने आपविषे स्थित हो जाता है, तैसे चित्तकी वृत्तिते रहित हुआ आत्मपदविषे निर्वाण हो जाता है, जैसे दीपक निर्वाण हो जाता है, तैसे चित्त निर्वाण हुआ परमानंदको प्राप्त होता है, जैसे अमृतको पानकरि पुरुष आनंदवान् होता है, तैसे परमानंदकरि पूर्ण अपने आपविषे प्रकाशताहै, जैसे वायुते रहित दीपक स्थानविषे प्रकाशता है, जैसे शुद्ध मणि अपने प्रकाशकरि प्रकाशता है, तैसे ज्ञानवान् अपने आपकरि प्रकाशता है, मैं सर्वात्मा हौं, सर्वगत हौं, ईश्वर हौं, सर्वाकार हौं, निराकार हौं, केवल चिदानंद आत्मा हौं, सदा अपने आपविषे स्थित हौं॥ हे रामजी! ऐसे ज्ञानी अपने आपको जानता है, अरु पूर्व दिन व्यतीत हो गया है, तिनको हँसता है, मैं तौ अनंत आत्मा हौं, मायाके भ्रमकरि आपको कर्ता भोक्ता मानता था॥ हे रामजी! ऐसे जानिकरि राग द्वेषते रहित परमशांतिको प्राप्त होता है, उसके ताप सब निवृत्त हो जाते हैं, अरु सदा आत्माविषे प्रीति रहती है, चित्त सर्व ओरते पूर्ण हो जाता है, अरु सबको पवित्र करनेहारा होता है, कामरूपी चक्रते मुक्त होता है, जन्मोंके बंधन काटि डारता है, राग द्वेष आदिक द्वंद्व अरु सर्व भयते मुक्त होता है, अविद्यारूपी संसारसमुद्रको तरि जाता है, उत्तम लक्ष्मीको प्राप्त होता है.

अर्थ यह कि; परमपदको प्राप्त होता है, बहुरि संसारके जन्ममरणको नहीं प्राप्त होता, अरु कर्मोंका अंत हो जाता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान्‌की क्रियाको देखिकरि और वांछा सब करते हैं, परंतु औरोंकी क्रियाको देखिकरि ज्ञानवान् किसीकी वांछा नहीं करता, अरु सबको आनंदवान् करता है, अरु आप किसीकरि आनंदवान् नहीं होता, न किसीको देताहै, न लेता है, न किसीकी स्तुति न निंदा करता है, न किसी उत्तम पदार्थोंको पाइकरि उदय होता है, न अनिष्टको पाइकरि नष्ट होता है, हर्षशोकते रहित है, अरु सर्व फलका त्याग किया है, सर्व उपाधिते रहित है, कर्तृत्व भोक्तृत्वते आपको न्यारा मानता है, ऐसा जो पुरुष है, सो जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी ! जब तू सर्व इच्छा त्यागकरि मौन करै है, तब निर्विशेष भावको प्राप्त होवैगा, जैसे मेघ जलका त्यागकरि मौनभावको प्राप्त होता है, तैसे तू मोक्षभावको प्राप्त होवैगा ॥ हे रामजी ! जैसे कामी पुरुष स्त्रीको कंठ लगायकरि आनंदवान् होता है, तिसको ऐसा आनंद नहीं होता, जैसा आनंद निर्वासनिक पुरुषको होता है, अरु फूलगुच्छेकरि ऐसा वसंतऋतु नहीं शोभता, जैसे उदारबुद्धि आत्मा मौनवान् शोभता है, अरु हिमालय पर्वतविषे प्राप्त हुआ भी ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा निर्वासनिक पुरुषका मन शीतल होता है, मोतियोंकी मालाकरि अरु केलेके वनको प्राप्त हुआ ऐसे सुखको नहीं पाता, अरु चंदनोंके लेप करनेहारा ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा शीतल निर्वासनिक मन होता है, अरु चंद्रमाको स्पर्शकरि ऐसा शीतल नहीं होता, जैसा निर्वासनिक पुरुष शीतल होता है, चंद्रमा बाहरकी तप्तता मिटाता है, परंतु अंतर तप्तताको निवृत्त नहीं करता, अरु निराशताकरिकै अंतरकी तप्तता मिट जाती है, परम शांतिको प्राप्त होता है, जैसी शीतलता निर्वासनिक पुरुषके संगकरि होती है, तैसी और किसी उपायते नहीं प्राप्त होती ॥ हे रामजी ! ऐसा सुख स्वर्गविषे नहीं प्राप्त होता, अरु सुंदर स्त्रियोंके स्पर्शकरि भी ऐसा सुख नहीं प्राप्त होता, जैसा सुख निर्वासनिकको प्राप्त होता है, निर्वासनिक पुरुष तिस सुखको प्राप्त होता है, जिस सुखविषे त्रिलोकीके सुख तृणवत् भासते हैं ॥ हे रामजी ! आशारूपी एक कर्जुएका वृक्ष है, तिसके काटनेको उपशमरूपी कुहाड़ा है, जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है, तिसको सब

पृथ्वी गोपदके समान तुच्छ भासती है, अरु मेरु पर्वत एक टूटे वृक्षसमान भासता है, अरु दिशा डव्बीके समान भासतीं हैं. काहेते कि, उत्तमपदको प्राप्त हुआ है, त्रिलोकीकी विभूति तृणकी नाईं तुच्छ देखता है, जो पुरुष निर्वासनिक हुआ है, सो जगत्को देखिकरि हँसता है, अरु कदाचित् जगत्के पदार्थोंकी कल्पना नहीं फुरती, तृणवत् जानिकरि जगत्को त्याग दिया है, अरु सदा आत्मतत्त्वविषे स्थित है, तिसको उपमा किसकी दीजे, तिस पुरुषकी उदय अस्त अहं त्वं आदिक कलना नष्ट हो गई है, केवल आत्मस्वभावको प्राप्त हुआ है, तिस ईश्वर आत्माको तोलि कौन सकै ? जब दूसरा उसके समान होवै, तब तोलै ॥ हे रामजी ! वह पुरुष सब संकटोंके अंतको प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! यह जगत् मिथ्या भ्रमरूप है; जैसे आकाशविषे दूसरा चंद्रमा भ्रमकरि भासता है, जैसे भ्रमकरि मरुस्थलविषे नदी भासती है, जैसे मद्यपानकरि नगर भ्रमता भासता है, तैसे यह मिथ्या जगत् भ्रमकरिकै भासता है, इसकी आशा मत कर, तू बुद्धिमान् पंडित है, मूर्खोंकी नाईं मोहको प्राप्त क्यों होता है ? यह मैं, यह मेरा अज्ञानकरिकै भासता है, इस कलनाको चित्तते दूर कर, यह वास्तव कछु नहीं, सब जगत् आत्मारूप है, नानात्व कछु है नहीं. जो सम्यक्दर्शी पुरुष है, सो जगत् एकरूप जानिकरि धैर्यवान् रहता है, खेदको कदाचित् प्राप्त नहीं होता ॥ हे रामजी ! जो पुरुष निर्वासनिक हुआहै अरु आत्मविचारकरि आत्मपदको प्राप्त हुआहे, तिसको देखिकरि मोहनेवारी माया भी भागि जाती है, निकट नहीं आती, जैसे सिंहके निकट मृग नहीं आता, तैसे ज्ञानवान्के निकट माया नहीं आती, सुंदर स्त्रियां अरु मणि कांचन आदिक धन अरु पत्थर काष्ठ तिसको तुल्य भासता है, भोगोंकरि उसको सुख नहीं होता, अरु आपदाकरि खेद नहीं होता, सदा ज्योंका त्यों रहताहे, जैसे पर्वत वायुकरि चलायमान नहीं होता, तैसे वह पुरुष सुख दुःखकरि चलायमान् नहीं होता, सुंदर बालक स्त्री उसके चित्तको खैंचि नहीं सकती, अरु कामदेवके बाण चलाय उसपर टूक टूक हो जाता है, राग द्वेष उसको खैंचि नहीं सकता, सदा आपको निराकार अद्वैत निष्क्रिय निर्गुण जानता है, अरु सुंदर बगीचे ताल वल्ली शय्या इंद्रियोंके विषयभोग अरु दुःख देनेहारे उसको

तुल्य हैं, रागद्वेषको नहीं प्राप्त करते, जैसे पर्वतविषे ऋतुअनुसारकरि मीठे कटु फल होते हैं, सो उसको किसीविषे रागद्वेष नहीं होता, अकस्मात् जो भोग आय प्राप्त होता है, तिसको भोगता है, परंतु हर्ष शोकवान् नहीं होता ॥ हे रामजी ! यथार्थदर्शी इष्ट अनिष्टविषे चलायमान नहीं होता, जैसे वसंतऋतुके आनेजानेविषे पर्वत सुखदुःखको नहीं प्राप्त होते कर्मइंद्रियोंकरि कर्म करता है. परंतु तिसविषे आसक्त नहीं होता है, बाह्य दृष्टिसों आसक्त भासता है, परंतु अंतर आसक्त नहीं होता, अरु जो बाह्य आसक्त नष्ट नहीं होता, परंतु अंतर देहविषे चित्त आसक्त है, सो मग्न हो डूबता है, जैसे शुद्धमणि चीकड़विषे दृष्ट आती है, तौ भी तिसको कलंक कछु नहीं अरु जो बीचते खोटी है, बाह्य उज्वल भी भासती है, तौ भी सकलंक है, तैसे जो चित्तकरि आसक्त है, सो आसक्त है, अरु जो चित्तभावकरि आसक्त नहीं सो आसक्त नहीं ॥ हे रामजी ! आत्मसत्ता सदा प्रकाशरूप है, अरु नित्य शुद्ध परम आनंद स्वरूप है, जिस पुरुषको अपने शुद्ध स्वरूपका ज्ञान है, तिसको विस्मरण नहीं होता ॥ हे रामजी ! शरीरसों अहंभाव जिसका उठिगया है, इंद्रियों करि कर्म करता है तौ करता भी नहीं करता, अरु जो देहविषे अहंभाव है, सो नहीं करता भी करता है, जैसे किसीको बांधव चिरकालते मिला बहुरि विस्मरण नहीं होता, तैसे अपना स्वरूप जिनने जाना है, तिसको विस्मरण नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिनको शुद्ध स्वरूपका सम्यक्ज्ञान होता है, तिनको भ्रांतिरूप जगत् नहीं भासता. जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है, जब भ्रम निवृत्त हुआ, तव ज्योंकी त्यों जेवरी भासती है, सर्प नहीं भासता, जैसे मरुस्थलविषे जल बुद्धि निवृत्त भई बहुरि जलबुद्धि नहीं होती, तैसे आत्माके जानेते देहभाव नहीं होता, जैसे पहाड़ते नदी उतरती है, सो बहुरि पहाड़पर नहीं चढ़ती, जैसे स्वर्णका खोट अग्निकारि जला हुआ बहुरि खोटा नहीं होता, चीकड़विषे डारिए तौ भी खोटा नहीं होता, तैसे जब हृदयकी चिद्ग्रन्थिटूटी तब गुणोंके व्यवहारविषे भी गांठ नहीं पडती. अर्थ यह कि, बंधमान नहीं होता, जैसे वृक्षते टूटा फल बहुरि नहीं लगता, तैसे जिसका देहाभिमान टूटा है, सो बहुरि नहीं होता है, अरु स्वरूपाविषे ही अभिमान होता है, जैसे लोहके हथोडेसाथ परका चूर्ण

किया, तव बहुरि नहीं फुरता, जिस पुरुषने अविद्याको जानाहै, सो बहुरि उसकी संगति नहीं करता, जैसे जिस ब्राह्मणने चंडालोंकी सभा जानी तव बहुरि उनकी संगति नहीं करते, तैसे जब आत्मविचारकरि मनको चूर्ण किया, तब बहुरि नहीं फुरता, जैसे जिस पुरुषने अविद्यारूप जगत्को जाना है, सो बहुरि जगत्के पदार्थोंविषे आसक्त नहीं होता ॥ हे रामजी ! विष जो मधुर जलसाथ मिला होवै, सो जबलग जाना नहीं,तबलग तिसको पान करता है, अरु जब उसको जाना तब बहुरि नहीं पान करता, तैसे जबलग इस संसारको ज्योंका त्यों नहीं जाना, तबलग इसके पदार्थोंकी इच्छा करता है,जब जाना कि, मायामात्र है, तब इसकी इच्छा नहीं करता ॥ हे रामजी ! सुंदर स्त्रियां जो नानाप्रकारके वस्त्रों भूषणसहित दृष्ट आतीं हैं, इनको जानताहै कि, यह असत् मांस रुधिर आदिककी पुतलियां बनीं हैं और कछु नहीं, ऐसे जानिकरि जो तिनकी इच्छा त्यागता है, सो निवृत्त हो जाता है, जैसे मूर्तिऊपर रंग नील पीत श्याम लिखे होते हैं, तैसे उसके वस्त्र अरु केश हैं. हे रामजी ! जिस पुरुषको आत्माका साक्षात्कार होता है, तिसको अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि नहीं होती, अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि तब होती है, जब वस्तुका विस्मरण होता है, सो तौ ज्ञानवान्को सदा स्वरूपका स्मरण है, तिसको अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि कैसे होवै, जिसको आत्मबुद्धि हुई है उसको विस्मरण नहीं होता, जैसे किसी पुरुषने गुड किसी पास रक्खा होवै, अरु वह खाय जावै, तौ उसको दंड आदिक कर्मकरि सकैगा, परंतु उसका रस दूर करनेको समर्थ नहीं, तैसे जिसको आत्माका अनुभव हुआ है, तिसको दूर करनेको कोऊ समर्थ नहीं ॥ हे रामजी ! जैसे परव्यसनीनारी होती है, किसी पुरुष साथ उसका चित्त लगता है, तब गृहका कार्य भी करती है, परंतु चित्त तिसका सदा उसविषे रहता है, तैसे ज्ञानवान् क्रिया करता है, परंतु तिसका चित्त सदा आत्मपदविषे रहता है, जैसे परव्यसनी नारीको अपना भर्ता दंड भी करता है, तौ भी स्पर्शका सुख उसके हृदयते दूर नहीं करि सकता, तैसे जिसको आत्मअनुभव हुआ है, तिसके दूर करनेको कोई समर्थ नहीं, देवता दैत्य दूर नहीं करि सकते तौ औरकी क्या वार्ता है, बडे जो सुख अथवा दुःखका अनुभव प्रवाह आनि पडै तौ भी तिसको

खंडन नहीं करि सकते कर्ता हुआ भी अकर्ता हुआ है, जैसे परव्यसनी नारी परपुरुषके संयोगकरि दुःख पाती है, परंतु इसको स्पर्शके सुखका अनुभव हुआ है, तिसके संकल्पकरि अनुभव अखंड करती है, तिसकरि उसको दुःख नहीं भासता, तैसे जिसको आत्मसुख प्राप्त भया है, तिसको दुःख सुख अपर कछु नहीं भासता ॥ हे रामजी ! सम्यक् ज्ञानकरि जिसकी अविद्या नष्ट भई है, सो दुःखोंको नहीं देखता, जो उसके अंग काटे, तौ भी दुःख नहीं होता शरीरके नष्ट हुए नष्ट नहीं होता, सुख दुःख उसके नष्ट हो गए हैं सदा आत्मपदविषे निश्चय रहता है, संकटवान् भी दृष्ट आता है, परंतु तिसको संकट कोऊ नहीं, वनविषे रहै, अथवा गृहविषे रहै व्यवहार करै अथवा समाधि करै वह सदा ज्योंका त्यों रहताहै, उसको खेद कष्ट किसी प्रकार नहीं होता ॥ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे निरास्पदमौनविचारो नाम एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ६९ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! राजा जनक राज्यव्यवहार करता रहा, परंतु आत्मपदविषे स्थित था, तिसकरि उसको कलंक न भया, सदा विगतज्वरही रहा, अरु तेरा प्रपितामह जो राजा दिलीपथा, सो भी सर्व आरंभोंको करता रहा, परंतु अंतर रागद्वेषको न प्राप्त भया, जीवन्मुक्त होके चिरपर्यंत पृथ्वीका राज्य राजा करत भया. अरु राजा अज नानाप्रकारके युद्ध राज्यव्यवहारकी पालना करत भया. अरु सदा जीवन्मुक्त स्वभावविषे स्थित भया. राजा मांधाता नानाप्रकारकी युद्धचेष्टा करता रहा, परंतु सदा परमपदविषे निश्चय रहा, कदाचित् मोहको प्राप्त न भया. अरु राजा बलि पातालविषे स्थित हुआ, महात्यागी राज्यव्यवहारको करता भी दृष्ट आया, परंतु स्वरूपके ज्ञानकरि सदा शांतरूप जीवन्मुक्त होकारि विचरता भया, अरु नभचर दैत्योंका राजा सदा नाना युद्ध आदिक क्रियाविषे रहा, देवतोंकेसाथ सदा विरोध रहा, परंतु हृदयविषे कछु ताप न भया, अरु इंद्रके युद्धविषे वृत्रासुर दैत्य मारा, परंतु सदा शीतल कदाचित् क्षोभको प्राप्त न भया, अरु दैत्योंका राजा प्रह्लाद पातालविषे राज्य करता रहा, परंतु हृदयविषे कछु क्षोभ न भया ॥ हे रामजी ! शंबर नामक दैत्य अपनी सृष्टिके रचनेको उदय भया, सो तिस रचनेविषे बंधमान न भया, सदा शांबरी मायापरायण भया अरु मायासाथ एक मायावीरूप

होकरि स्थित हुआ ॥ हे रामजी ! यह संसार जो शांबरीमायारूप है, तिसका शांबरी त्यागकरि अपने स्वरूपविषे स्थित रहे, अरु विष्णु भगवान् सदा दैत्योंको मारता है, युद्ध करता रहता है, अरु हृदयविषे अलेप बुद्धि है, तिसकरि सदा सुखी जीवन्मुक्त है. अरु मूसल नाम दैत्य विष्णुसाथ युद्धकरि शरीरको छांड़त भया, परंतु अंतर देहसाथ संबंध कछु न था, तिसकरि जीवन्मुक्त सुखी रहा, पिंडको न प्राप्त भया ॥ हे रामजी ! सर्व देवतोंका मुख अग्नि है, सो यज्ञलक्ष्मीको चिरकालपर्यंत भोगता है, परंतु ज्ञानवान् है, इसकरि क्षोभवान् नहीं होता, सदा शीतल रहता है, अरु देवता सदा चंद्रमाकी किरणोंते अमृत पान करते हैं, परंतु चंद्रमाको कछु क्षोभ नहीं होता, अरु देवतोंका गुरु बृहस्पति स्त्रीऊपर चंद्रमासाथ युद्ध करता भया अरु देवताके निमित्त नानाप्रकारके कर्म करता है, अरु रागद्वेषको नहीं प्राप्त होता, ताते जीवन्मुक्त है ॥ हे रामजी ! दैत्योंका गुरु शुक्रजी, सो दैत्योंके निमित्त सदा यत्न करता रहता है, अरु लोभीकी नाईं अर्थको चिंतवता है, परंतु जीवन्मुक्त है, जो अंतर सदा शीतल रहता है, कदाचित् खेदको प्राप्त नहीं होता, अरु पवन प्राणियोंके अंगोंको चिरकाल फेरता है, चेष्टा करता है, अरु खेदको प्राप्त नहीं होता ताते जीवन्मुक्त है, अरु ब्रह्मा सदा लोकोंको उत्पन्न करता है, अरु प्रलयपर्यंत इसकी क्रियाविषे रहता है, परंतु स्वरूपका साक्षात्कार है ताते जीवन्मुक्त है, अरु विष्णु भगवान् युद्धादिक द्वंद्वोंविषे रहता है, जरा मृत्युआदिक भावको प्राप्त होता है, परंतु सदा मुक्तस्वरूप है. अरु सदाशिव त्रिनेत्र हैं, अर्धांगधारी रहाहै, परंतु हृदयविषे संसक्त नहीं ताते जीवन्मुक्त है, अरु गौरी मोतियोंकी माला कंठविषे पहरती है, अरु त्रिनेत्रको सदा मालावत् कंठसाथ रखती है, परंतु अंतरते शीतल रहती है, ताते जीवन्मुक्त है, अरु स्वामि कार्तिक दैत्यसाथ युद्ध करता रहा, परंतु ज्ञानरूपी रत्नोंका समुद्र था, अंतरते शीतल रहा अरु सदाशिवका भृंगीगण अपना रक्त मांस माताको देत भया, परंतु धैर्यविषे रहा, खेदको न प्राप्त भया, नानाप्रकारकी क्रिया करता भया, परंतु जीवन्मुक्त है ताते सदा सुखी है. अरु नारद मुनि सदा मुक्त स्वभाव है, सदा जगत्की क्रियाजालविषे रहता है, परंतु क्षोभको नहीं प्राप्त भया, ताते जीवन्मुक्त है, अरु जीवन्मुक्त मन मौन जो

विश्वामित्र हैं, सो वेदोक्त कर्म कर्ता है, अरु फिरता रहता है, ताते जीवन्मुक्त है, अरु सूर्य भगवान् दिनको प्रकाश करता है, अरु फिरता रहता है, परंतु जीवन्मुक्त है, सदा सुखी रहता है, अरु यम सदा जीवोंको दंड करता रहता है, अरु क्षोभविषे रहता है, परंतु जीवन्मुक्त है, इंद्र कुवेरते आदिलेकारि त्रिलोकीविषे जीवन्मुक्त हैं, व्यवहारविषे शीतल हैं, कई मूढ शिलावत् हो रहे हैं, कई परमबोधवान् वनविषे जाय स्थित भये हैं, जैसे भृगु, भारद्वाज, विश्वामित्र, जाय स्थित भये हैं, अरु कई चिरकालपर्यंत राज्य पालना करते रहते हैं, जैसे जनक, मांधाता आदिक करते हैं, कई आकाशविषे बड़ी कांति धारिकारि बृहस्पति, चंद्रमा, शुक्र, सप्तर्षि, आदिक जाय स्थित भये हैं, कई स्वर्गविषे अग्नि, वायु, कुवेर, यम, नारदादिक जाय स्थित भये हैं,कई जीवन्मुक्त पातालविषे प्रह्लादादिक जाय स्थित भये हैं, कई देवतारूप धारिकारि आकाशविषे स्थित हैं, कई मनुष्यरूप धारिकारि मनुष्यलोकविषे स्थित हैं, कई तिर्यक् योनिविषे स्थित हैं, उनको सर्वथा सर्व प्रकार सर्वविषे सर्वात्मारूप भासता है, इतर कछु नहीं, नानाप्रकारका व्यवहार है, सो भी अद्वैतकारि किया है ॥ हे रामजी ! दिव्य विष्णु अरु धाता अरु सर्व ईश्वर अरु शिव आदिक सब आत्माके नामहैं, अरु वस्तुरूपविषे जो अवस्तु है, अरु अवस्तुविषे जो वस्तु है, सो अवस्तुसों वस्तु तब निकसती है, जब युक्ति होती है, अरु वस्तुसों अवस्तु भी युक्तिकारि दूर होती है, जैसे अवस्तुरूप रेत है, तिससों स्वर्ण युक्तिकारि निकसता है, अरु वस्तुरूपी सोनेसों मैल युक्तिकारि दूर होता है, तैसे अवस्तुरूप देहादिकोंविषे वस्तुरूप आत्मा शास्त्रोंकी युक्तिकारि पाता है. अरु वस्तुरूप जो आत्मासों दृश्यरूप अवस्तु भी शास्त्रोंकी युक्तिकारि दूर होती है ॥ हे रामजी ! जो पापते भय करता है, सो जब धर्मविषे प्रवर्तता है, तब निर्भय होता है, तैसे दुःखोंके भय करिकै जीव आत्मपदकी ओर प्रवर्तता है, तब भावनाके वशते असत्सों सतको पाता है, ध्यान अरु योग भी शून्य हैं परंतु यत्नके बलकारि तिससों सत् पाता है, अरु जो असत है, सो उदय होकारि सत् भासती है, जैसे बाजीगरकी बाजीसों शशेके सींग भासि आते हैं, तैसे आत्माविषे असद्रूप जो जगत् सो अज्ञानकारि दृढ हो भासता है, परंतु कल्पके अंतविषे यह भी नष्ट हो

जाता है ॥ हे रामजी ! यह जो सूर्य चंद्रमा इंद्रादिक हैं, तिनके नाम भिन्न रहैंगे अरु बडे सुमेरु आदि पर्वत अरु समुद्र आदिक सब नाश हो जावैंगे; जेते कछु भाव पदार्थ तुझको भासते हैं, उत्तम मध्यम कनिष्ठ सो सब नाश हो जावैंगे, सब मायामात्र हैं, कोई नहीं रहेगा, ऐसे विचार करिके इनके भावअभावविषे हर्ष शोक मत कर, अरु समताभावको प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! जो असत् है, सो सत्यकी नाईं भासता है, अरु जो सत् है सो असत्की नाईं भासता है, ताते यथार्थ विचारकरि सत्रूप आत्मपदविषे स्थित होहु, अरु असत्रूप जगत्की आस्थाको त्यागि समताभावको ग्रहण कर, इस लोकविषे जो अविवेकमार्गविषे विचरता है सो मुक्त नहीं होता, इस प्रकार कोटि जीव संसारसमुद्रविषे डूबते हैं, अरु जो विवेकविषे प्रवर्तता है सो मुक्त होता है ॥ हे रामजी ! जिसका मन क्षय हुआ है, तिसको मुक्तरूप जान, अरु जिसका मन क्षय नहीं भया, सो बंधन विषे है, ताते जिसको सर्व दुःखोंते मुक्तिकी इच्छा होवै सो आत्मविचार करै तिसकरि सर्व दुःख नाश हो जावैंगे ॥ हे रामजी ! दुःखोंका मूल चित्त है, जबलग चित्तहै, तबलग दुःख है जब चित्त नष्ट हो जाता है, तब दुःख सब मिटि जाते हैं ॥ हे रामजी ! जब आत्मज्ञान होता है तब चित्तका अभाव हो जाता है, अरु दुःख सब मिटि जाते हैं, अरु राग इच्छा सब भय मिटि जाते हैं केवल शांतरूप होता है, जनक आदिक जो जीवन्मुक्त हुए हैं, सो निराग निःसंदेह होकरि महाबोधवान् व्यवहार भी करते रहे, परंतु सदा शीतलचित्त रहे हैं, ताते तू भी विवेककरि चित्तको लीन कर, हलोहर बटा पत्थर अरु स्वर्णसम जीवन्मुक्त होकरि विचर ॥ हे रामजी ! मुक्ति भी दो प्रकारकी है, एक जीवन्मुक्ति है, एक विदेहमुक्ति है; जो पुरुष सर्व पदार्थोंविषे असंसक्त है, अरु मन शांतभावको प्राप्त हुआ है, सो मुक्त कहाता ह, अरु जिस पुरुषका सर्व पदार्थोंका ज्ञानकरि स्नेह नष्ट भया है, अरु व्यवहार करता दृष्ट आता है तो भी शीतलचित्त है, सो जीवन्मुक्त कहाताहै, जो पुरुष सर्व भाव अभावपदार्थोंको त्यागिकरि केवल अद्वैततत्त्वको प्राप्त हुआ है, अरु शरीर आदिक क्रिया कोऊ दृष्ट नहीं आती सो विदेहमुक्त कहाता है, अरु जो तीसरा है, जिसका स्नेह पदार्थोंते दूर हुआ नहीं सो बंध कहाता है, मुक्तिके अर्थ भी यत्न करता है, जब युक्तिपूर्वक

यत्न करता है, तव दुस्तर भी सुगम हो जाता है, अरु जो युक्तिते रहित यत्न करता है, तिसको गोपद भी समुद्र हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिनने आत्मकारि आत्माविचार किया है, तिनको विस्तृत जगत् समुद्र गोपद हो जाता है, अरु अज्ञानीको गोपद भी दुस्तर हो गया है, कोऊ इष्ट अनिष्ट अल्प भी आनि प्राप्त होता है; तिसविषे डूबि जाता है, निकस नहीं सकता, तिसको गोपद भी समुद्र है, अरु ज्ञानीको अत्यंत विभूति ऐश्वर्य आनि प्राप्त होवै, अथवा विपर्यय तिसका अभाव हो जावै, तौ भी तिसविषे रागद्वेषकारि नहीं डूबता ॥ हे रामजी ! जिसको कछु प्राप्ति होवै सो अपने प्रयत्नके बलकरि होती है, जो कोऊ प्रधान हुआ है, सो प्रयत्नरूपी वृक्षके फलकारि हुआ है, आत्मपदकी प्राप्ति भी प्रयत्नरूपी वृक्षका फल है ताते और उपाय त्यागिकारि आत्मपदकी प्राप्तिका प्रयत्न कर ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे मुक्तामुक्तविचारो नाम सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जेती कछु जगज्जाल है, सो सब आत्मा ब्रह्मका आभासरूप है, अज्ञानकरि स्थिरताको प्राप्त हुआ है, विवेककरि शांति हो जाती है, ब्रह्मरूपी समुद्रविषे जगत्‌रूपी आवर्त फुरते हैं तिनकी संख्या करनेको कोऊ समर्थ नहीं, आत्मरूपी सूर्यके जगत्‌रूपी त्रसरेणु हैं ॥ हे रामजी ! असम्यक् दर्शन जगत्‌की स्थितिका कारण है, अरु सम्यक् दर्शनकारि शांत हो जाता है, जैसे मरुस्थलविषे असम्यक् दर्शनकारि जल भासता है, सम्यक् दृष्टिकारि अभाव हो जाता है ॥ हे रामजी ! संसाररूपी समुद्र अपार घोररूप है, सो शास्त्र युक्ति अरु आत्मअभ्यासाविना तरना कठिन है मोहरूपी जलकारि पूर्ण है अरु मरणरूपी आवर्त है अरु पुण्यरूपी जग है, अरु वडवाग्नि इसके अंगोंविषे नरक समान है, अरु तृष्णारूपी घूमरघेर है, अरु इंद्रियां मनरूपी तंदुए मच्छहैं, क्रोधरूपी सर्प हैं, तिनविषे जीवरूपी नदियां हैं, सो प्रवेश करती हैं, जन्ममरणरूपी वृत्तचक्र हैं, तिनको जो तरि जाता है, सो पुरुष है, अरु स्त्रियां जो सुंदर लगती हैं, सो महाबलवंत हैं, नेत्र जिनके पहाड़के खैंचनेविषे समर्थ हैं कमलकीनाईं, अरु दंत मोतियोंकी नाईं हैं, होठ तरियांवत् हैं, इत्यादिक जो सुंदर अंग हैं, सो महादुःखके देनेहारे हैं, वडवाग्निकी नाईं हैं, जो इनको तरि जाता है, सोई पुरुष है ॥ हे रामजी ! जो जहाज अरु मल्लाह

होते हैं, तौ भी इनको नहीं तरता, तिसको धिक्कार है, जहाज अरु मल्लाह कौन हैं, सो श्रवण कर, मनुष्यशरीराविषे कछु विचारसहित बुद्धि है, सो जहाज है, अरु संतरूपी मल्लाह हैं, इनको पाइकारि जो संसारसमुद्रको नहीं तरते तिनको धिक्कार है, ऐसे संसारसमुद्रको ग्रहणकारि जो तरिगया है, तिसको पुरुष कहते हैं ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने आत्मविचारविषे बुद्धिको लगाई है, सो तरि जाता है, अन्यथा तरि नहीं सकता, जिसको आत्मअभ्यास दृढ़ भया है, सो तरनेको समर्थ होता है ॥ हे रामजी ! प्रथम आर्जव सो ज्ञानवान् पुरुषोंकेसाथ विचार अरु बुद्धिकारि संसारसमुद्रको देखौ, जब तैंने इसको ज्योंका त्यों जाना तब तू विलासक्रीडा करनेयोग्य होवैगा ॥ हे रामजी ! तू तौ भगवान् है, परंतु वोधके विचारकारि संसारसमुद्रको तरि जाउ, तू तौ जवान है, तेरे पाछे और तेरे स्वभावको विचारकारि संसारसमुद्रको तरि जावैंगे, अरु जो इस शुभ मार्गको त्यागिकारि विषयमार्गको धारते हैं, सो संसारसमुद्रविषे डूबे हैं ॥ हे रामजी ! यह जो विषयभोग हैं, सो विषरूप हैं, जो इनको सेवैगा सो नष्ट होवैगा, परंतु जिसको ज्ञान प्राप्त हुआ है तिसको यह जैसे गरुड़मंत्र पढ़नेवालेको सर्प दुःख नहीं दे सकते, तैसे दुःख दे नहीं सकते, जिसका परिणाम शुद्ध हुआ है, सो विभूतिवान् है, बल वीर्य तेज यह तीनों तत्त्वके साक्षात्कारकारि चढ़ि आते हैं, जैसे वसंतऋतुके आएते रस फूल फल सब सुंदर हो आते हैं ॥ हे रामजी ! जो ज्ञानकी धर्म लक्ष्मी प्राप्त भई सो पूर्ण अमृततुल्य है, शीतल शुद्ध सम प्रकाशरूप है, लक्ष्मीको पाइकारि विदितवेद स्थित हो रहते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संसारसागरयोगोपदेशो नाम एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥ राम उवाच ॥ हे मुनीश्वर ! संक्षेपते तत्त्ववेत्ताके लक्षण बहुरि कहौ, जिनको तत्त्वका चमत्कार हुआ है, तिनकी उदार वाणीकारि वृत्ति कहौ, ऐसे कौन हैं, जो तुम्हारे वचन सुनते तृप्त होवैं ? ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तके लक्षण मैं तुझको बहुत प्रकार आगे कहे हैं, बहुरि भी सुन ॥ हे महाबाहो ! संसारको ज्ञानवान् सुषुप्तिकी नाईं जानताहै, अरु सब ईषणा तिसकी नष्ट हो गई हैं, अरु सब जगतको आत्मारूप देखता है, केवल भावको प्राप्त होता है, अरु संसार सुषुप्तिरूप हो जाता है, आत्मानंदविषे घूर्म

रहता है, देता है, परंतु अपने जाननेकारि किसीको नहीं देता, अरु लोक दृष्टिकारि प्रत्यक्ष हाथोंहाथ ग्रहण करता है, परंतु अपनी दृष्टिकारि कछु नहीं लेता, ऐसा जो आत्मदर्शी ज्ञानवान् उदार आत्मा है, सो यंत्रकी पुतलीवत् चेष्टा करता है, जैसे यंत्रकी पुतली अभिमानते रहित चेष्टा करती है, तैसे ज्ञानवान् अभिमानते रहित चेष्टा करताहै, देखता है, हँसता है, लेता है, देता है, परंतु अंतरते सदा शीतलबुद्धि रहता है, भविष्यका कछु विचार नहीं करता, अरु भूतका चिंतवन नहीं करता, अरु वर्त्तमानविषे स्थिति नहीं कर्त्ता, सर्व कार्योंविषे अकर्त्ता है, संसारकी ओरते सोई रहा है, आत्माकी ओरते जागृत है, अंतरते सर्वका त्याग किया है, बाह्य सर्व कार्योंको करता है, अंतर किसी पदार्थकी इच्छा नहीं, अरु बाह्य जैसे प्रकृत आचार आनि प्राप्त होता है, अभिमानते रहित तैसे करता है, दोष किसीविषे नहीं करता, सुखदुःखविषे पवनकी नाईं होताहै, भ्रमको त्यागिकरि सर्व कार्य कर्मोंको करता है, उदासीकी नाईं, न किसीकी वांछा है, न किसीविषे खेदवान् है, बाह्यते सब कछु कर्त्ता दृष्ट आवै, अंतरते सदा असंग है ॥ हे रामजी ! भोक्ताविषे भोक्ता है, अभोक्ताविषे अभोक्ता है, मूर्खोंविषे मूर्खवत् स्थित है, बालकोंविषे बालकवत् स्थित है, वृद्धविषे वृद्धवत्, धैर्यवान्विषे धैर्यवान् स्थित है, सुखविषे सुखी है, दुःखविषे धैर्यवान् है, अरु सदा पुण्यकर्त्ता बुद्धिवान् है, सदा प्रसन्न मधुर वाणीसंयुक्त है, अरु अंतरते सदा तृप्त है, दीनता तिसकी निवृत्त भई है, सर्वथा कोमलभाव है, चंद्रमाकी नाईं शीतलहै, पूर्ण शुभ कर्म करनेविषे कछु अर्थ नहीं, अशुभविषे कछु पाप नहीं, ग्रहणविषे ग्रहण नहीं, न त्यागविषे त्याग है, न बंध है, न मुक्त है, न आकाशविषे कार्य है, न पातालविषे कार्य है, यथावस्तु यथादृष्ट आत्माको देखता है, द्वैतभाव तिसको कछु नहीं फुरता, अरु बंध मुक्तके निमित्त कछु कर्तव्य नहीं, सर्व संदेह सम्यक्ज्ञानकारि जलि गए, जैसे पेरीते मुक्त हुआ पक्षी आकाशमें उड़ताहै, तैसे शंकाते रहित चित्त उनका आत्मआकाशको प्राप्त हुआ है ॥ हे रामजी ! जिसका मन संसारभ्रमते मुक्त हुआ है, अरु समरस आत्मभावविषे स्थित भया है, तिसको इष्टअनिष्टविषे कछु राग द्वेष नहीं होता, आकाशकी नाईं सबविषे सम रहता है, जैसे पिंगुडेविषे बालक अभिमानते रहित

अंगोंको हिलाता है, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा अभिमानते रहित होती है, जैसे मद्यपान करनेवाला उन्मत्त हो जाता है, तैसे आत्मानंद विषे ज्ञानी घूर्म हो जाता है, द्वैतकी संभाल तिसको कछु नहीं, हेयोपादेय बुद्धिते रहित होता है॥ हे रामजी! सर्वको सर्व प्रकार ग्रहण करता है, अरु त्याग भी करताहै, परंतु अंतरते ग्रहण त्याग कछु नहीं करता, जैसे बालकोंको ग्रहणत्यागकी बुद्धि नहीं होती, तैसे ज्ञानीको नहीं होती, उसको सर्व कार्योंविषे राग द्वेष नहीं फुरता, जगत्‌के पदार्थोंको न सत् जानिकरि ग्रहण करता है, न असत् जानिकरि त्याग करता है, सर्वविषे एक अनुस्यूत आत्मतत्त्व देखता है, न इष्टविषे सुखबुद्धि करता है, न अनिष्टविषे दोषबुद्धि करता है॥ हे रामजी! जो सूर्य शीतल हो जावै, अरु चंद्रमा उष्ण हो जावै, अग्नि अधोको धावै, तौ भी ज्ञानीको कछु आश्चर्य नहीं भासता, वह जानता है, सब चिदात्माकी शक्ति फुरती है, न किसीपर दया करता है, न अदया है, न लज्जा करता है, न अलज्जा करता है, न दीन होता है, न उदार होता है, न सुखी होता है, न दुःखी होता है, न हर्ष है, न उद्वेग है, सर्व विकारोंते रहित शुद्ध अपने आपविषे स्थित है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे निर्मल भावविषे स्थित है, जैसे आकाशविषे अंकुर नहीं उदय होता, तैसे उसको राग द्वेष नहीं उदय होते॥ हे रामजी! ऐसा पुरुष सुखदुःखको कैसा ग्रहण करै, उसको जगज्जाल ऐसे भासता है, जैसे जलविषे तरंग होता है, ऐसे जानिकरि तू भी अपने स्वभावविषे स्थित होउ॥ हे रामजी! स्वप्नविषे एक निमेषकरि स्वप्नसृष्टि फुरि आती है, अरु क्षणविषे नष्ट हो जाती है, तैसे जागृतविषे सृष्टि उपजि आती है, अरु लीन हो जाती है, जेती कछु इच्छा अनिच्छा सुख दुःख शोक मोह आदिक विकार हैं, सो सब मनविषे फुरते हैं, जहां मन होता है, तहां विकार भी होता है, जैसे जहां समुद्र होता है, तहां तरंग भी होता है, तैसे जहां मन होताहै, तहां विकार भी होता है, जहां चित्तका अभाव है, तहां विकारोंका भी अभाव है, जबलग चित्त फुरता है, तबलग जगद्भ्रम होता है, जब विचाररूपी सूर्यके तेजकरि मनरूपी बर्फका पुतला गलिगया, तब आनंद हुआ, तब सुखदुःखकी दशा शांत हो जाती है, जब सुख दुःखका अभाव हुआ, तब ग्रहण त्याग मिटि जाता है, इष्टअनिष्ट

वांछित नष्ट हो जाते हैं; जब यह नष्ट हो जाते हैं, तब शुभ अशुभ भी नहीं रहता, जब शुभ न रहै, तब रमणीय अरमणीय भी नष्ट हो जाता है, अरु भोगोंकी इच्छा भी नष्ट हो जाती है, जब भोगोंकी इच्छा नष्ट हो जाती है, तब मन भी निराशपदविषे लीन हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब मूलसहित मन नष्ट भया, तब मनविषे जो संसारके संकल्प सो कहां रहैं, जैसे तिलोंके जलेते तेल नहीं रहता, तैसे मनविषे संकल्प विकल्प नहीं रहते; तब केवल शांत आत्मा शेष रहता है, जैसे मंदराचलके क्षोभ मिटेते क्षीरसमुद्र शांतिवान् होता है, तैसे चित्त शांत होता है ॥ हे रामजी ! ताते भावविषे अभावकी भावना दृढ करहु, अरु स्वरूपका अभ्यास करहु, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, तैसे कलनाको त्यागिकरि महात्मा पुरुष निर्मल हो जाता है ॥ इतिश्रीयोवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तवर्णनं नाम द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे जलविषे द्रवताकरिकै चक्र आवृत होते हैं, सो असतही सत् होकरि भासते हैं, तैसे चित्तके फुरनेकरि असत् जगत् सत् हो भासता है, जैसे नेत्रोंकें दूखनेकरि आकाशविषे तरुवरे मोरके पुच्छवत् मुक्तमाला हो भासते हैं, सो असतही सत् भासते हैं, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है जैसे बादलोंके चलनेकरि चंद्रमा धावता दृष्ट आता है, तैसे चित्तके फुरणेकरि जगत् भासता है ॥ रामउवाच ॥ हे भगवन् ! जिसकरि चित्त फुरता है, अरु जिसकरि अफुर होता है सो प्रकार कहौ, जिससे तिसका उपाय करौं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जैसे बर्फविषे शीतलता होती है, अरु तिलोंविषे तेल होता है, अरु फूलोंविषे सुगंध होता है, अग्निविषे उष्णता होती है, तैसे चित्तविषे फुरना होता है, चित्त अरु फुरना दोनों एक वस्तु अभेद हैं, दोनोंविषे जब एक नष्ट होवै, तब दोनों नष्ट हो जावैं, जैसे शीतल अरु श्वेतताके नष्ट हुए बर्फ नष्ट हो जाता है, तैसे एकके नाश हुए दोनों नाश हो जाते हैं, सो चित्तके नाशके दो क्रम हैं, योग अरु ज्ञान, योग कहिए चित्तकी वृत्तिका निरोध करना अरु ज्ञान कहिए सम्यक् विचरना ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वृत्तिका निरोध किस युक्तिकरि होता है, प्राण अपान और पवनका रोकना कैसे होता है, जिसयोगकरि अनंत सुखसंपदा प्राप्त होती है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥

हे रामजी ! इस देहविषे जो नाड़ी हैं, तिनविषे प्राणवायु फिरता है, जैसे पृथ्वी ऊपर नदियोंका जल फिरता है, सो प्राणवायु एक है, स्पंदके वशते नानाप्रकारकी विचित्र क्रियाको प्राप्त होता है, तिसकरि अपान आदिक संज्ञाको पाता है, योगीश्वर कल्पते हैं, जैसे पुष्पविषे सुगंधि अभेदरूप है, अरु बर्फविषे श्वेतता अभेद है, आधार आधेय एकरूप है, तैसे प्राण अरु चित्त अभेदरूप है, जब अंतर प्राणवायु फुरता है, तब चित्तकला फुरती है, फुरिकरि संकलपके सन्मुख होती है, तिसका नाम चित्त कहाता है, जैसे जल द्रवीभूत होता है, तिसविषे लहरीचक्र फुरि आते हैं, तैसे प्राणों करि चित्त फुरि आता है, चित्तके फुरनेका कारण प्राणवायु है, जब प्राणवायुका निरोध होता है, तब निश्चयकरि मन भी शांत होता है, सो मनके लीन हुए, संसार भी लीन हो जाता है, जैसे सूर्य प्रकाशके अभाव हुए रात्रिविषे मनुष्योंका व्यवहार शांत हो जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! यह जो दिन अरु रात्रि निरंतर आगमन करते हैं, देहरूपी ग्रहविषे प्राणवायुका रोकना किसप्रकार होता है ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! संतजनोंका संग अरु सत् शास्त्रका विचार, अरु विषयते वैराग्य तिसकरि योग्य अभ्यास होता है, प्रथम जगतविषे असतबुद्धि करनी अरु वाछित जो अपना इष्ट देव है, तिसका ध्यान करना, जब चिरकाल ध्यान करता है तब एक तत्त्वका अभ्यास होता है, तिसकरि प्राणोंका स्पंद रोका जाता है, रेचक पूरक कुंभक जो प्राणायाम हैं, जब अखेदाचित्त होकरि अभ्यास दृढ करता है, अरु एकध्यान संयुक्त होता है, तिसकरि भी प्राणोंका स्पंद रोंका जाता है; उकारका उच्चार करना, ऊर्ध्व तिसकी जो सूक्ष्म ध्वनी होती है, प्रथम शब्द बड़ी ध्वनिसों होता है, सूक्ष्मध्वनि शेष रहती है, तिसविषे चित्तकी वृत्तिको लगावनी, तब सुषुप्तिरूप अवस्थाविषे वृत्ति तद्रूप हो जाती है, तब प्राणस्पंद रोंका जाता है, अरु रेचक प्राणायाम जो करता है, तिसके अभ्यासकरि विस्तृत प्राणवायुसों शून्यभाव आकाशविषे जाय लीन होता है, तब प्राणस्पंद रोका जाता है, अरु कुंभककरि जो प्राणवायुको अभ्यासके बल स्थित करना, तब प्राणवायु रोका जाता है, अरु तालुमूलसाथ यत्नसों जिह्वाको ताल घंटासाथ लगानी, इस खेचरी मुद्राकरि वायु ऊर्ध्वरंध्रको जाता

है, ऊर्ध्वरंध्रविषे गया भी प्राणवायुका स्पंद रोका जाता है, अरु जो द्वादश अंगुलपर्यंत नासिकाके अग्रविषे अपानरूपी चंद्रमाका निर्मल स्थान आकाशमें है, तिसका देखना ज्योंका त्यों होवै, तौभी प्राणस्पंद रोका जाता है, तालुके द्वादश अंगुल ऊर्ध्वरंध्रका अभ्यास होवै, तिसके अंतविषे जब प्राणोंको लगावै, तब तिस संवित्‌विषे प्राणोंका फुरणा नष्ट हो जाता है, अरु जो भवमध्य त्रिपुटीविषे और प्रकाशको त्यागिकरि तिसविषे चेतनकला रहती है तहां वृत्तिको जोड़ै वृत्तिके जोड़ेते प्राणकला रोकी जाती है, अरु जो सर्व वासनाको त्यागिकरि हृदय आकाशविषे चेतनसंवित्‌का ध्यान करै, तौ भी चिरकालके अभ्यासकरि ऐसे प्राणस्पंद रोका जाता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जगत्‌के भूतोंका हृदय किसको कहते हैं, जिस महाआदर्शविषे सर्व पदार्थ प्रतिबिंबित हो जाते हैं ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जगतके भूतके दो हृदय हैं, एक ग्रहण करने योग्य है, एक त्यागने योग्य है, तिसका भेद सुन, नाभिते जो देहविषे दश अंगुल ऊर्ध्व हैं सो त्यागने योग्य है परिच्छिन्न भाव करिकै देहके एक स्थानविषे स्थित हैं, अरु तिसविषे जो संवित्‌मात्र ज्ञानस्वरूप अनुभवकरि प्रकाशता है, सो मनुष्यको ग्रहण करने योग्य है, जो अंतर बाहिर व्याप रहा है, अरु वास्तव अंतर बाहिरते भी रहित है, सो प्रधान हृदय है, अरु सर्व पदार्थोंका प्रतिबिंब धरनेहारा आदर्श है, सर्व संपदाका भंडार है, सो सर्व जीवोंका संवित हृदय है, एक अंगका नाम हृदय नहीं, जैसे जलविषे एक पत्थर पुरातन पड़ा होवै, सो जल नहीं हो जाता, तैसे संवित्‌मात्रके निकट संवित्‌मात्र तौ नहीं होता, यह जड़रूप है, आत्मा चेतन आकाश है, सो यह प्रधान हृदय है; ताते बलकरिकै संवित्‌मात्रकी ओर चित्तको लगावहु, तब प्राणस्पंद भी रोका जावैगा ॥ हे रामजी ! यह प्राणोंका रोकना मैंने तुझको कहा है, और भी शास्त्रोंविषे अनेक प्रकारकरि कहाहै जिस जिसप्रकार गुरुके मुखते श्रवण किया है; तिसी प्रकार अभ्यास करै, तब प्राणोंका निरोध होता है, गुरुके उपदेशते अन्यथा सिद्ध नहीं होता जिसको अभ्यासकरिकै निरोध सिद्ध भया है, सो कल्याणमूर्ति है, और कल्याणमूर्ति नहीं होता ॥ हे रामजी ! अभ्यासकरिकै प्राणायाम होता है, अरु वैराग्यकी दृढताकरिकै वासनायाम होता है ॥

अर्थ यह कि, वासना रोकी जाती है, जब दृढ अभ्यास करै, तब चित्त अचित्त हो जाता है ॥ हे रामजी ! भ्रुकुटीके दश अंगुलपर्यंत जो वायु जाता है, तिसका वारंवार जब अभ्यास करता है, तब क्षीण हो जाता है, अरु खेचरी मुद्रातै तालुसाथ जिह्वा लगाइकारिकै जो अभ्यास करै तौ भी प्राण रोके जाते हैं, इसके अभ्यासकरि चित्तकी व्याकुलता जाती रहती है, परम उपशमको प्राप्त होता है, यह पुरुष आत्मारामी होता है, सब शोक दूरि हो जाते हैं, अंतर आनंदकी प्राप्ति होती है, ताते तू भी अभ्यास कर ॥ जब प्राणस्पंद मिट जाता है, तब चित्त भी स्थित हो जाता है, तिसके पाछे जो पद है, सो निर्वाणरूप है ॥ हे रामजी ! जब प्राणस्पंद मिटि जाते हैं, तब चित्त भी स्थित हो जाता है, जब चित्त स्थित हुआ, तब वासना नष्ट हो जाती है, जब वासना नष्ट हो जाती है, तब मोक्षकी प्राप्ति होती है, जबलग चित्त वासनाकरि लपेटा है, तबलग जन्ममरणको देखता है, जब मन वासनाते रहित होता है, तब मोक्ष होता है ॥ हे रामजी ! प्राणवायुको रोककरि वासनाते रहित हुआ, जहां तेरी इच्छा होवै, तहां विचर, तुझको बंधन न होवैगा, जब प्राण फुरता है, तब मन उदय होता है, जब मन उदय हुआ, तब संसारभ्रम होता है, जब मन क्षीण होता है, तब संसारभ्रम नष्ट हो जाता है ॥ हे रामजी ! जब मनसों संसारकी वासना कलना मिटि जाती है, तब अशब्दपद प्राप्त होता है, तिसते यह सर्व है, अरु जो यह सर्व है, अरु जिसते न सर्व है, अरु जो न सर्व है, अरु जो न सर्वविषे है, जिसविषे न यह सर्व है, ऐसा जो निर्गुण तत्त्व है, सो सर्व कलनाके त्यागते प्राप्त होता है, तिसको उपमा किसकी दीजै ? आत्मा अविनाशी निर्विकल्प निर्गुणहै, यह जगत् नाशरूप संकल्पके रचित गुणरूप तिसको किस पदार्थसाथ दृष्टांत दीजै ? अर्थ यह कि, दूसरा कछु नहीं, जेते कछु स्वाद तिनको स्वादकर्ता वही है, अरु जेते प्रकाश हैं, तिनको प्रकाशकर्ता वही है, सर्वकलनाका कलनारूप वही है, जेते कछु पदार्थ हैं, तिन सबनका अधिष्ठानरूप वही है, सो चित्त अरु आवरणके दूर हुए प्राप्त होता है, अरु सर्व पदार्थोंकी सीमा वही है, ऐसा जो आत्मारूप चंद्रमा

शीतल है, जब तिसविषे बुद्धिवान् स्थित होता है, तब जीवन्मुक्त कहाता है, अरु सर्व इच्छा आश्चर्य नष्ट हो जाता है, अहं त्वं आदिक कल्पना मिटि जाती हैं, सर्व व्यवहार विस्मरण होता है, ऐसा जो मुक्त मन है; सो पुरुषोत्तम होता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे जीवन्मुक्तज्ञानबंधो नाम त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥ राम उवाच ॥ हे प्रभो ! योगीकी युक्ति तुमने कही, जिसकरि चित्त उपशम होता है, अब सम्यक् ज्ञानका लक्षण भी कृपा करि कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह निश्चय है कि आत्मा आनंदरूप, आदिअंतते रहित, प्रकाशरूप सर्व परमात्मा तत्त्वहै; इस निश्चयको सम्यक् ज्ञान बुद्धीश्वर कहते हैं, अरु यह जो घटपटादिक अनेक पदार्थशक्ति हैं, सो सब आत्मा परमानंदरूप हैं, तिसते इतर नहीं, ऐसा जो देखना है सो सम्यक् देखना है, सर्वात्मा है, नित्यशुद्ध है, परमानंदस्वरूप है, सदा अपने आपविषे स्थित है, ऐसा निश्चय सम्यक्ज्ञान है, अरु जो इसते इतर होवै, सो असम्यक् ज्ञान है ॥ हे रामजी ! सम्यक्दर्शीको मोक्ष है, असम्यक्दर्शीको बंधहै, तिसको आत्मा जगत्रूप भासता है, सम्यक्दर्शीको केवल आत्मा भासताहै जैसे जेवरीविषे असम्यक्दर्शीको सर्प भासताहै सम्यक्दर्शीको जेवरी भासतीहै सर्व संवेदन संकल्पते रहित शुद्ध संवित् परमात्मा है तिसको जो जानता है सो परमात्माके जाननेवाला बुद्धीश्वरहै, इसते इतर है सो अविद्या है, हे रामजी ! आत्मतत्त्व सदा अपने आपविषे स्थित है, तिसविषे द्वैतकलना कोई नहीं, ऐसा जो यथार्थदर्शी है, सोई सम्यक्दर्शी है, सर्व आत्मा पूर्ण है भावअभाव बंधमोक्ष कोई नहीं. न एक है, न द्वैत है, ब्रह्महीं अपने आपविषे स्थित है, जो सर्व चिदाकाश है, तौ बंध कौनको कहिये, अरु मोक्ष कौनको कहिये, ऐसा जिनको ज्ञान है, तिनको काष्ठ पाषाण ब्रह्माते चेंटीपर्यंत सब सम भासता है, अल्पमात्र भेद भी नहीं भासता, कल्पनाके सन्मुख कैसे होवै ॥ हे रामजी ! वस्तुके आदि अंत जो अन्वय व्यतिरेक करिके आत्मा सिद्ध होता है ॥ अर्थ यह जो पदार्थ है सो है, तौ भी आत्मसत्ताकारि सिद्ध होता है, अरु जो पदार्थका अभाव हो जाता है, तौभी आत्मसत्ता शेष रहती है तू तिस परायण होउ, जो अविनाशी अनुभव धारि तिसके विषे स्थित होउ वही अनुभवसत्ता जगत्रूप होकारि भासती है,

जरामरण आदिक जो नानाप्रकारके विकार वस्तुरूप भासते हैं, सो वस्तु अपने आपविषे फुरती है, जैसे जलविषे द्रवता करिकै नाना प्रकारके तरंग बुद्बुदे होते हैं, सो जलरूप हैं, इतर कछु नहीं तैसे चित्तके फुरनेकरिकै नानाप्रकारके पदार्थ भासते हैं, सो आत्मरूप है, इतर कछु नहीं, आत्मतत्त्वही अपने आपविषे स्थित है जब तिसविषे स्थित होता है, तब बहुरि दीन नहीं होता, जो पुरुष दृढ विचारवान् है, सो भोगोंकरि चलायमान नहीं होता जैसे मंद पवन करिकै मेरु पर्वत चलायमान नहीं होता, अरु जो अज्ञानी हैं विचारते रहित मूढ हैं, तिनको भोग ग्रासि लेते हैं, जैसे जलते रहित मच्छीको बगला ग्रासि लेता है अरु जिसको सर्व आत्माही भासता है, सो सम्यक्दर्शी पुरुष कहाता है वही मुक्तरूप है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे सम्यक्ज्ञानवर्णनं नाम चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो विवेकी पुरुष भोगोंके निकट आय प्राप्त होता है, तौभी इच्छा नहीं करता । काहेते कि, अर्थ बुद्धिही तिसविषे कछु नहीं, जैसे सुंदर कमलिनी चित्रकी लिखी हुईके निकट भँवरा आनि प्राप्त होता है, तौ भी इच्छा नहीं करता; तैसे विवेकी भोगोंविषे अर्थबुद्धि नहीं करता ॥ हे रामजी ! सुखदुःखकी प्राप्ति अरु निवृत्तिविषे इच्छा तबलग होती है, जबलग देहाभिमान होता है, जब देहाभिमान निवृत्त हुआ, तब कछु इच्छा नहीं, होती ॥ हे रामजी ! ममता करिकै दुःख होता है, जब रूपको नेत्र देखते हैं, तिसको इष्ट मानिकरि प्रसन्न होते हैं, अरु अनिष्ट मानिकरि दोष करते हैं, जैसे बलद भारवाहक चेष्टा करता है, तिसको लाभ टोटा कछु नहीं होता, जिसको उसविषे ममत्त्व होता है, वह लाभ टोटेका शोक करता है, तैसे यह ममत्व कारि इंद्रियोंके विषयोंमें हर्षशोकवान् होता है, जैसे गर्दभ कीचड़विषे डूबै, अरु राजा शोक करताहै कि, मेरे नगरका गर्दभ डूबा है, तैसे यह ममत्वकारिकै इंद्रियोंके विषयोंमें दुःख पाता है, नहीं तौ गर्दभ कीचड़विषे डूबेते राजाका क्या नष्ट होता है ॥ हे रामजी ! यह इंद्रियां तौ अपने विषयोंको ग्रहण करती हैं, इसविषे जीव तपायमान होता है, सो आश्चर्य है, अरु इन विषयोंकी यह चेष्टा इच्छा करते हैं, सो क्षणक्षणविषे नष्ट हो जाते हैं ॥ हे रामजी ! जो मार्गविषे किसीसाथ स्नेह हो जाता है, तौ ममत्व

प्यारकरि दुःख होता है, तब जो देहविषे ममत्व करैगा, तिसको दुःख क्यों नहीं होवैगा, भावै कैसा बुद्धिवान् होवै, शूरमा होवै, तौ भी संगकरि बंधमान होता है ॥ अर्थ यह कि, इंद्रियोंके विषयोंका अहंभावकरि ग्रहण करैगा, तौ तिनके नाश होनेकरि यह भी नाश होवैगा, जिन नेत्रोंका विषयरूप है, सो नेत्र साक्षी होकरि रूपको ग्रहण करते हैं; अरु ऐसा मूर्ख है, जो औरोंके धर्म आपविषे मानि लेता है, अरु तिनविषे तपायमान होता है, जैसे भ्रमदृष्टिकरिकै आकाशविषे मोरपुच्छवत् तरुवरे भासते हैं; अरु दूसरा चंद्रमा भासता है, तैसे मूर्खता करिकै इंद्रियोंके धर्म अपनेविषे मानि लेता है, जैसे इंद्रियां साक्षी होकारि विषयोंको ग्रहण करती हैं, तैसे चित्त भी अभिमानते रहित साक्षी होकरि ग्रहण करै तौ रागद्वेषकारि तपायमान न होवै, जैसे जलविषे चक्र तरंग फुरते दृष्ट आते हैं, तैसे यह इंद्रियोंके रूप विषय अरु इंद्रियां फुर आती हैं, आधार आधेयकारि इनका संबंध होता है, अरु चित्त इनके साथ मिलि व्याकुल होता है, रूप इंद्रिय अरु मन इनका परस्पर असंगभाव है, जैसे मुख अरु दर्पण अरु प्रतिबिंब भिन्न भिन्न असंग हैं, तैसे यह भिन्न भिन्न असंग हैं, परंतु अज्ञानकरि मिलेहुए भासते हैं जैसे लाखकरिके सोने रूपे चीनीका संयोग होता है तैसे अज्ञानकरिके रूप अवलोकन मन संस्कारका संयोग होता है, जब ज्ञान अग्निकरि अज्ञानरूपी लाख जलि जावै, तब परस्पर भिन्न भिन्न हो जाते हैं, बहुरि किसीका दुःख सुख किसीको नहीं लगता, जैसे दो लकडीका संयोग लाखकारि होता है तैसे अज्ञानकारि विषय इंद्रियां मनका संयोग होता है, ज्ञानरूपी अग्निकारि जब बिछुरि जाते हैं, तब बहुरि नहीं मिलते, जैसे भिन्न भिन्न मणके सूत्रके तागेकरि इकट्ठे होते हैं, तैसे देह इन्द्रियोंविषे अज्ञानकारि इकट्ठे होते जब विचार करिकै तागा टूटि पडै, तब भिन्न भिन्न हो जावै, बहुरि मिलै नहीं ॥ हे रामजी! जिन पुरुषोंको आत्मविचार भया है, सो ऐसे विचारते हैं, कि जो हमको दुःख देनेहारा चित्त था, चित्तके नष्ट हुए आनंद भया है जैसे मंदिरविषे दुःख देनेहारा पिशाच रहता है, तब दुःख होता है, नहीं तौ मंदिर दुःख नहीं देता, पिशाच दुःख देता है, तैसे शरीररूपी मंदिरविषे दुःख देनेहारा चित्त है ॥ हे चित्त ! तुझने मिथ्या मुझको दुःख [illegible] था, अब मैं आपको जाना है,

तू आदि भी तुच्छ है, अंतभी तुच्छ है वर्तमानमें भी तू मिथ्या जीवको दुःख देताहै, जैसे मिथ्या परछाईं बालकको वैताल होकारि दुःख देती है वड़ा आश्चर्य है ॥ हे चित्त ! तू तवलग दुःख देता है, जवलग आत्मस्वरूपको नहीं जाना जब आत्मस्वरूपका ज्ञान भया, तव तू कहूं दृष्ट न आवैगा, तू तौ मायामात्र है, अव तू रहु अथवा जाउ, मैं अव तुझसों मोहित नहीं होता, तू तौ मूर्ख जड है, अरु मृतक है, तेरा आकार अविचारते सिद्ध है, अव मैं पूर्वका स्वरूप पाया है, तू तत्व नहीं, भ्रांतिमात्र है, जो मूढ है सो तुझकारि मोहित होता है, विचारवान् मोहित नहीं होता, जैसे दीपककरि अंधकार दृष्ट नहीं आता, तैसे ज्ञानकारि तू दृष्ट नहीं आता ॥ हे मूर्ख चित्त ! तू वहुत काल इस देहरूपी गृहविषे रहा है; अरु तू वेतालरूप है, जैसे अपवित्र स्थानविषे वैताल रहता है, जहां श्मशान आदिक स्थान होते हैं, तैसे सत्संगते रहित देहरूपी गृह सों श्मशानके समान सदा अपवित्रहै, तहां तेरे रहनेका स्थानहै, अरु जहां संतोंका निवास होता है, तहां तुझसारिखे ठौर नहीं पाते हैं, सो मेरे देहरूपी गृहविषे सत विचार संतोषादिक संतजन आनि स्थित हुए हैं, तेरे वसनेका ठौर नहीं ॥ हे चित्त पिशाच ! तू पूर्वरूपी तृष्णा पिशाचनी अरु कामक्रोधादिक गुह्यक अपने साथ लेकरि चिरपर्यंत विचरा था, अव विवेकरूपी मंत्रकरि मैंने तुझको निकाला है, तव कल्याण हुआ ॥ हे चित्त ! पिशाचरूप ! तू प्रमादरूपी मद्यपानकरि मत्त हुआ था, अरु चिरपर्यंत नृत्य करता था, विवेकरूपी मंत्रकारि तुझको काढा, अव देहरूपी कंदरा शुद्ध भई है, अरु शुद्ध भाव पुरुषोंने निवास किया है, जैसे सिंह कंदरासों निकसि जाता है, तव मुनीश्वर आनि निवास करता है, तैसे यहां शुद्धभावहुने प्रवेश किया है ॥ हे चित्त ! मैं तुझको विवेकरूपी मित्र करिकै वश किया है, अव तेरा क्या पराक्रम है, तू तवलग दुःख देता था, जवलग विचाररूपी मित्र पाया न था, अव तेरा वल कछु नहीं चलता, अब मैं महा केवलभावविषे स्थित हौं, आगे भी मैं तुझको जगाता था, आपते तू सवरूप है, जैसे कच्चे मंत्रवाला सिंहको जगाता है, अरु आप कष्ट पाता है, तैसे मैं तुझको जगाइकरि कष्ट पाता था, अव मैं आत्मविचारकरि परिपक्क मंत्रकरि वश किया है, तव शांतिवान् हुआ हौं, ममता मान मेरे कछु

नहीं, मोह अहंकार सब नष्ट हो गया है, इनका कलत्र भी नष्ट हो गया है, मैं निर्मल चेतन आत्मा हौं, मेरा तुझको नमस्कार है, न मेरेविषे कोऊ आशा है, न कर्म है, न संसार है, न कर्तृत्व है, न मन है, न भोक्तृत्व है, न देह है, ऐसा जो निर्गुणरूप आत्मा है, मेरा मुझको नमस्कार है, न कोऊ आत्मा है, न अनात्मा है, न अहं है, न त्वं है, किसी शब्दका प्रवेश नहीं, ऐसा निराश है, न रूप हौं, न प्रकाशरूप हौं, अरु निर्मल आत्मा हौं, अपने आपविषे स्थित हौं, ऐसा जो मैं आत्मा हौं, सो मेरा मुझको नमस्कार है, न विकार हौं, नित्य हौं, निराश हौं, सर्व कार्योंविषे अनुस्यूत हौं, अंशांशीभावते रहित हौं, ऐसा सर्वात्मा जो मैं हौं, सो मेरा मुझको नमस्कार है, सम हौं, सर्वगत हौं, सूक्ष्म हौं, अपने स्वभावविषे स्थित हौं, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, आकाश आदिक जगत् मैं नहीं, अरु मैंही सर्व पदार्थ होइकरि भासता हौं, ऐसा मैं सर्वात्मा हौं, अब मैं सर्व भावको प्राप्त भया हौं, अरु मनभाव मुझते दूर भया है, मेरे प्रकाशकरि विश्व भासता है, अजर अमर अनंत हौं गुणातीत अद्वैत हौं, मनन जिसते दूर भया है, ऐसा जो मैं सुंदररूप हौं, कैसा हौं, जिसविषे विश्व प्रगट है, अरु स्वरूपते अविनाशी हौं, अनंत अजर अमर गुणातीत ईश्वररूपको नमस्कार है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तउपशमयोगवर्णनं नाम पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार विचारकरि तत्त्ववेत्ता आत्माको सम्यक्करि जानते हैं, तू भी आत्मविचारका आश्रय करिकै आत्मपदके आश्रय होउ, यह जगत् सब आत्मरूप है, ऐसे जानिकरि चित्तसों जगत्की सत्यताको त्यागिकरि जब ऐसे विचार करै, तब चित्त कहां है? बड़ा आश्चर्य है कि, जो चित्त वस्तुरूप दिखाई देता था, सो चित्त अविदित मायामात्र असत्रूप था, जैसे आकाशके फूल कहनेमात्र हैं, तैसे चित्त कहनेमात्र है, अविचारकरि दिखाई देता है, विचारवान्को चित्त असत् भासता है. काहेते कि, अविचारते सिद्ध है, जैसे नौकापर बैठे बालकको तटके वृक्ष चलते भासते हैं, बुद्धिवान्को चलनेविषे सद्भाव नहीं होता. तैसे मूर्खको चित्तसत्ता भासती है, अरु विचारवान्का चित्त नष्ट हो जाता है, जब मूर्खतारूप भ्रम शांत हुआ, तब चित्त कछु नहीं पाता जैसे बालक चक्रपर चढ़ा हुआ

फिरता है, तौ पर्वत आदिक पदार्थ तिसको भ्रमते हैं, जब चक्र ठहरि जाता है, तब चक्र आदि पदार्थ अचल भासते हैं, तैसे चित्तके ठहरनेते द्वैतकछु नहीं भासता, आगे मुझको द्वैत भासता था, सो चित्तके फुरनेकरि नानाप्रकारकी तृष्णा इच्छा उठती थी, अब चित्तके नष्ट हुए इन पदार्थोंकी भावना नष्ट भई है, संशय शोक सब मेरे नष्ट होगए हैं, अब विगतज्वर स्थित हौं, जैसा मैं स्थित हौं तैसे हौं, ईषणा कोई नहीं, जब चित्तका चैत्यभाव नष्ट हुआ, तब इच्छा आदिक गुण कहां रहे, जैसे प्रकाश नष्ट हुए वर्णज्ञान कछु नहीं रहता है, तैसे चित्तके नाश हुए इच्छा आदिक नहीं रहते, अब चित्त नष्ट हुआ, तृष्णा नष्ट होगई, मोहका पींजरा टूटि पड़ा, अब मैं निरहंकार हौं, बोधवान् हौं, सब जगत् शांतरूप आत्मा हौं, और नानात्व कछु नहीं, मैं निराभास आदिअंतते रहित आनंदपदको प्राप्त हुआ हौं, सर्वगत सूक्ष्म आत्मतत्त्व अपना आप है, तिसविषे मैं स्थित हौं, निरंतर इन विचारोंसाथ अब क्या प्रयोजन है, जबलग आपको मैं देह जानता था, तबलग यह विचार मूर्ख अवस्थाविषे थे, अब मैं अमित निराकारको प्राप्त हुआ हौं, केवल परमानंद सच्चिदानंदको प्राप्त हुआ, किसपदका विचार करौं, आगे मैं चित्तरूपी वेतालको आपही जगावता था, अरु आपही दुःखी होता था, अब विचाररूपी मंत्रकरि मैं इसको नष्ट किया है, अरु निर्णयकरि अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, शांत आत्मा अपने आपविषे स्थित हौं ॥ हे रामजी ! जिसको यह निश्चय प्राप्त हुआ है, सो निर्द्वंद्व राग द्वेषते रहित होकरि स्थित होता है, प्रकृत कर्म करता है, मानमदते रहित आनंदकरिकै पूर्ण होता है, जैसे शरत्कालकी रात्रिको पूर्णमासीका चंद्रमा अमृतकरि पूर्ण होता है, तैसे प्रकृत आचार कार्यकर्त्ता ज्ञानवान्‌को शांत पूर्ण आत्मा है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे चित्तशांतिप्रतिपादन वर्णनं नाम षट्सप्ततितमः सर्गः ॥ ७६ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! यह विचार वेदविदोंने कहा है, पूर्व मुझको ब्रह्माने विंध्याचल पर्वतविषे कहा था, इस विचार करिकै वह परमपदविषे स्थित हुआ है, इस दृष्टिको आश्रयकरिकै आत्मविचार होकरि तमरूपी संसारसमुद्रको तरिजावहु ॥ हे रामजी ! इसके ऊपर एक और परम दृष्टान्त सुन, सो दृष्टान्त परमपदको प्राप्त करनेहारा है, जिस

प्रकार वीतवमुनीश्वर विचारकरिकै निःशंक स्थित हुआ है सो सुन, वीतव मुनीश्वर महातेजवान् था, सो संसार आधिव्याधिते वैराग्य करत भया, अरु नागादि होके पर्वतोंकी कंदराविषे विचरने लगा, जैसे सूर्य सुमेरु पर्वतके चौफेर फिरता है तैसे विचरने लगा, अरु संसारकी क्रियाओंको दुःखरूप विचारता भया कि, यह बड़े भ्रमके देनेहारी हैं ऐसे जानिकारि उद्वेगवान् हुआ निर्विकल्प समाधिकी इच्छा करत भया, अपना जो कछु व्यवहार था, तिसको त्यागत भया, अरु गौर जो अपनी कुटी थी, तिसका त्याग करिकै और केलेके पत्रोंकी कुटी बनाइकारि बैठा, जैसे भँवरा कमलनको त्यागिकारि नील कमलपर जाय बैठता है तैसे गौरकुटीको त्यागिकारि श्यामकुटीविषे जाय बैठा, नीचे कुश बिछाई तिसऊपर मृगछाला बिछाइकारि पद्मासन मार बैठे, जैसे मेघ जलको त्यागिकारि शुद्ध मौन स्थित होता है, तैसे और क्रियाको त्यागिकारि शांतिके निमित्त शांतरूप स्थित है; हाथोंको तले किया मुखको ऊपर किया, ग्रीवाको सुधाकरिकै स्थित करत भया, इंद्रियोंकी वृत्तिको रोकत भया, बहुरि मनकी वृत्तिको भी रोक दिया जैसे सुमेरुकी कंदराविषे सूर्यका प्रकाश बाह्यते मिटजाता है, तैसे इंद्रियोंकी वृत्ति रोकि बाहरते मिटजाती है, अरु अंतरते भी विषयोंकी चिंतवनाका त्याग किया, इसप्रकार वह क्रमकरिकै मन स्थित करत भया, जब मन निकरि जावै, तब कहै, बड़ा आश्चर्य है, मन महाचंचल है, जो मैं स्थित करता हौं, तौ बहुरि निकस जाता है, जैसे सूखापात तरंगविषे पड़ा ठैरता नहीं तैसे मन एकक्षण भी ठहरता नहीं, सर्वदा इंद्रियोंकारि विषयोंकी ओर धावता है जैसे गेंदको ज्यों ज्यों ताडना करता है, त्यों त्यों उछलता है, तैसे इस मूर्ख मनको जिस ओरते खैंचता है, तिसी ओर बहुरि धावता है, उन्मत्त हस्तीकी नाईं, जो घटकी ओरते खैंचता है, तौ रसकी ओर निकस जाता है, अरु जो रसकी ओर खैंचता है, तौ गंधकी ओर धावता है, स्थिर कदाचित् नहीं होता, जैसे वानर कबहूँ किसी टासपर, कबहूँ किसी टासपर, जाय बैठता है, इसप्रकार मूर्ख मन शब्द स्पर्श गंध रूप रसकी ओर धावता है, स्थिर नहीं होता, इसके ग्रहण करनेको पंच स्थान हैं, जिस मार्गकारि विषयोंको ग्रहण करता है, सो पंच ज्ञानइंद्रियां हैं ॥ अरे मूर्ख मन ! तू किस निमित्त विषयोंकी ओर

धावताहै, यह तौ आप जड असतरूप भ्रांतिमात्र है, तू इनकरि शांतिको कैसे प्राप्त होवैगा, इनविषे चपलताकारि इच्छा करना अनर्थका कारण है, ज्यों ज्यों इनके अर्थोंको ग्रहण करैगा, त्योंत्यों दुःखके समूहको प्राप्त होवैगा, ये विषयभी जड़ असतरूप हैं, तू भी जड है, जैसे मृगतृष्णाकी नदी असत् होती है, तैसे यह असतरूप है ॥ हे मुने ! यह तौ सब असाररूप है, अरु तू भी इंद्रियां सहित जडरूप है, तू कर्तृत्वका अभिमान क्यों करता है ? सबका कर्ता चिदानंद आत्मा भगवान् है, अरु सदा साक्षीभूत है, तैसे आत्मा साक्षीभूत है, तू क्यों वृथा तपायमान होता है, जैसे सूर्य सबकी क्रियाको करावता साक्षीभूतहै, तैसे आत्मा साक्षीभूत है, अरु जगत् सब भ्रांतिमात्र है, जैसे अज्ञान करि जेवरीविषे सर्प भासता है, तैसे अज्ञानकरिकै आत्माविषे जगत भासता है, जैसे आकाश अरु पातालका संबंध कछु नहीं होता जैसे ब्राह्मण अरु चंडालका संयोग नहीं होता जैसे सूर्य अरु तमका संबंध नहीं होता, तैसे आत्मा अरु चित्त इंद्रियोंका संबंध कछु नहीं होता आत्मा सत्तामात्र है, यह जड असतरूप है, इनका संबंध कैसे होवै, आत्मा न्यारा साक्षीभूत है, जैसे सूर्य सब जनोंते न्यारा रहता है, तैसे आत्मा न्यारा साक्षीभूत है ॥ हे चित्त ! तू तौ मूर्ख है, विषयरूपी चबेणेविषे तू रहै औरको भक्षण कर्ता तू तृप्त कदाचित् नहीं होता, अरु विचार मिथ्या कूकरकी नाईं चेष्टा करता है, तेरेसाथ हमको कछु प्रयोजन नहीं ॥ हे मूर्ख ! तू तौ मिथ्या अहं अहं करता है, अरु तेरी वासना अत्यंत असतरूप है, अरु जिस पदार्थोंकी तू वासना करता है; सो भी असतरूप है, तेरा अरु आत्माका संबंध कैसे होवै, आत्मा चेतनरूप है, अरु तू मिथ्या जडरूप है, अरु यह मैं जाना है कि, जन्ममरण आदिक विकार अरु जीवत्वभावको तुझने मुझको प्राप्त किया था, मैं तौ केवल चेतन परब्रह्म हौं, मिथ्या अहंकारकरिकै जीवत्वभावको प्राप्त किया था, अरु देहमात्र आपको जानता था, मैं तौ संवितमात्र नित्य शुद्ध हौं आदि अंतते रहित परमानंद चिदाकाश अनंत आत्मा हौं अब मैं स्वरूपविषे आप जागाहौं, और सद्भाव मुझको कछु नहीं दृष्ट आता ॥ हेमूर्ख मन ! जिन भोगोंको तू सुखरूप जानिकरि धावता है सो अविचारकरिकै प्रथम तो अमृतकी नाईं भासता है अरु पाछे विषकी नाईं हो

जाते हैं, वियोगकरिकै जलावते हैं, अरु आपको तू कर्ता भोक्ता भी मिथ्या मानता है, तू भी कर्ता भोक्ता नहीं, अरु इंद्रियां भी कर्ता भोक्ता नहीं. काहेते कि, जड है, जो तुम जड हुए तौ तुम्हारेसाथ मित्रभाव कैसे होवै, अरु जो तू जड असत्‌रूप है तौ कर्ता भोक्ता कैसे होवै, अरु जो चेतन सत्‌रूप है, तौ भी तेरेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व नहीं संभवता, तू मिथ्या है, मैं प्रत्यक्ष चेतन हौं तू कर्तृत्व भोक्तृत्व मिथ्या अपनेविषे स्थापन करता है, तू मिथ्या है, जब मैं तुझको सिद्ध करता हौं, तब तू होता है, तू निश्चयकरि जड़ है, तुझको कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे होवै, जैसे पत्थरकी शिला नृत्य करनेको समर्थ नहीं होती, तैसे तुझको कर्तृत्वकी समर्थता नहीं, तेरेविषे कर्तृत्व जो है, सो मेरी शक्ति है, जैसे दात्री घास तृण आदिकको काटती है, सो केवल आपते नहीं काटती पुरुषकी शक्तिते काटती है, अरु खड्गकरि जो हननक्रिया होती है, सो भी आपते नहीं होती, पुरुषकी शक्ति है, तैसे तुम्हारेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्तिकरि होती है, जैसे पात्र करि जल पान करता है, सो पात्र नहीं करता, पान पुरुष करता है, पात्र करिकै पान करता है तैसे तुम्हारेविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व मेरी शक्तिकरती है, मेरी सत्ता पाइकरि तुम अपनी चेष्टाविषे विचरते हौ, जैसे सूर्यका प्रकाश पाइकरि लोक अपनी अपनी चेष्टा करता है, तैसे मेरी शक्ति पाइकरि तुम्हारी चेष्टा होती है, अज्ञानकरिकै तुम जड़ जीवते रहते हौ, ज्ञानकरिकै लीन हो जाते हौ, जैसे सूर्यके तेजकरि वर्फका पुतला गलि जाता है, ताते हे चित्त ! अब मैं निश्चय किया है कि, तू मृतकरूप मूढ है, परमार्थते न तू है, न इंद्रियां हैं, जैसे इंद्रजालके वाजीके पदार्थ भासते हैं, सो सब मिथ्या हैं, केवल विज्ञानरूप मैं अपने आपविषे स्थित निरामय अजर अमर नित्य शुद्ध बोध परमानंदरूप हौं, अरु मैंही नानारूप होकरि भासताहौं, परंतु कदाचित् द्वैतभावको प्राप्त न हुआ, सदा अपने आपविषे स्थित हौं, जैसे जलविषे तरंग बुद्बुदे हो आते हैं, सो जलरूप हैं, तैसे सर्व पदार्थ मेरेविषे भासते हैं; सो इतर कछु नहीं ॥ हे चित्त ! तू भी चिन्मात्रभावको प्राप्त हुआ, जब तू चिन्मात्रभावको प्राप्त होवैगा, तब तेरा भिन्न भाव कछु न रहैगा, अरु शोकते रहित होवैगा, आत्मतत्त्व सर्व भावविषे स्थित सर्वरूप है, जब तिसको तू प्राप्त होवैगा, तब सब कछु तुझको प्राप्त होवैगा,

न कोऊ देह है, न जगत् है, सर्व ब्रह्मही है, ब्रह्मही ऐसे भासता है, वास्तव अहं त्वं कल्पना कोऊ नहीं ॥ हे चित्त ! जो आत्मा चेतनरूप है, सो सर्वगत् आत्मा है, आत्माते इतर कछु नहीं, तौ भी तुझको संताप नहीं, अरु जो अनात्मा जड़ असत्‌रूप है, तौ भी तू न रहा, जो कछु परिच्छिन्न जैसा तू बनता है, सो मिथ्या भ्रम है, आत्मतत्त्व सर्वव्यापकरूप है, द्वैत कछु नहीं, सर्व वही है, तौ भिन्न अहं त्वं की कल्पना कैसे होवै, अरु असत् सो कार्यकी सिद्धता कछु नहीं शशेके सींग जैसे असत् हैं, तिनसों कछु मारनेका कार्य सिद्ध नहीं होता, तैसे तुम असत् हौ, तुमसों कर्तृत्व भोक्तृत्व कार्य कैसे होवैं ? अरु जो तू कहै, मैं सत् असत् चेतन जडके मध्यभाव हौं, जैसे तम अरु प्रकाशका मध्यभाव छाया है, तैसे सूर्यरूप परमात्मा निरंजनके विद्यमान मंदभावी छाया कैसे रहती है, ताते कर्तृत्व भोक्तृत्व तुझको नहीं होता. काहेते कि, तू जड है, जैसे दात्री पड़ी होवे, तिसको घास काटनेका कार्य आपते नहीं होता, जब पुरुषके हाथ शक्ति होती है, तब कार्य होताहै, तैसे तुमसों कार्य कछु नहीं होता, जब आत्मसत्ता तुमसों मिलती है, तब तुमसों कार्य होता है, तुम क्यों अहंकारकरिकै वृथा तपायमान होते हौ ? अरु हे चित्त ! जो तू कहै कि, ईश्वरका उपकार है तौ ईश्वर जो परमात्मा है, तिसको करने अकरनेविषे कछु प्रयोजन नहीं, अरु सबका कर्ता भी वही है, अरु अकर्ता है, जैसे आकाश पोल करिकै सबको वृद्धता देनेहारा है, परंतु स्पर्श किसीसाथ नहीं करता, तैसे परमात्मा सबको सत्ता देनेहारा है, अरु अलेप है ॥ हे मूर्ख मन ! तू क्यों भोगोंकी वांछा करता है; तू तो जड असत्‌रूप है अरु देह भी जड असत् रूप है, भोग कैसे भोगैंगे, अरु जो परमात्माके निमित्त इच्छा करता है, तौ परमात्मा सदा तृप्तहै, अरु इच्छाते रहित है सर्वविषे वही पूर्ण है, दूसरेते रहित एक अद्वैत प्रकाशरूप अपने आपविषे स्थित है, तुझको किसकी चिंता है, ताते वृथा कल्पनाको त्यागिकरि आत्मपदविषे स्थित होउ, जहां सर्व क्लेश शांत हो जाते हैं, अरु जो तू कहै कि, परमात्मासाथ मेरा कर्तृत्व भोक्तृत्वका संबंध है, तौ नहीं बनता, जैसे फूल अरु पत्थरका संबंध नहीं होता, तैसे परमात्मासाथ तेरा संबंध नहीं होता, समान अधिकरण द्रव्यका संबंध होता है, जैसे जलमृत्तिकाका संबंध होता है,

जैसे औषधिविषे चंद्रमाकी सत्ता प्राप्त होती है, जैसे सूर्यकी तप्तताकरि शिला तप जाती है, जैसे बीज अंकुरका संबंध होता है, जैसे पिता अरु पुत्रका संबंध होता है, सो द्रव्य अरु गुणका संबंध होता है, जो आकारसहित वस्तु है, तिसका कैसेहू संबंध बनाता है, अरु जो निराकार निर्गुण वस्तु है तिसका कैसे संबंध होवै, समानकरि संबंध नहीं, जो परमात्मा चेतनहै, तू जड है, वह प्रकाशरूप है, तू तमरूप है, वह सत्‌रूप है तू असत्‌रूप है; संबंध तो किसीसाथ नहीं बनता, तू क्यों वृथा जलता है, तू मननरूप है, परमात्मा सर्व कलनाते रहित है, तेजकी एकता तेजकरि होती है, अरु जलकी एकता जलसाथ होती है, तू कलंकरूप है, परमात्मा निष्कलंकरूप है, तेरी एकता तिससाथ कैसे होवै, जिसका अंग कछु होता है, तिसका संबंध भी होता है, सो संबंध तीन प्रकारकाहै. सम, अर्धसम, अरु विलक्षण, इनका संबंध होता है, जैसे जलसाथ जलकी एकता होती है, तेजसाथ तेजकी एकता होती है, यह सम है. जो तेरा आत्मसाथ सम संबंध नहीं, एक अर्धसम है, जैसे स्त्री अरु पुरुषके अंग समान होते हैं, परंतु विलक्षणरूप हैं सो अर्धसम भी तेरा अरु आत्माका संबंध नहीं, अरु कछुक अन्यकी नाईं भी तेरा संबंध नहीं; जैसे जल अरु दूधका संबंध होता है, तैसे तेरा भी नहीं, अरु अत्यंत जो विलक्षण है, तिनकी नाईं भी तेरा नहीं; जैसे काष्ठ अरु लाखका अरु पुरुष अरु हाथी घोड़ा आदिकका संबंध नहीं, अरु आधार आधेयवत् भी तेरा संबंध नहीं जैसे बीज अंकुर पिता पुत्र आदिक जो संबंध है; तैसे भी तेरा अरु आत्माका संबंध कोई नहीं, काहेते जो संबंध तिसका होता है, तिससाथ कछु भी अंग मिलता है, जिसका अंग कोऊ नहीं मिलता, परस्पर विरोध होवै, तिसका संबंध कैसे कहिये, जैसे कहिए शशेके सींग ऊपर अमृतका चंद्रमा बैठा है, तम अरु प्रकाश इकट्ठे हैं, जैसे यह नहीं बनता, तैसे आत्मसाथ देह मन इंद्रियोंका संबंध नहीं बनता. काहेते कि, आत्मा सर्व कलनाते अतीत नित्य शुद्ध अद्वैत प्रकाशरूप है, अरु मनआदिक जड़ असत् मिथ्या तमरूप हैं, इनका संबंध नहीं जो परस्पर विरोध होवै, तिनका संबंध कैसे होवै, तुम तो परमात्माके अज्ञानकरि मन इंद्रियां देहादिक उदय हुए हो, आत्माके ज्ञानकरि अभाव हो जाते हैं बहुरि संबंध कैसे होवै ॥

हे मन! जेते कछु जगत् है, सो सब ब्रह्मस्वरूप है, तिसते इतर द्वैत कछु नहीं, अहं त्वंका कल्पना कोई नहीं, ब्रह्मसत्ता अपने आपविषे स्थित है, सब कलना तेरेविषे थी, अरु तू तबलग था, जबलग स्वरूप का अज्ञान था, जब स्वरूपका ज्ञान भया, अरु अज्ञान नष्ट भया, तब तू कहां है, जैसे रात्रिके अभावते निशाचरोंका अभाव हो जाता है, तैसे अज्ञानके नाश हुए तेरा अभाव हो जाता है ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने चित्तानुशासनं नाम सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार वीतव मुनीश्वर विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे विचार करत भया, तीक्ष्ण बुद्धिसाथ और भी जो कछु कहा है सो सुन—अनात्मा जो देह इंद्रियां मनआदिक हैं सो संकल्पते उपजे हैं, जब ज्ञान उदय हुआ, तब इनका अभाव हो जाता है॥ हे मन! जैसे सूर्यके उदय हुए, तम नष्ट हो जाता है, तैसे नित्य उदितरूप परमात्मा अनुभव स्वरूपके उदय हुए तुम्हारा अभाव हो जाता है, वासनाकरिकै तिसका आवरण था, जब वासनाका अभाव हो जाता है, तब आवरणका भी अभाव हो जाता है, जैसे मेघके नष्ट हुए सूर्य प्रकाशता है, तैसे वासनाके अभाव हुए आत्मतत्त्व प्रकाशता है, वासनाका मूल अज्ञान है, जबअज्ञानसहित वासना नष्ट भई, तब चिदानंद ब्रह्म प्रकाशता है, वासनाहीका नाम बंध है, वासनाके निवृत्तिका नाम मोक्षहै, जब वासनारूपी जेवरी काटैगा तब परमात्माका साक्षात्कार होवैगा, जैसे प्रकाशविना अंधकारका नाश नहीं होता, तैसे मन इंद्रियां देहादिकका आत्मविचार विना नाश नहीं होता, जब विचारकरिकै आत्मपद प्राप्त होवै, तब मनसहित षट् इंद्रियोंका अभाव हो जाता है ॥ अर्थ यह कि, इनका अभिमान नष्ट होताहै, इनके धर्म अपनेविषे नहीं भासते, जबलग देह इंद्रियोंकेसाथ मिला है, तबलग आत्मपदको पाइ नहीं सकता; ताते आत्मपद पानेका कल्याणके निमित्त अभ्यास कर. जबलग मन इंद्रियोंके गुणोंसाथ आपको मिला जानता है, तबलगं इसको अपने स्वरूपकी विभुता अरु सिद्धता नहीं भासती, जब आत्माका साक्षात्कार हो जावै, तब रागद्वेषादिक विकार नष्ट हो जावैंगे, जैसे सूर्यके उदय हुए निशाचरोंका अभाव हो जाता है, तैसे आत्माके साक्षात्कार हुए विकारोंका अभाव हो जाता है,जिसके

देखेत इनका अभाव होजाता है, तिनका आत्मासाथ संबंध कैसे होवै, जैसे प्रकाश अरु तमका संबंध नहीं होता, तैसे सत् असत्का संबंध नहीं होता, जैसे जीवते अरु मृतकका संबंध नहीं होता, तैसे आत्मा अनात्माका संबंध नहीं होता, आत्मा सर्व कल्पनाते रहित है, मन आदिक सर्व कल्पनारूप हैं, कहां यह मूक जड अनात्मारूप, अरु कहां नित्य चेतन प्रकाश निराकार आत्मरूप, इनका परस्पर विरोधरूप है, संबंध कैसे कहिये, यह तौ निश्चयकरि अनर्थका कारण है, जबलग इनका अभिमान है, तबलग जगत् दुःखरूप है, जब इनका वियोग होवै, तब जगत् परमात्मारूप होता है; जबलग इसको आत्माका अज्ञान है, तबलग आपको इनमें मिला देखता है, दुःख पाता है, जब आत्माका ज्ञान हुआ, तब अपनेसाथ इनका संयोग नहीं देखता है, अरु यह मैं निश्चयकरि जाना है कि, इंद्रियां अरु मनके संयोगते जगत् भासता है, जब इंद्रियोंका ग्राम नष्ट होजाता है, तब जगत् परमात्मारूप होजाता है, अरु मैं जो आत्मा अरु मन इंद्रियोंको इकट्ठा जानता था, सो प्रमादरूपी मद्यके पानकरि मत्त हुआ, मनकरि जानता था, अब आत्म विचारकरिकै मन नष्ट भया, तब सुखी भया, जो विषको पानकरि मूर्च्छित होवै, सो तौ बनता है, परंतु पान कियेबिना मूर्च्छित होवै, सो आश्चर्य है, ताते जब अनात्माका इससाथ संयोग होता, तब सुखदुःख करिकै राग द्वेषवान् होना भी बनता है, आत्मा तौ सुखदुःखका साक्षीभूत है, सुखदुःखका संयोगही जिससाथ नहीं, अरु रागद्वेषकरि जलता है, तौ महामूर्खता है, आत्मा तौ सुखदुःखका साक्षीभूत है. जैसा तिसके आगे अभ्यास होता है, तैसाही भासता है, कदाचित् विपर्यय भावको प्राप्त नहीं होता, सुखदुःखविषे मूर्ख मनआदिक रागद्वेषवान् होता है, आत्मा तौ सदा साक्षीभूत क्षीणवृत्ति है, तिससाथ इंद्रियोंका संयोग कैसे होवै, जो संयोगका अभाव सिद्ध हुआ, तौ आत्माविषे कर्तृत्व भोक्तृत्व कैसे कहिये जहां चित्तकलना होती है, तहाँ कर्तृत्व भोक्तृत्व होता है, जहां चित्तकलनाका अभाव है, तहां कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभाव है, ऐसा निष्कलंक आत्मा तत्व मैं हौं, जो न कर्ता हौं, न भोक्ता हौं, न मेरेविषे बंध है, न मोक्ष है, न अहंता है, मैं सर्वात्मा अलेपरूप हौं ॥ हे मन! तू भी मैं हौं, अरु पृथ्वी आप तेज वायु आकाश पांचों तत्व मैं हौं,

इसप्रकार निर्णय करि जिसने धारा है, सो मोहको प्राप्त नहीं होता, जो अहं अभिमान करनेवाला आत्माते भिन्न आपको जानता है, तब दुःखी होता है, जब अपने स्वभावविषे स्थित होता है, तब परमसुखी होता है, ताते जिसको कल्याणकी इच्छा होवै, तिसको एक आत्मपरमात्मपरायण होना योग्य है, जब स्वरूपका त्यागकरि संकल्पके ओर धावता है, तब दुःखोंके समूहको प्राप्त होता है ॥ हे चित्त ! जो तू अपनेविषे कर्तृत्त्व देखता था सो तू इंद्रियांसहित जडरूप पत्थरके समान है, जैसे आकाशविषे पवन नहीं लगता, तैसे तुमसों कर्तृत्व नहीं होता, जब इसको स्वरूपका प्रमाद होता है, तब चित्त आदिकेसाथ आपको मिला जानता है अरु चित्तादिक आत्माकी सत्ता पाइकरि चेतन होता है, जैसे अग्निकी सत्ता पाइकरि लोह जलावनेको समर्थ होता है, तैसे तुम आत्माकी सत्ता पाइकरि कर्तृत्व भोक्तृत्वविषे समर्थ होते हौ, जब आत्मविचार करिकै स्वरूपका साक्षात्कार होता है, अरु अज्ञानवृत्ति निवृत्त हो जाती है, मनआदिकका वियोग होता है, सर्व कलनाते रहित हुआ, तब केवल मोक्षरूप आत्मा होता है, कर्तृत्व भोक्तृत्वका अभाव हो जाता है, जैसे आकाशविषे लालीका अभाव है, तैसे आत्माविषे कर्तृत्वका अभाव है, सब जगत् आत्मस्वरूप भासता है, जैसे समुद्र तरंग आदिक नानाप्रकार होता है, सो सब जलरूप है, इतर कछु नहीं, तैसे सर्व जगत् आत्मरूप है, आत्माते इतर कछु नहीं, सो सच्चिदानंद आत्मा मैं सदा अपने आपविषे स्थित हौं, और द्वैतकलना मेरेविषे कोई नहीं. जैसे समुद्र उष्णताते रहित है, तैसे परमात्मा सर्व कलनाते रहित है, जैसे आकाशविषे वन नहीं होता, तैसे परमात्माविषे कलना नहीं होती, संवेदनते रहित संवित्मात्र सर्वात्मा है, जब तिसका साक्षात्कार होता है, तब अहं त्वं आदिक कलनाका अभाव हो जाताहै, सो अनादि अरूप सर्वगत है, सदा अपने आपविषे स्थित है, ऐसा जो अद्वैत तत्त्व है, तिसको द्वैतकलना आरोपनेको कौन समर्थ है, सो ऐसा कौनहै, जो आकाशविषे ऋग्वेदको लिखै; नित्य उद्योत सर्वका: सार अद्वैत आत्मा है, तिसविषे द्वैतकलनाका अभाव है, सर्वविषे पूर्ण

निर्मल नित्य आनंदरूप है, ऐसे आत्माको अब मैं प्राप्त हुआ हौं, जगत्का सुखदुःख अब नष्ट भया है, सम शांतरूप हुआ हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने अनुशासनायोगोपदेशो नाम अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हेरामजी ! इसप्रकार वीतवमुनिश्रेष्ठ विचार करता भया, बहुरि जो कछु निर्मल बुद्धिसाथ विचारने लगा सो सुन ॥ हे इंद्रियरूपमन ! तुम क्यों अपने अर्थोंकी ओर धावते हौ, तुमको विषयोंकरि शांति प्राप्त नहीं होती, जैसे मृग मरुस्थलकी नदी देखिकरि दौडता है, अरु शांतिवान् नहीं होता, ताते तुम विषयोंकी ओर तृष्णाकरि शांतिवान न होहुगे, इनकी इच्छा त्यागिकरि जो सत्य है, परमात्म तत्त्व अविनाशी सर्व अवस्थाविषे एकरस है, तिसको ग्रहण करौ, तब सर्व दुःख तुम्हारे मिटि जावैंगे, तुम्हारेसाथ मैं मिला था, तब मैं भी दुःख पाया था, तुम अज्ञानकरिके उत्पत्ति भये हौ, जो तुम्हारेसाथ मिलता है, तिसको भी दुःख प्राप्त होता है, जैसे तपी हुई लाख जिसके शरीरसाथ स्पर्श करती है, तिसको जलावती है तैसे जिसको तुम्हारा संग भयाहै, सो दुःखको प्राप्त होता है ॥ हे मन ! यह जीव जो मरता है सो कालके मुखमें जाय प्रवेश करता है, सो तुम्हारे संगकरि जाय पड़ता है, जैसे नदी जल सहित होती है, तब समुद्रकी ओर चली जाती है, जलते रहित होवै तौ क्यों जावै, तैसे तुम्हारे संगकरि कालके मुखमें जाय पड़ता है. तुम्हारा संग न होवै तौ काहेको पड़ै, जैसे मेघ कुहिडकरि सूर्यको आच्छादि लेता है, तैसे मनरूपी मेघ तू इच्छारूपी कुहिडकारि आत्मारूपी सूर्यको आच्छादि लेता है, अरु परंपरा दुःखोंकी वर्षा करनेहारा है ॥ हे मन ! तेरेविषे चिंता उठती है, सो तू मर्कटकी नाईं है, जैसे मर्कट वृक्षको ठहरने नहीं देता, पड़ा हिलावता है, तैसे चित्त देहको ठहरने नहीं देता, अरु चित्तरूपी पखेरू है, लोभ लज्जा तिसके दो पंख हैं, अरु रागद्वेषरूपी चंचु हैं, तिसकरि शरीररूपी वृक्षपर बैठ, शुभ गुणोंको काटि काटि खाता है, अरु चित्तरूपी कूकर महानीच है, भोगभावनारूपी जो महा अपवित्र पदार्थ हैं, तिनको हृदयरूपी स्थानविषे इकट्ठा करता है, ऐसी चेष्टाते कदाचित् रहित नहीं होता, अरु चित्तरूपी उलूक है, अज्ञानरूपी रात्रिविषे आइ विचरता है, चेष्टाकरि प्रसन्न होता है, अरु शब्द करता है, जैसे श्मशानविषे

वेतालशब्द करता है, जब अज्ञानरूपी रात्रि नष्ट होवै, तब चित्तरूपी उलूकका अभाव होवै, अरु संपदा आनि प्रवेश करै, जैसे सूर्यके उदय हुए, सूर्यमुखी कमल उदय होता है तैसे संपदा प्रफुल्लित होती है, जहां मोहरूपी कुहिड अरु इच्छारूपी धूलि हृदयरूपी आकाशसों निवृत्त होती है, तब निर्मल आकाश प्रगट होता है ॥ हे चित्त ! जबलग तू नष्ट नहीं होता, तबलग शांति नहीं होती, अरु जैसे अकस्मात् मेघ आवै, अरु गडेकी वर्षा करै, तिसकरि मार्ग चलनेवाले दो कष्ट पाते हैं, तैसे स्वस्थ बैठे हुए, जो चिंता आनि प्राप्त होती है, सो तेरे संयोगकरि होती है, संकल्पविकल्परूपी गडेकी वर्षाकरि सत्मार्ग चलनेवाला दुःख पाता है, अरु जहां चित्त नष्ट होता है, तहां सर्व आनंद होता है, शीतलता अरु मित्रताकरि पावन होता है, जैसे शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, मेघके नष्ट हुए सूर्य प्रकाशता है, तैसे अज्ञानके नष्ट हुए आत्मा प्रकाशता है, तब प्रसन्नता, गंभीरता महत्त्वता, अरु समता होती है, जैसे वायु अरु मंदराचल पर्वतते रहित क्षीरसमुद्र शांतिवान् भया, अरु जैसे पूर्णमासीका चंद्रमा शोभता है, तैसे अज्ञानके नाश हुए आत्मानंद पाइकरि यह शोभता है ॥ हे चित्त ! यह स्थावर जंगम जगत् संवित्रूप आकाशविषे है, तिस महत् ब्रह्मको तू भी प्राप्त होउ, जो पुरुष आशारूपी फाँसीको तोड़िकरि आत्मपदविषे प्राप्त हुआ है, अरु संसारका सद्भाव निवृत्त किया है, सो जन्ममरणके बंधनमें नहीं पड़ता, जैसे जला पत्र बहुरि हरा नहीं होता, तैसे नष्ट हुआ चित्त जन्ममरणको नहीं पाता ॥ हे चित्त ! सर्वको भक्षण करनेहारा जो तू संसारको सत् मानकर तिसकी ओर धावैगा, तब तेरा कल्याण न होवैगा, अरु जो आत्माकी ओर आवैगा, तब तेरा परम कल्याण होवैगा, जब तू अपना अभाव करि आत्मपद विषे स्थित होवैगा, तब कल्याणरूप होवैगा, अरु जब तू अपना सद्भाव करैगा, जो आकारको न त्यागैगा, तब दुःखी होवैगा, जो तेरा जीवना है सो मृत्युसमान है, अरु जो मृत्यु है, सो जीवनेसमान है, दोनों पक्षविषे जो तेरी इच्छा है, सो अंगीकार कर, जो तू अबहीं आपको आत्मपदविषे निर्वाण करैगा, तब परमपदको प्राप्त होवैगा, अरु परमसुखी होवैगा, अरु जो न करैगा, तौ परमदुःखी

होवैगा, जो आत्मपदका त्याग करैगा सो मूढ है, तेरा निर्वाण होना आत्मपदविषे जीवनेनिमित्त है, अरु आत्मातें इतर जो तू जीनेकी इच्छा करता है, सो तेरा जीना मिथ्या है, अर्थ यह जो तू आदि भी मिथ्या है, अब भी विचारविना भ्रममात्र है, विचार कियेतें नाश हो जावैगा, जैसे सूर्यके प्रकाशविना अंधकार होता है, प्रकाशकरि नाश हो जाता है, तैसे विचारविना चित्त है, विचारकरि नाश हो जाता है, एता:काल मैं अविवेककरि नाश हो जाता था, जैसे बालकोंको अपने परछाईंविषे वेतालकल्पना होती है, विचारविना भयको पाता है, विचार कियेतें निर्भय होता है, तैसे अब मैं तेरे संगते छूटा, अपने पूर्वस्वरूपको प्राप्त हुआ हौं, विवेककरि तेरा अभाव हुआ है, ताते विवेकको नमस्कार है॥ हे चित्त ! अविवेककरि तू मेरा मित्र था, अब बोधकरिकै तेरा चित्तभाव नष्ट हो गया, तू परमेश्वर रूप है, अब वासना नष्ट भई है, आगे तेरेविषे नानाप्रकारकी वासना थी; तिसकरि तू मलिन दुःखरूप था, अब वासना नष्ट भई है, तौ परमेश्वररूप भया है, चित्तस्वभाव तेरेविषे अज्ञानकरि उपजा दुःखोंका कारण था, सो विवेककरि लीन भया है, जैसे रात्रिके पदार्थ सूर्यके उदय हुए लीन हो जाते हैं, तैसे विवेककरि चित्तभाव नष्ट भया है, सो सिद्धांतका कारण है तेरे संगकरि मैं तुच्छ जैसा हो गया था, अब शास्त्रोंकी युक्तिकरि निर्णय किया है कि, न तू आगे था, न अब है, न बहुरि होवैगा, जबलग मैं आपको जाना न था तबलग तेरा सद्भाव था, अब मैं आपको जाना है, अरु अपने आपविषे स्थित भया हौं, अब मैं परम निर्वाण शांतरूप हौं सब ताप मेरे नष्ट भये हैं नित्य शुद्ध चिदानंद परब्रह्मस्वरूप हौं जगत्की सत्य असत्य कलना मेरी नष्ट भई है. काहेते कि, कलना सब चित्तविषे थी, जब चित्त निर्वाण हो गया, तब कलना कहां रही, मैं केवल शुद्ध आत्मा हौं, प्रतियोगी कोऊ नहीं. न व्यवच्छेद है, काहेते कि, दूसरा कोऊ नहीं, चित्तकी चेतना फुरती थी, सो निर्वाण होगई है, अब मैं स्वस्थ भया हौं, जैसे तरंगोंते रहित समुद्र अचल होता है, तैसे मैं सर्व कलनाते रहित वीतराग हौं, संवेदनते रहित सम सत्तामात्र अपने आपविषे स्थित हौं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने चित्तोपदेशो नाम एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हेरामजी ! इसप्रकार वीतवने निर्वासनिक होकारि निर्णय किया, विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे समाधि करता भया, आकाशवत् निर्मल चित्त इंद्रियोंकी वृत्ति वाह्यते खैंचिकरि अचल करत भया, शिर अरु ग्रीवाको सम करिकै चित्तकी वृत्ति अनंत आत्मा साक्षीभूत विषे स्थित करी, जैसे लकडियोंको जलाइकरि अग्निकी ज्वाला शांतहो जाती है, तैसे प्राण अरु मनकी वृत्तिका स्पंद मिटगया, जैसे शिलाविषे पुतली होती है, जैसे मूर्त्तिकी लिखी पुतली होती है, तैसे स्थित होगया, तीनसौ वर्ष समाधिविषे रहा, जैसे एक घड़ी होती है, तैसे समाधि लगे हुए व्यतीत हो गया, मेघोंकी वर्षा शिरकेऊपर होवै, अरु मंडलेश्वर आनि शिकार खेलै अरु वडे शब्द होवैं, रीछ वानरोंके शब्द होवैं, सिंहके हाथियोंके शब्द होवैं, वनको अग्नि लगै, गडेकी वर्षा होवै, वायु चलै, धूप पडैं, तौ भी समाधिते न जागै, जैसे पहाडविषे शिला दवी होती है, तैसे शरीर दव गया, जव तीन सौ वर्ष व्यतीत भये, तव चित्त आनि फुरा कि, शरीर मेरेसाथ है, परंतु प्राण नहीं फुरैं, तव चित्तके फुरनेविषे आपको कैलास पर्वतऊपर देखत भया, कदंव वृक्षके नीचे देखत भया, सौ वर्षपर्यंत मौन होकारि जीवन्मुक्त निर्मल आत्माकारि विचरा, वहुरि विद्याधरोंविषे विद्याधर होकारि विचरा, सौ वर्षपर्यंत तिसके अनंतर और पंचयुग होकारि इंद्र हुआ, देवता नमस्कार करै हैं ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! देश काल अरु मन आदिक प्रतिभा अनियत अनियम उसको कैसे भासा ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! चित्त सर्व आत्मारूप है, जैसा जैसा तिसविषे फुरणा होता है, तैसा हो भासता है, जैसे जैसे देशकालका फुरणा होता है तैसेही अनुभव होता है ॥ हे रामजी ! जेता कछु प्रपंच है, सो मनोमात्र है; जैसा फुरणा तीव्र होता है, तैसे अनुभव सत्ताविषे भासता है, तहां स्थित होता है, जव और भ्रमविषे गया तौ नियमके जैसा होता जाता है, तैसेही जो अज्ञानी होताहै, तिसको वासनाकारि नानाप्रकारका जगत् भासताहै, अरु जो ज्ञानवान् होता है, सो सव आत्माको देखता है, तिसका फुरणा भी अफुरणा है, अरु वासना भी अवासनाहै, वीतव मुनीश्वर जो देखता भया, सो चित्तके फुरणेकारि देखता भया, परंतु स्वस्थरूप था, उसकी वासना भी अवासना थी, जैसे भूना वीज नहीं उगता, तैसे वासना

अवासना थी भ्रांतिका कारण न था, कल्पपर्यंत चंद्रधारी सदाशिवका गण होकरि विचरा, समस्त विद्याका ज्ञाता सर्वज्ञ त्रिकालदर्शी जीवन्मुक्त होकारि विचरा ॥ हे रामजी ! जैसा किसीका संस्कार दृढ होता है, तैसा तिसको अनुभव होता है, जैसे वीतव चित्तको स्पंदकरिकै जीवन्मुक्तका अनुभव करत भया ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जो ऐसे है तौ जीवन्मुक्तके मतविषे बंध मोक्ष हुआ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तको सब ब्रह्मस्वरूप भासता है, बंध मोक्ष अवस्था तिसविषे कहां है, ज्ञानमात्र आकाशविषे जैसा फुरणा होता है, तैसा हो भासता है ॥ हे अंग ! यह सब चिन्मात्रस्वरूप है, अरु जगत् जो नानाप्रकार भासता है, सो मनकरि भासता है वास्तवते न जगत है, न अजगत् है, केवल ब्रह्मसत्ता स्थित है, जगतके भूत भविष्य केवल ब्रह्मसत्ता भासती है, चिन्मात्रते इतर जो कछु जगत् भासता है, सो मनके फुरणेकरि भासता है, जिनको ऐसा ज्ञान नहीं तिनको जगत् वज्रसारते दृढ हो भासता है, अरु ज्ञानवान्को आकाशवत् भासता है ॥ हे रामजी ! अज्ञानकरिकै मन उपजा है, तिस करि संपूर्ण जगत् हुआ है, वास्तवते और कछु नहीं, जैसे समुद्रविषे तरंग हुल्लास होता है, तैसे चिदाकाशविषे आकार भासते हैं, जब चित्त अचित्त हो जाता है, तब द्वैत कछु नहीं भासता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशम प्रकरणे वीतवमनोज्ञवर्णनं नाम अशीतितमः सर्गः ॥८०॥ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! वीतव मुनीश्वरका जो शरीर विंध्याचल पर्वतविषे परा था, बहुरि तिसकी क्या अवस्था भई ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! तिसके अनंतर आत्मवेत्ता वीतव मुनीश्वर जो तेजवान् था, सो एक कालविषे शरीर गणोंको मनकरि विचारत भया, कई नष्ट हो गए हैं, कई अनष्ट हैं, तिन अनष्टोंविषे पृथ्वीके मध्य जो स्थित था, तिसको देखत भया, जो कंदराविषे धूलि पड़ी थी, वर्षा करिकै क्षुभ गया है, कीचड़विषे फँसा ऊपर तृण जाल जमगया है, तिसको देखिकरि कहने लगा कि, इसविषे प्रवेश करौं, बहुरि विचार किया कि, यह तौ जड गुंग है, अरु फँसा हुआ है, इसके निकासनेको मैं समर्थ नहीं, ताते सूर्यमंडलको जाऊं, जो सूर्यका सारथी अरुण पंगु है, सो इसको निकासैगा, अथवा इसकेसाथ मेरा क्या प्रयोजन है, यह नाश हो जावै अथवा रहै, एता यत्न मैं किसनिमित्त करौं,

अपने निर्गुण स्वरूपविषे स्थित होऊँ, देहसाथ मेरा क्या है, इसप्रकार वीतव तूष्णीं हो गया है, एक क्षणके अनंतर बहुरि चिंतना भई, जो पृथ्वीविषे देहकरि न कछु त्यागने योग्य है, न कछु ग्रहण करने योग्य है, ताते देहका त्यागना रखना समान है, यह शरीर किसनिमित्त दवा रहै, अरु कछुक काल इसका प्रारब्धवेग है, आकाशविषे सूर्य स्थित है, तिसविषे प्रवेश करौं, जैसे आदर्शविषे प्रतिबिंब प्रवेश करता है, तैसे करो, अरु शरीरको सूर्यके सारथिकरि निकासौं ॥ हे रामजी ! ऐसे विचारकरि मुनीश्वर पुर्यष्टकारूपसों आकाशमार्गमें चढ़, सूर्यके अंतर वायुरूप प्रमाणकरिकै प्रवेश किया, जैसे शस्त्र पिंडविषे अग्नि प्रवेश करताहै, तब सूर्य जानत भया कि, वीतव मुनीश्वरने प्रवेश कियाहै, सो किसनिमित्त आया है, सर्वज्ञ था, तिसकरि जानत भया कि, पृथ्वीविषे इसका शरीर कीचड अरु तृणोंकरि आच्छादित हुआ है, तिसके निकासने निमित्त आया है, ऐसे विचार अपने सारथीको कहत भया ॥ हे सारथी ! विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे वीतव मुनीश्वरका शरीर दवा पडा है, तिसको तू जाइकरि निकास दे, तब अरुण नामक जो सारथी जिसका शरीर हस्तिवत् है, सो विंध्याचल पर्वतविषे आइकरिकै नखोंसे शरीरको निकासत भया, सो कैसे नखहैं, जिनसे पहाड उखार डारे हैं, उन नखोंसे धराकोटरविषे गाड़े हुए शरीरको काढत भया, जैसे समुद्रके तीर भिहका तंतु काढि पाते हैं, तैसे पर्वतकी कंदराते शरीरको निकास डारा, तब मुनीश्वरने पुर्यष्टकाकरिकै शरीरविषे प्रवेश किया, जैसे पक्षी आकाश मार्गते उड़ता आलयविषे आइ प्रवेश करै, तैसे शरीरविषे आइ प्रवेश किया, अरु सावधान होकरि अरुणको नमस्कार करत भया, अरुण वीतवको नमस्कार करत भया, परस्पर नमस्कार करिकै अपने कार्यकी ओर हुए; अरुण आकाशमार्गको गया, अरु मुनीश्वर तलावकी ओर गया, कीचडसाथ भरा हुआ शरीरसों मुनीश्वर तिसतलावविषे डुबकीमारतभया, जैसेहस्ती मल धोता है, तैसे स्नान करिकै संध्यादिक कर्म करत भया, सूर्य भगवान्का पूजन किया, जैसे प्रथम तपकरि शरीर शोभताथा, तैसे भूषित किया, मैत्री समता सत्य मुदिता आदिक

गुणोंकारि संपन्न भया, ब्रह्म लक्ष्मीकारि शोभत भया, अरु सबके संगते रहित भया, जो इन गुणोंको भी स्वरूपविषे स्पर्श न करै, आपको शुद्ध स्वरूप जानै ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवसमाधियोगोपदेशो नाम एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥
वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार जब केतेक दिन व्यतीत भये, तब समाधिके निमित्त मुनीश्वरका मन उदय हुआ, तब जाइकारि विंध्याचल पर्वतकी कंदराविषे स्थित भया, पूर्व जो विचार अभ्यास किया था अरु परावर परमात्मा दृष्टि भई थी, तिसकारि बहुरि चित्तको कहत भया ॥ हे चित्त! इंद्रियों मैं तुम्हारा पूर्वही प्रहारकर छोडा है, अब तुम्हारे अचित्तविषे अनर्थ अर्थ कोई नहीं, काहेते जो अस्तिनास्ति कलना मेरी नष्ट भई है, अस्ति नास्तिके पीछे जो शेष रहता है, तिसविषे स्थित हौं जैसे पहाडका सिंह अचल होता है, तैसे अचल हौं अरु सदा उदयरूप असत्की नाईं स्थित हौं, उदय स्वरूप इसकारि जो सदा ज्ञानस्वरूप प्रकाशवान् हौं अरु असत्की नाईं इसप्रकार जो सदा अक्रियरूप हौं, अरु असत् रूप उदयकी नाईं स्थित हौं, असत इस कारणते कि, मन इंद्रियोंका विषय नहीं, अरु उदयकी नाईं इस कारणते कि, सबका साक्षीभूत हौं, अरु सदा समरस प्रकाशरूप अपने आपविषे स्थित हौं, बहुरि कैसा हौं प्रबुद्ध हौं; अरु सुषुप्तिविषे स्थित हौं, प्रबुद्ध इस कारणते जो इंद्रियोंको विषयकी उपलब्धि करता हौं, अरु सुषुप्त इस कारणते कि हर्ष शोक इष्ट अनिष्टसों रहित हौं अरु जगत्की ओरते सुषुप्ति समाधिविषे हौं, तहां जाग्रत् हुआ, तुरीयापद आत्मतत्त्व विषे स्थित हौं, जैसे स्थाणु स्तंभ स्थित होता है, तैसे स्थितरूप हौं नित्य शुद्ध समानसत्ता आत्मपद तहां मैं निरामय स्थित हौं ॥ हे रामजी! इसप्रकार चिंतवता हुआ मुनीश्वर ध्यानविषे जुडा षट् दिनपर्यंत ध्यानविषे रहा, उपरांत जागा तब एक क्षणके समान जानत भया, जैसे सोया हुआ क्षणविषे जागै, इसीप्रकार वीतव शुद्ध पदको प्राप्त भया जीवन्मुक्त होइकारि चिरकालपर्यंत विचरत भया; न कोऊ वस्तु हर्ष देवै, न शोक देवै, चलता हुआ भी स्थिर रहै, इंद्रियोंका व्यवहार करता इष्ट अनिष्ट प्राप्तिविषे सम रहै, कदाचित् किसीविषे चलायमान न होवै, चलता बैठता मन इंद्रियोंको कहै ॥ रे इंद्रियों! सरहु, हे मन! तू शमवान् अब हुआ है

आत्माको पाइकरि अव देख, तुझको क्या सुख है, जिस सुखके पाएते और पाने योग्य कछु न रहता निराग सुख है, ऐसा जो परम शांतरूप अचल सुख है, तिसको आश्रय करिकै चंचलताको त्याग. अरु हे इंद्रियों, तुम्हारा वास्तवते स्वरूप कछु नहीं अरु आत्म पदविषे तुम दृष्ट नहीं आती, अपने स्वरूपके जानेविना तुम मुझको दुःख देती थीं, अब मैं अपने स्वरूपको प्राप्त भया हौं, मेरेको वश करनेकी समर्थता तुमको नहीं. काहेते कि. तुम अवस्तुरूप हौ, आत्माके प्रमादकरि तुम्हारा भान होता है, जैसे जेवरीविषे सर्प भासता है तैसे आत्माविषे अनात्मभावना अरु अनात्माविषे आत्मभावना होती है, सो अविचारकरि होती है, अरु विचार करिकै नहीं होती, अव विचार करिकै यह भ्रम निवृत्त भया है, तुम इंद्रियांगण और हौ, अहंकार और है, ब्रह्म और है, कर्तृत्व और है, भोक्तृत्व और है, औरका दुःख आपविषे मानना यही मूर्खता है, जैसे वनकी लकडी और है, बांस और हैं, चर्म और है, जिस करिकै रथ वनता है, अरु लोहा और पीतल और वड़े और जिसकरि रथ जडा है, बैल और जो रथको चलावते हैं, तिन सव करिकै रथ वनता है, जैसे गृहका आकार होता है, तैसे रथ है, तिसविषे बैठनेवाला पुरुष और होता है, रथकी सामग्री परस्पर और होती है, तिसविषे बैठनेवाले कहैं कि, मैं रथ हौं सो नहीं वनता, तैसे शरीररूपी रथ है, अज्ञानकरिकै मिला है, इंद्रियां और हैं, मनादिक और हैं, तिसविषे पुरुष हैं, सो जीव है जीव कहै मैं शरीर हौं, वडी मूर्खता है, तिस शरीरके सुख दुःख मूर्खता करिकै आपको मानते हैं, जो विचार करिकै देखैं तौ रागद्वेषके क्षोभते मुक्त होवैं, मैं अविचाररूपी विस्मृति स्वरूपको दूरते त्यागा है, अरु स्वरूपकी स्मृती स्पष्ट करी है, जो आत्मतत्त्व सत् है, तिसको सत् जाना है, अरु अनात्मा असत् है, तिसको असत् जाना है, जो सत है, सो स्थित है, जो असत् है, सो क्षीण हो जाता है ॥ हे रामजी ! इस प्रकार वीतव मुनि विचार करिकै जीवन्मुक्त हुआ, अपने स्वरूपविषे बहुत वर्षोंको व्यतीत किया, अपना जो निर्भयपद है, जिसविषे चित्तादिक भ्रम सव नष्टहो जाते हैं, ऐसे शुद्ध पदको प्राप्त हुआ यथा भूतार्थ आत्म ध्यानविषे स्थित भया, ग्रहण अरु त्यागनेकी भावना कछु नहीं रही, परिपूर्ण आत्मपदको प्राप्त भया, अगस्त्यमुनिका पुत्र

वीतव मुनि, तिस पदको पाइकारि निर्वासनिक हुआ, बहुरि जिस कालविषे जिस प्रकार विदेहमुक्त हुआ है सो सुनः वीस हजार अरु सातसौ वर्ष जीवन्मुक्त हो कारि रहा, बहुरि विदेहमुक्त भया, जो इच्छा अनिच्छाते रहित पद है, जन्ममरणका जिसविषे अंत है, रागद्वेषते रहित पदको प्राप्त हुआ है ॥ हे रामजी ! हिमालयपर्वतकी कंदरा थी, तिसविषे प्रवेश किया, पद्मासन धारि कारि हाथ जोडकर कहत भया ॥ हे राग ! तू निरागताको प्राप्त होउ, अरु तू निर्दोषताको प्राप्त होउ, तुम्हारे साथ मैं चिरपर्यंत क्रीडा करी है, परंतु विवेकते रहित करी है, तुम अब जाओ, मेरा तुमको नमस्कार है, अरु हे भोग ! तुम्हारी लालसा कारि मुझको परमपदका विस्मरण होगया था; जैसे माता सुखके निमित्त पुत्रकी लालसा करती है, तैसे मैं सुख जानिकारि तुम्हारी लालसा करता था, अब जाओ, तुमको मेरा नमस्कार है, अब निर्वाण पदको प्राप्त होता हौं ॥ हे दुःख ! तुझको भी नमस्कार है, तेरे उपदेशकारि मैं आत्म पदको प्राप्त हुआ हौं, काहेते कि, मैं सदा भोग सुखको चाहता था, जब सुख प्राप्त होता था, तब तुझको भी साथ ले आता था, सुखते तेरी उत्पत्ति होती है, सुखकी लालसाविषे तौ मैं अनेक जन्म पाता रहा, अरु जब सुख आवै तब तुझको भी साथ ले आवै, तुझको देखिकारि मुझको आत्मपदकी इच्छा उपजी, तेरे प्रसादकारि मैं परम शीतल पदवीको प्राप्त हुआ हौं ॥ हे दुःख ! तू तौ दुःख था, परंतु मुझको सुख प्राप्त किया, ताते तेरा कल्याण होवै, तू अब जाउ ॥ हे मित्र ! संसारविषे जीवना असार है, जिसका संयोग होता है, तिसका वियोग भी होता है, अरु तुझने मेरे साथ बड़ा उपकार किया है, जो अपना नाश किया है, अरु मुझको सुख प्राप्त किया है, जो तू मुझको प्राप्त न था, तौ मैं आत्मपदके निमित्त कब यत्न करता तुझने अपना नाश करना माना, परंतु मुझको सुख प्राप्त किया ॥ हे मित्र ! तू बांधवोंकी नाईं चिरकालपर्यंत मेरे साथ रहा, तू कदाचित मुझते दूर न भया, मैं तेरा नाश नहीं किया, तुझने अपना नाश आपही कियाहै, तू मुझको जब प्राप्त हुआ था, तब मुझको विवेकउत्पत्ति भयी, तिस विवेकने तेरा नाश कियाहै, ताते तुझको मेरा नमस्कार है ॥ अरु हे माता तृष्णा ! तुझको नमस्कार है, तू सदा मेरे साथ होइ रही है, कदाचित् त्याग नहीं

किया, जैसे अजाने बालकका त्याग माता नहीं करती, तैसे तुझने मेरा त्याग नहीं किया, अब तू जा ॥ हे कामदेव ! तुझने आपही विपर्यय होकरि अपना नाश कियाहै, जब तू बहिर्मुख था, तब जीवता था, जब अंतर्मुख, हुआ, तब तू मिट गया, तुझको नमस्कार है. अरु हे सुकृतो ! तुमको नमस्कार है, तुमने भी बड़ा उपकार किया था, जो नरकोंसे निकास करि स्वर्गोंविषे प्राप्त किया था परंतु अंत सबका वियोग होना है, ताते तुम भी जाउ. हे दुष्कृतो ! तुम भी जाउ, विकर्मरूपी तुमारा क्षेत्र है, अरु युवा अवस्था बीज है, तिसते नरक दुःख फल होता है, सो तुम्हारे साथ भी संयोग हुआ था, ताते तुमको भी नमस्कारहै, तुम भी जाउ ॥ हे मोह ! तुमको भी नमस्कार है, तुझकरि चिरकाल मैं बांधा था, अरु नाना प्रकारके स्थानको प्राप्त होता था, अरु तू भय दिखाता था, तिसकरि मैं भयको प्राप्त होता था, ताते तुझको नमस्कार है, अब तू जाउ ॥ हे गिरिकंदरा ! तुझको भी नमस्कार है, तुझविषे मैं चिरकाल तप किया है ॥ हे बुद्धि ! हे विवेक ! तुमको भी नमस्कार है, तुमने मेरे साथ उपकार किया है, जो संसार बंधनते मुक्त किया है, तुम भी जाओ, हे दंड ! अरु तुंबा ! तुमको भी नमस्कार है, तुम भी जाओ, बहुत काल तुम भी मेरे संबंधी रहे हो ॥ हे देह ! रक्त मांसका पिंजर होइकरि तू मेरे साथ बहुत काल रही है, अरु तुझने उपकार किया है कि, विवेक उपजानेका स्थान तूही है, तेरे संयोगकरि मैं परमपद पाया है, तू भी अब जा, तुझको नमस्कार है ॥ हे संसारके व्यवहारो ! तुमको भी नमस्कार है, तुम्हारेविषे मैं बहुत क्रिया करी है, स्थान देश क्रिया कर्म किया है, ऐसा पदार्थ जगत्‌विषे कोई नहीं जो दिया लिया न होवैगा, अरु ऐसा कर्म कोई नहीं मेरेविषे जो किया न होवैगा, अरु ऐसा देश कोई नहीं, जो देखा न होवैगा, अब सबको नमस्कार है ॥ हे इंद्रियो ! प्राण मन आदिक तुमको नमस्कार है, हमारा चिरकाल संयोग था, अब वियोग हुआ. काहेते कि, जिसका संयोग होता है, तिसका वियोग भी होता है, ताते तुम्हारा हमारा भी वियोग होताहै, नेत्रोंकी ज्योति सूर्यमंडलविषे जाय लीन होवैगी, घ्राणोंकी गंध पृथ्वीविषे जाय लीन होवैगी, प्राण त्वचा पवनाविषे जाय लीन होवैंगे, श्रवण आकाशविषे लीन होवैंगे, मन चंद्रमाविषे लीन होवैगा, जिह्वा रसविषे

लीन होवैगी, इसी प्रकार सब अपने अपने अंशविषे जाय लीन होवैंगे; जैसे लकडियोंके जलेते अग्नि शांत हो जाती है, जैसे शरत्कालविषे मेघ शांत हो जाता है, जैसे तेलते रहित दीपक निर्वाण हो जाता है, जैसे सूर्यके अस्त हुए प्रकाश शांत हो जाता है, तैसे मनआदिक शांत हो जावैंगे ॥ हे रामजी! ऐसे विचार करते करते मन सर्व कार्योंते रहित प्रणवके ध्यानविषे लगा, सर्व दृश्यते शांत होगया, मोहरूपी मलको त्यागिकरि चित्त प्रणवके विचारमें लगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवोपाख्याने इंद्रियनिर्वाणवर्णनं नाम द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी! इसप्रकार शब्द ब्रह्म प्रणवका उच्चार करत भया, पंचम भूमिका जो चित्तकी अवस्था है, तिसको प्राप्त भया है; अंतर बाह्यके जो स्थूल सूक्ष्म पदार्थ हैं, अरु त्रिलोकीके संकल्प सर्व त्यागकरि अक्षोभरूप स्थित भया, जैसे चिंतामणि अपने प्रकाशविषे स्थित होती है, जैसे पूर्ण कालकरि चंद्रमा अपने आपविषे स्थित भया है, अरु जैसे मंदराचलके निकसे क्षीरसमुद्र स्थित भया है, जैसे मथनेते रहित मंदराचल स्थित भया है, जैसे कुंभारका चक्र फिरता फिरता ठहर जाता है, जैसे सूर्यके अस्त हुए व्यवहारक्रिया जीवोंकी ठहर जाती है, अरु जैसे मेघते रहित शरत्कालका आकाश निर्मल होता है, जैसे प्रकाश तमते रहित आकाश होता है, तैसे फुरणते रहित मन शांतिको प्राप्त भया प्रणवके ध्यान करिकै बहुरि तिस वृत्तिके अंतको प्राप्त भया मंत्रकोभी त्यागत भया, जैसे महापुरुष क्रोधको त्यागता है तैसे वृत्तिको त्यागत भया, बहुरि तेज प्रकाश उदय हुआ, तिसको भी निमेषविषे त्यागत भया, आगे न तेज है, न तम है, तिसविषे अभाव वृत्ति रहती है, तिसको भी निमेषविषे त्यागत भया, तब जैसे नूतन बालककी जन्मके समय पदार्थज्ञानते रहित अवस्था होती है, तैसे अवस्था प्राप्त भई, तब जो सत्तामात्र आत्मतत्त्व सुषुप्तपद है, तिसका आश्रय किया, महाअचल जो सुमेरुकी नाईं स्थिर अवस्था है, तिसको प्राप्त हुआ, बहुरि केवल अचेतन चिन्मात्रपद तुरीया निरानंद आनंद है, जिसविषे स्वरूपते इतर और आनंद नहीं ऐसे आनंदको प्राप्त हुआ जो असत सत्रूप है सर्वक्रियाते अतीत है, इस कारणते असत् है, अनुभवरूप है, इस कारणते सत्यस्वरूप है, ऐसे अशब्द पदको प्राप्त हुआ,

जो परम शुद्ध पावन पद है, अरु सर्व भावके अंतर प्राप्त है, अरु सर्व भाव शब्दते रहित है, जिसको शून्यवादी शून्य कहते हैं, ब्रह्मवादी ब्रह्म कहते हैं, विज्ञानवादी जिसको विज्ञान कहते हैं, सांख्यमतवाले जिसको पुरुष कहते हैं, योगवाले जिसको ईश्वर कहते हैं, शैवी जिसको शिव कहते हैं, वैष्णव जिसको विष्णु कहते हैं, शाक्त जिसको परमशक्ति कहतेहैं, कालवादी जिसको काल कहते हैं, आत्मवादी जिसको आत्मा कहते हैं, अरु माध्यमिक जिसको मध्यम कहते हैं, इत्यादिक जो शास्त्रोंवाले कहते हैं, सो एक परब्रह्म कहते हैं, काहेते जो सर्वदा सर्वकाल सर्वप्रकार सर्वविषे सर्वरूप वही है, ऐसे सर्वात्माको वीतव मुनीश्वर प्राप्त भया, जिस आनंदसमुद्रके बलकरि सर्वको आनंद होता है, ऐसे आत्मतत्त्व अनुभवरूप अपने आनंदको प्राप्त हुआ वही रूप होत भया, जो अन्यहै, निरन्य है, निरंजन है, सर्व है, असर्व है, अजर है, अमरहै, सबको आदि है, सकलंकहै, अरु निष्कलंक है, ऐसा जो आकाशते निर्मल पदहै, तिसको वीतव मुनीश्वर प्राप्त हुआ ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवनिर्वाणयोगोपदेशो नाम त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! दुःखरूप संसारसमुद्रके पार वीतव मुनीश्वर परमपदको प्राप्त हुआ, जिस पदके प्राप्त हुए जन्ममरणको बहुरि नहीं पाता, जिस पदविषे स्थित हुआ परमशांत उपशम आनंदको प्राप्त भया, जैसे समुद्रविषे बुंद पड़ी हुई समुद्र हो जाती है, तैसे ब्रह्मसमुद्रविषे ब्रह्म होत भया, अरु शरीर जो वीतवका था, सो विरस होकरि गिर पड़ा, जैसे शीतकालविषे वृक्षोंके सूखे पत्र गिर पड़ते हैं, तैसे शरीर गिर पड़ा, शरीररूपी वृक्षथा, तिसविषे हृदयरूपी आलय था, तिसविषे प्राणरूपी पक्षी रहताथा, सो चिदाकाशविषे प्राप्त हुआ, जैसे खंभाणीकारि पत्थर धावता है, तैसे जाय प्राप्त भया, अपने स्वरूपविषे स्थित हुआ ॥ हे रामजी ! यह मैं वीतवकी कथा तुझको सुनाई है, सो अनंत विचारकरि युक्त है, इसप्रकार विचारकरि वीतव विश्रामवान् हुआ है, तुम भी उसको विचारकरि सिद्धता सारको प्राप्त होउ, और दृश्यकी चिंतवनाको त्यागि सावधान होउ ॥ हे रामजी ! जो कछु मैं तुझको पूर्व कहा है, सो तिस पदविषे प्राप्त हुआ बहुरि पाने योग्य कछु नहीं रहता, अरु अब जो कछु कहता हौं, अरु जो कछु पाछे कहौंगा, तिसको विचार कि,

मुक्ति ज्ञानहीकरि होती है, अरु ज्ञानहीकरि सब दुःख नाश होते हैं, ज्ञानहीकरि अज्ञान निवृत्त होता है, अरु ज्ञानहीकरि परम सिद्ध ताको प्राप्त होता है, पाने योग्य यही वस्तु है, दुःखोंके नाश करनेको और कोई समर्थ नहीं. यह निश्चय है कि, ज्ञानकरि सब फांस काटे जाते हैं, ज्ञानहीकरि वीतवने मनको चूर्ण किया ॥ हे रामजी ! वीतवकी संवित् जगतके अतीत होत भई, जेता कछु दुःख है, सो मनकरि होता है, मनके उपशम हुए सब जगत् अनुभवरूप हो जाता है, वीतव भी मनोमात्र था, मैं भी मनोमात्र हौं, तू भी मनोमात्र है, पृथ्वी आदि जगत् सर्व मनोमात्र है, मनते इतर कछु नहीं, जहां मन होता है, तहां जगत् होता है, मनही जगत्रूप है, अरु जगत्ही मनरूप है, जो ज्ञानवान् पुरुष है, सो मनकी दिशाको त्यागिकरिकै केवल चिदानंद आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, रागद्वेष विकार आदि तिनके मिट जाते हैं ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे वीतवविश्रांतिसमाप्तिर्नाम चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! वीतवकी नाईं विदितवेद्य होकरि रागद्वेषते रहित स्थित होउ, जैसे सहस्र वर्ष वीतव वीतशोक जीवन्मुक्त होकरि विचरा है, तैसे तू भी विचर; और भी बोधवान् राजा अरु मुनीश्वर हुए हैं, जैसे प्राप्त हुए राज्यादिक व्यवहारविषे रहे हैं, तैसे तू भी जीवन्मुक्त होकरि रहहु ॥ हे रामजी ! सुख दुःख कर्म आत्माको स्पर्श नहीं करते, आत्मा सर्वज्ञ है, तू किस निमित्त शोक करताहै, बहुत विदितवेद्य पृथ्वीविषे विचरते हैं, परंतु शोकको कदाचित् नहीं प्राप्त होते, जैसे तुम अब शोक नहीं करते ॥ हे रामजी ! तू अब स्वस्थ है, उदार है सम सर्वज्ञ है, आत्माहैं, तुझको बहुरि जन्म नहीं, जीवन्मुक्त पुरुष जो अपने स्वरूपविषे स्थित है, सो हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता है जैसे सिंह वानर गीदड आदिकके वश नहीं होता तैसे जीवन्मुक्त विकारोंते रहित होता है ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! इस प्रसंगविषे मुझको संदेह हुआ है, तिसको निवृत्त करौ, जैसे शरत्कालकरि मेघ नष्ट हो जाता है, तैसे नाश करौ ॥ हे तत्त्ववेत्ताविषे श्रेष्ठ! जीवन्मुक्तके शरीरविषे शक्ति क्यों नहीं दृष्ट आती जो आकाशविषे उड़ता फिरै, अरु सूक्ष्मरूपकरि और शरीरविषे प्रवेशकरि जावै, इत्यादिक शरीरविषे नहीं देखते ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! आकाशगमनादि जो सिद्धि है, सो त[illegible] देक

कर्मोंकी शक्ति है, जेते कछु जगत् विचित्र हैं, देखाईदेना बहुरि गुप्त हो जाना इत्यादिक वस्तु द्रव्यके स्वभाव हैं, आत्माके नके नहीं ॥ हे रामजी ! कोऊ द्रव्य क्रिया कालको यथाक्रम साधता है, तिसको शक्ति प्राप्त होती है, ज्ञानी साधै अथवा अज्ञानी साधै शक्ति प्राप्त होती है, परंतु शक्ति आत्मज्ञानका फल नहीं, आत्मज्ञानीको आत्मज्ञानकी सिद्धता होती है, वह आत्मा कारं आपविषे तृप्त होता है, सिद्ध जो अविद्यारूप है, तिसकी ओर नहीं धावता, जेता कछु जगत् है, सो तिसने अविद्यारूप जाना, है, ऐसे जानकरि पदार्थोंविषे नहीं डूबता, जो अज्ञानी है, सो सिद्धताके निमित्त इन पदार्थोंको साधता है, अरु जो ज्ञानवान् है, सो इन पदार्थोंकेवास्ते यत्न नहीं करता, अरु जो यत्न करै तौ ज्ञानी होवै; अथवा अज्ञानी होवै, इंद्रादिकोंके ऐश्वर्यको पाता है, अरु ज्ञानकी शक्ति नहीं, द्रव्यकी शक्ति है सो अविद्यारूपहै, अज्ञानी इनकी ओर धावते हैं, ज्ञानवान् नहीं धावते, वे सर्वते अतीत हैं, सर्व इच्छाका जिसने त्याग किया है, अरु आत्मपदविषे संतोष पाया है, वे इनकी इच्छा नहीं करते, इनकी इच्छा भोगों अथवा बड़ाईके निमित्त होती है, अथवा मान अरु जीवनेके निमित्त तथा सिद्धके निमित्त इच्छा होती है, आत्मज्ञानीको न भोगोंकी इच्छा होती है, न सिद्धता न मानकी इच्छा होती है, काहेते जो सब अनात्मा धर्म है, वह नित्य तृप्त परम शांतरूप है, वीतराग निर्वासनिक पुरुष है, अरु आकाशकी नाईं सदा अपने आपविषे स्थित है, जैसे सुख स्वाभाविक आता है, तैसे दुःख स्वाभाविक आता है, शरीरके सुख दुःखकी अवस्थाविषे चलायमान नहीं होता, नित्य तृप्त असंग होता है, जीवन मरणकी वृत्ति उसको नहीं फुरती, सर्वविषे सम रहता है, समुद्रविषे नदियां प्रवेश करती हैं, अरु समुद्र अपनी मर्यादाविषे स्थित है, तैसे ज्ञानवान्को क्षोभ नहीं प्राप्त होता ॥ हे रामजी ! जो कछु ज्ञानवान्को प्राप्त होता है, सो आत्माविषे अर्चन करते हैं, तिसको करनेविषे कछु अर्थ नहीं, अकरनेविषे कछु प्रत्यवाय नहीं होता, अरु तिसको किसीका आश्रय नहीं, सदा अपने स्वरूपविषे स्थित है, अरु यह जो सिद्धि हैं, सो मंत्र काल कर्मकरि होती हैं, एक योगक्रिया ऐसी होती है; तिसके साधनेकरि उडनेकी शक्ति हो आती है, एक मंत्रोंकरि शक्ति होती है, एक गुटका

मुखमें रखनेकरि उड़नेकी शक्ति होती है, इत्यादिक शक्तिकी प्रथमही नीति हो रहती है, तिसते अन्यथा नहीं होती ॥ हे रामजी ! जैसी शक्ति जिस साधनकरि नीति हुई है, तिसके अन्यथा करनेको सदाशिव भी समर्थ नहीं । काहेते जो स्वाभाविक स्वतःसिद्ध है, जैसे चंद्रमाविषे आदि शीतलता है, अरु अग्निविषे उष्णता है, इत्यादिक पदार्थोंविषे आदि नीतिकरि जो स्वयंभाव हुआ है, तिसके दूर करनेको समर्थ कोऊ नहीं, सर्वज्ञ जो विष्णु भगवान् है, सो भी अन्यथा करनेको समर्थ नहीं होता ॥ हे रामजी ! जिस द्रव्यविषे मारनेकी सत्ता है, सो मारता है, मद्यविषे मत्त करनेकी शक्ति है, तैसे द्रव्य योग काल आदिकविषे सिद्धता शक्ति नीति हुई है, जैसे एक औषधमें क्लेश करनेकी शक्ति है, तिसके पायेते क्लेश होता है, जैसे इनविषे अपनी अपनी शक्ति है, जो इनको साधता है, तिसको वह प्राप्त होती हैं, जो आत्मज्ञानी इनका साधन करै, वह कर्तौविषे भी अकर्त्ता है, अरु आत्मज्ञानके पानेविषे सिद्धि कछु उपकार नहीं कर सकती, परंतु जो इनकी वांछा करै तौ यत्न करिकै पाता, यत्न विना नहीं पाता आत्मज्ञानीको इच्छा भी नहीं होती, आत्मपरायणही होता, है आत्मलाभकरि सर्व इच्छा तिसकी शांत हो जाती है ॥ हे रामजी ! जेते लाभहैं, तिनते परम आत्मलाभहै, आत्माको पाइकरि बहुरि इच्छा किसीकी नहीं होती, जैसे अमृतके पान किये और जलकी इच्छा नहीं करता, तैसे आत्माके लाभ करि और इच्छा नहीं, होती, ऐसे आत्मलाभ जिनने पाया है, तिनको इनकी इच्छा कैसे होवै, जैसी जैसी किसीको इच्छा होती है, तिसको तैसाही प्राप्त होता है, ज्ञानी होवै अथवा ज्ञानते रहित होवै, इच्छा प्रयत्नके अनुसार प्राप्त होती है, यह जो वीतव था, तिसको इच्छा कछु न रही थी, अरु प्रथम जो सूर्यपास गमनकी शक्ति इसविषे दृष्ट आई थी; सो क्रियाके साधन करिकै थी, पीछे जब ज्ञान उपजा तब इच्छा कछु न रही ॥ हे रामजी ! जो कछु किसीको फल प्राप्त होता है, सो अपने प्रयत्नकरि होता है, जो ज्ञानवान् है, सो सदा तृप्त रहता है, तिसको इष्ट अनिष्टकी इच्छा कछु नहीं फुरती ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! एता काल जो वीतव तीन सौ वर्ष समाधिविषे रहा, तब तिसका शरीर पृथ्वीसाथ पृथ्वी क्यों नहो गया, अरु सिंह बघाडादिक उसको क्यों भोजन न करि गए ? अरु

पाछे विदेहमुक्त हुआ, प्रथम क्यों न हुआ ? जो पृथ्वीविषे दबे हुएको निकासने निमित्त बड़ा यत्न किया, इस संशयको निवारण करो ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो संवित् वासनासाथ बांधी हुई है, सो सुखदुःखको भोगती है अरु मलिन भावकरि आवरी हुई है, अरु जो वासनाते रहित है, सो शुद्ध समतारूप है, सुखदुःखके भोगते रहित है, किसी कारणकरि छेदी नहीं जाती ॥ हे रामजी ! जिस जिस पदार्थविषे चित्त लगता है, सोई सोई पदार्थ स्वरूपविषे भासता है, यह पदार्थकी शक्ति है, जैसी पदार्थोंविषे शक्ति होती है, तैसी भासती है, इस कारणते बहुत वर्ष व्यतीत होते हैं, तौ भी समाधिके बलकरि तिसका शरीर ज्योंका त्यों रहताहै. काहेते कि, चित्त जिस पदार्थविषे लगता है, तिसका रूप हो जाता है, जैसे मित्रको मित्रभावकरि देखताहै, स्वाभाविकही प्रसन्न होता है, अरु शत्रुको देखिकरि चित्तविषे स्वाभाविकही अप्रसन्नता फुरि आती है, मिष्ट वस्तुको देखिकरि चित्त स्वाभाविक लोलुप हो जाता है, कटुकविषे विरसताको प्राप्त होता है, जैसे मार्ग चलनेवालेका चित्त मार्गके पर्वत वृक्षोंके रागकरि बंधायमान नहीं होता, अरु जैसे चंद्रमाके निकट गएते शीतलता होती है, सूर्यके निकट उष्णता प्राप्त होती है, सो पदार्थकी शक्तिहै, जिस पदार्थसाथ वृत्तिका स्पर्श होता है, तिसका स्वाभाविक आरंभ विफल प्राप्त होता है, तैसे जब योगी देह इंद्रियोंकी वासना ममत्वभावको त्याग कर समभावविषे प्राप्त होता है, तब तिसको समभावका अनुभव होताहै. अर्थ यह कि, सर्वविषे एकही भासता है, इस कारणते शरीरको सिंहादि कछु कोऊ छेदि सकते नहीं, जो जीव उसके घात करनेको आते हैं, सो हिंसाभावको त्यागि देते हैं, अहिंसक हो जाते हैं, इस कारणते निकट आय शांत हो जाते हैं, वीतवका शरीर छेदनको न प्राप्त भया, न पृथ्वीविषे पृथ्वीहो गया, सर्वत्र समता आकाश एकही स्थित है, काष्ठ लोष्ठ पत्थर ब्रह्मादि तृणपर्यंत सर्वविषे एक अनुस्यूत है, अरु जहां पुर्यष्टका होती है, तहां भासता है, जहां पुर्यष्टका नहीं होती, तहां नहीं भासता, जैसे सूर्यका प्रतिबिंब सब ठौरविषे पूर्ण है, परंतु जहां स्वच्छ ठौर दर्पण जलते आदि लेकरि होते हैं, सो भासते हैं; जहां उज्ज्वल ठौर नहीं होता, तहां प्रतिबिंब नहीं भासता तैसे जहां पुर्यष्टकाहै, तहां संवित् भासती है, अन्यथा

नहीं भासती, इस कारणते जो वीतवकी संवित् समभावविषे स्थित है, उसको किसी तत्त्वका अरु जीवका क्षोभ नहीं होता, अरु पंच तत्त्वोंका क्षोभ तब होता है, जब प्राण फुरते हैं, जब प्राण फुरणेते रहित होता है, तब तत्त्वोंका क्षोभ नहीं होता, सो वीतवकी बाह्य अरु अंतर स्पंदकला प्राणोंकी शांति हो गई थी, प्राण अरु चित्तकला दोनों फुरणेते रहित थीं, इसका हृदय भी क्षोभित न भया ॥ हे रामजी ! देहरूपी गृहविषे चित्त अरु वायुका स्पंद शांत हो जाता है, जब इनका फुरना शांत होता है, तब शरीर नाश हो जाता है, तब सब सुमेरुकी नाईं स्थित हो जाते हैं किसीकी समर्थता नहीं, जो तिसको क्षोभ करै, अरु नाश करै; योगीश्वरका चित्त अरु प्राण निस्पंद हो जाता है, सो इनको वश करिकै जुड़ता है, तब उसको न तत्त्वोंका क्षोभ होता है, न वात पित्त कफका क्षोभ होता है, न और कछु क्षोभ होता है, इसकरिकै योगीका शरीर सहस्र वर्षपर्यंत भी ज्योंका त्यों रहता है, नष्ट नहीं होता है, जैसे वज्रको कोऊ चूर्ण नहीं कर सकता, तैसे तिसके शरीरको कोऊ नाश नहीं कर सकता, सबकी शक्ति तिसकेऊपर कुंठित हो जाती है, इस कारणते वीतवका शरीर ज्योंका त्यों रहा, अरु तब क्यों न विदेहमुक्त हुआ सो सुन ॥ हे रामजी ! तत्त्वज्ञ विदितवेद वीतराग महाबुद्धि है जिनकी, अभिमानरूपी गांठ टूट पडी है, सो पुरुष स्वतंत्र स्थित होता है, तिनको न कोऊ प्रारब्ध कर्म है न संचित कर्म है, न वर्तमानका कर्म है, सबते मुक्त तत्त्ववेत्ता स्वतंत्र स्थित होते हैं, अरु स्वेच्छ विचरते हैं, जैसी इच्छा करै, तैसी शीघ्र होती है ॥ हे रामजी ! वीतवको आकाशमात्रते जीवनेका स्पंद फुर आया, तब केताक काल जीवता रहा, जब उसकी संवित्विषे विदेह मुक्त होनेका स्पंद फुरा, तब विदेहमुक्त होगया; उनकी स्थिति स्वाभाविक स्वतंत्र होती है, जिसकी वांछा करता है सो तत्काल हो जाता है, मन आत्मपदविषे स्थित होता है, उनको कछु कृत्य कर्तव्य नहीं ॥ इति श्रीयोगवा० उपशमप्र० सिद्धिलाभविचारो नाम पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन् ! जब विचारकरि वीतवका चित्त शांत हो गया, तब उसको मैत्री करुणा आदिक गुण आन प्राप्त हुये, यह तुमने कहा, परंतु जब विवेक करिकै चित्त उसका नष्टहोगया, बहुरि मैत्री आदिक गुण कहां आनि

प्राप्त भए ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! चित्तका नाश दो प्रकारका है, जीवन्मुक्तका चित्त अचित्तरूप हो जाता है, अरु विदेह मुक्तका चित्त स्वरूपते नष्ट हो जाता है, जैसे भूना दाना होता है, तैसे जीवन्मुक्तका चित्त देखनेकरि चित्तरूप है, सो बीचते शब्दभाव नहीं, अरु जैसे दाना नष्ट हो जावै तैसे विदेहमुक्तका चित्त है सो देखनेमात्र भी नहीं रहता ॥ हे रामजी ! जो चित्तकी सत्यता है, सो दुःखोंका कारण है, अरु चित्तकी असत्यता सो सुखोंका कारण है, चित्तविषे विषयोंकी वासना फुरती है, सो चित्त जन्मोंका देनेहारा है, अरु दुःखोंका कारण है, गुणोंके संगकरि अहं ममभावविषे रहता अरु चित्तकी सत्यताकरि जीव कहाता है ॥ हे रामजी ! जबलग चित्त विद्यमान है, तबलग अनंत दुःख होता है, दुःखरूपी वृक्षका बीज चित्त है, जब चित्त नष्ट हुआ तब कल्याण हुआ ॥ राम उवाच ॥ हे ब्राह्मण ! मन किसका नाम हुआ, अरु कैसे नष्ट होता है, अरु अस्त कैसे होता है, सो कहौ ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे प्रश्नवेत्ताविषे श्रेष्ठ ! चित्तसत्ताका लक्षण मैं तेरे कहाहै, अब चित्त मृतकका लक्षण सब सुन, सुख अरु दुःखकी दिशा जिसके धैर्य स्वरूपको चलाय नहीं सकती, जैसे सुमेरुको पवन चलाय नहीं सकता तैसे जिसके चित्तको दुःख चलाय नहीं सकता, तिसका मृत्यु जान. अर्थ यह कि, वह चित्त सत्पदको प्राप्त भया है, उस चित्तते चिंता नाश होगई है, जैसे भूने दानेते अंकुर नाश हो जाता है; तैसे उसका चित्त नाश हो जाता है, आत्माते इतर जिसको कछु नहीं फुरता सो चित्त मृतक हुआ है ॥ हे रामजी ! अहं इच्छा द्वेषादिक विकार जिसके चित्तको तुच्छकरि सकै नहीं, तिसका चित्त मृतक जान अरु जिसको इंद्रियोंके विषय इष्ट अनिष्ट प्राप्त होवैं, अरु राग द्वेषकारि ग्रहण त्यागकी द्वैतभावना न उपजै, ज्यों को त्यों रहै, तिस पुरुषका चित्त मृतक जान, जिसका चित्त नाश हुआ है, सोजीवन्मुक्त जान, अरु जिसको संसारके इष्ट पदार्थोंविषे राग होता है, तिसकरि ग्रहणकी इच्छा करता है, अरु अनिष्टकी प्राप्तिविषे दोष करिकै त्यागनेकी इच्छा करता है, अहं ममभाव संयुक्त देहविषे अभिमान है, तिस करि आपको सुखी दुःखी मानता है, अपनेविषे अनुभव होता है, सोचित्त जीवता है, यह चित्त सत्यताहै, अरु जब चित्त संसारते विरक्त होवै, अरु जब चित्त सत्संग करै, सच्छास्त्रोंका

श्रवण मनन करै, अरु स्वरूपका अभ्यास करै, तब चित्त अचित्त हो जाता है, अरु परमानंदकी प्राप्ति होती है, तब जीवन्मुक्त होकरि विचरता है, अरु मैत्री आदिक गुण जिस प्रकार जीवन्मुक्तविषे होते हैं, सो सुन ॥ हे रामजी ! चित्तविषे जो संसारकी सत्यतारूपी मैल है, यही चित्तभाव है, सो आत्मज्ञानकरि नष्ट हो जाता है, तब मैत्री आदिक गुण आनि प्राप्त होते हैं, जैसे सूर्यके उदय हुए तम नष्ट हो जाता है, अरु प्रकाश उदय होता है, अरु जैसे भूने दानेका अंकुर जलि जाता है, तैसे ज्ञानकरि चित्तका चित्तत्त्वभाव नष्ट हो जाता है अरु मैत्री आदिक गुण उदय होते हैं, देखनेमात्र चित्त देखता है, अज्ञानीकी नाईं यत्न करता भासता है, परंतु अज्ञानीका चित्त जन्मका कारण है, ज्ञानीका चित्त जन्मका कारण नहीं, जैसे कच्चा दाना उगता है, भूना नहीं उगता, तैसे अज्ञानी जन्मता है, ज्ञानी नहीं जन्मता, जैसे चंद्रमा राहुते छूटता है, तब चित्तविषे मैत्री करुणा आदिक गुण आनि उदय होते हैं, जैसे वसंतऋतुके आए वल्लियां सब प्रफुल्लित हो आती हैं, तैसे चित्तभाव मिटते मैत्री आदिक गुण स्वाभाविक आनि फुरते हैं, अरु जो विदेहमुक्त होता है, तिसका चित्त स्वरूपते भी नष्ट हो जाता है, वहां गुण कोई नहीं रहता, वह अवस्था और कोई नहीं जानता, विदेहमुक्त जानता है, तिस विषे द्वैतकलपना कछु नहीं फुरती, निर्मल पावन पद है ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तका चित्त स्वरूपविषे अचित्त होकरि रहता है, अरु विदेहमुक्तविषे चित्त स्वरूपते नष्ट हो जाता है, इसकारणते जीवन्मुक्तविषे मैत्री आदिक गुण पाते हैं, विदेहमुक्तविषे आत्मा निर्मल निष्कलंक है, सो चित्तके नष्ट हुए विदेहमुक्तविषे रहता है, गुणोंकी कल्पना तिसविषे कोई नहीं फुरती, परम पावन निर्मल पदविषे स्थित होता है, अरु शांति आदिक गुण भी नष्ट हो जाते हैं, काहेते कि, चित्त स्वरूपते नष्ट हो जाता है, चित्तके नष्ट हुए चित्तकी अवस्था कहां रहै, न कोऊ गुण रहता है, न अवगुण रहता है, न वह गुणोंते उत्पन्न भया सार कहाता है, न अवगुणोंते उत्पन्न भया असार कहाता है, न लोलुप है, न लक्ष्मी है, न अलक्ष्मी है, न उदय है, न अस्त है, न हर्ष है, न शोक है, न तेज है, न तम है, न दिन है, न रात्रि है, न संध्या है, न दिशा है, न आकाश है, न अर्थ है, न अनर्थ है, न वासना है, न अवासना है,

न अंजन है, न निरंजन है, न सत्य है, न असत्य है, न चंद्रमा है, न तारे हैं, न सूर्य है, ऐसा जो सर्व कलनाते रहित पद है, शरत्कालके आकाशकी नाईं निर्मल है, अरु बुद्धिते परे पद है, तिसविषे औरकी गम नहीं, जैसे आकाशके स्थानको पवन जानता है, तैसे उसकी अवस्थाको वही जाने, तहां स्थित हुए सर्व दुःख शांत हो जाते हैं, ब्रह्मानंदविषे लीन हो जाता है, ज्ञानवान् आकाशकी नाईं निर्मल पदको प्राप्त होता है, जिसके पाएते और पाना कछु नहीं रहता ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे ज्ञानविचारो नाम षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! परमाकाशके कोशविषे एक पहाड़ है, तिसकेऊपर एक जगत्‌रूपी वृक्ष है, तारे तिसके फूल हैं, अरु मेंदु पत्र हैं, सूर्य चंद्रमा स्कंध हैं, देवता दैत्य मनुष्यादिक जीव सब तिस ऊपर पखेरू रहते हैं, सप्त समुद्र तिसकेपास बावडियां हैं, अनंत नदियां तिसविषे प्रवेश करती हैं, चतुर्दश प्रकारके भूतजात उत्पन्न होते हैं, सुखदुःखरूपी फलोंकारि पूर्ण है, मोहरूपी जलकारि सींचता है, सो दृढ़ होकारि स्थित हुआ है, तिसका बीज कौन है, यह ज्ञानरूपी सार बोधकी वृद्धिके निमित्त मुझको संक्षेपते कहौ ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इस संसारका बीज बडा शरीर है, जिसके अंतर आरंभकी घनता है, जब शुभ अशुभका आरंभ शरीरका अंकुर होता है, तब शुभ अशुभ करता है, ताते संसारका बीज शरीरहै, तिस शरीरका बीज चित्त है, राजस सात्त्विक तामस वृत्ति जिसके टास हैं, अरु जन्ममरणका भंडार है, अरु सुखदुःखरूपी रत्नका डब्बा है, ऐसा जो चित्त है, सो इस शरीरका कारण है ॥ हे रामजी ! जेता कछु जगज्जाल दृष्ट आता है, सो सब असत्‌रूप है चित्तके फुरणेकारि नानाप्रकारके आडंबर भासते हैं, जैसे गंधर्वनगर नानाप्रकारके आरंभसहित भ्रम कारिके भासते हैं, जैसे संकल्पपुर भासता है सो असत् है, तैसे यह जगत् असत् है, जैसे मृत्तिकाविषे घटभाव होता है, तैसे चित्तविषे जगत्का सद्भाव होता है, चित्तरूपी अंकुरके वृत्तिरूपी दो टास होते हैं, एक प्राणोंका फुरना, दूसरा दृढभावना, जब प्राणस्पंद होता है, हृदय गात्र जो है, इकहत्तर सौ नाडी हैं, जब तिनकी ओर संवेदनरूप चित्त उदय होता है, तब प्राणस्पंद तिनकी ओर नहीं फुरता, जब प्राण फुरता है, तब शुद्ध सात्त्विक

चित्त आनि उपजता है, तिसविषे जगत् भासता है, जैसे आकाशविषे नीलता भासती है, तैसे प्राणविषे नीलता भासती है, जब प्राणस्पंद होता है, तब चित्त संवित् उछलती है, जैसे हाथ कारि ताडना किया गेंद उछलता है, जैसे प्राणस्पंदविषे सर्वगत संवित् उपलब्धरूप होती है, तहां प्रतिबिंबितरूप होकरि सात्त्विक भागविषे स्थित होती है, महासूक्ष्मते सूक्ष्म है, जैसे वायुविषे गंध रहती है, सोई संवित्‌रूपको त्यागिकारि बहिर्मुख धावती है, तिसकरि नानाप्रकारका जगत भासता है, अरु नानाप्रकारकी वासना उठती है, तिस करिकै अनेक दुःखोंको प्राप्त होता है ॥ ताते हे रामजी ! संवित्‌को अंतर्मुख रोकना कल्याणका कारण है, जब संवित् स्वरूपविषे स्थित होती है, तब क्षोभ मिट जाता है, जब शुद्ध संवित्‌विषे अहं उल्लेख फुरता है, तब वेदनरूप होती है, सो चित्त है, चित्तकरि अनेक दुःख होते हैं, चित्तका होना अनर्थका कारण है, जब चित्त न उपजै, तब शांति हो जाती है, अरु चित्त तब निवृत्त होता है, जब प्राणस्पंद रोकिये अथवा वासना नष्ट होवै, सो ध्यान अरु प्राणायामकारि योगीश्वर प्राणोंको रोकता है, तब चित्त स्थित हो जाता है, यह योगकारि अनुभव करता है, अरु ज्ञानकारि भी अनुभव सुन ॥ हे रामजी ! चित्त वासनाकरिकै उत्पन्न होता है, सो वासना विचारते रहित फुरती है, जैसे बालकोंको जन्मतेही स्तनोंते दूध चूसनेकी वृत्ति फुरती है, तैसे अकस्मात्‌ते भावनाकी दृढतासों वासना फुरि आती है ॥ हे रामजी ! जिसविषे पुरुषकी तीव्र भावना होती है, सोईरूप पुरुषका होता है, स्वरूपके प्रमाद करिकै भासा है, तिसविषे दृढ़ प्रतीति हो गई है, तिसकी भावना करता है, जगत्‌की वासनाकरि मोहको प्राप्त भया है, जो स्वतःसिद्ध अनुभवरूप आत्मा है तिसको जानि नहीं सकता, अरु वासनाकी प्रबलताकारि स्वरूपका त्याग किया है, अरु भ्रांतिरूप जगत्‌को सत्य देखता है, जैसे मद्यकारि मत्तको पदार्थ विपर्यय हुये औरके और भासते हैं, तैसे मूर्खोंको वासनाके बलकारि जगत्‌के पदार्थ सत्य भासते हैं ॥ हे रामजी ! असम्यक् ज्ञानकारि जीव दुःखी होता है, शांतिको नहीं प्राप्त होता, मनकी चिंताकरि जलते हैं, मन किसका नाम है सो श्रवण कर, जो असम्यक् ज्ञानकारि अनात्माविषे आत्मभावना होवै, अरु वस्तु आत्माविषे अवस्तु अनात्मभावना होवै, तिसका नाम मन है,

सो मन कैसे उत्पन्न होता है, चेतन संवित्‌विषे जो पदार्थोंकी चिंतवना होती है, बहुरि तीव्र पदार्थ की दृढ़ भावना होती है, तब वही चेतन संवित् चित्तरूप हो जाती है, तिस चित्तविषे बहुरि जन्म मरण आदिक विकार उपजते हैं, बहुरि किसीका ग्रहण किसीका त्याग करता है, जब ग्रहण अरु त्यागका संकल्प अंतरते निवृत्त होवै, तब चित्त भी मृतक हो जावै, जब वासना नष्ट हो जाती है, तब मन अमन पदको प्राप्त होता है, मनका अमन होना परम उपशमका कारण है ॥ हे रामजी ! जेते कछु जगत्‌के पदार्थ हैं, तिनकी अभावना करिये अरु सब जगत् अवस्तु भूतकरि त्यागिये, तब हृदयआकाशविषे चित्त शांत हो जावै ॥ हे रामजी ! चित्तका स्वरूप एता मात्र है, जब पदार्थोंते रस उठि जावै, तब चित्त बहुरि नहीं उपजता, जबलग पदार्थोंका रस फुरता है, तबलग स्थूल हो जाता है, असम्यक् ज्ञानकरि जो अनात्माविषे आत्मभावनाहै, ज्यों ज्यों यह दृढ़ होती है, त्यों त्यों चित्तरूपी वृक्ष अनर्थके निमित्त बढ़ता जाता है, अरु ज्यों ज्यों अनात्मासो आत्मबुद्धि निवृत्त हो जाती है. जो अवस्तुविषे वस्तुबुद्धि न होवै, त्यों त्यों चित्तरूपी वृक्ष क्षीण हो जाता है, सो कल्याणके निमित्त है, जब चित्त यथाभूत यथार्थको देखताहै, तब चित्त अचित्त हो जाताहै, अरु सर्व आशा निवृत्त हो जाती हैं, परम शांति शीतलता हृदयविषे स्थित होती है, तब पदार्थोंको ग्रहण भी करता है, परंतु अंतरते रागसंयुक्त वासना निवृत्त भई है, तिसकरि चित्त शांतिको प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! जीवन्मुक्तविषे भी चेष्टा दृष्ट आती है, परंतु जन्मका कारण नहीं होती- काहेते कि मनविषे मनका सद्भाव नहीं, जैसे नटुआ अभिमानते रहित अनेक प्रकारके स्वांग धारताहै तैसे वह अभिमानते रहित चेष्टा करता है, जैसे कुंभारका चक्र भ्रमता ताडनाते रहित हुआ शनैः शनैः स्थिर हो जाता है, तैसे ज्ञानवान्‌का चित्त चेष्टा करता दृष्ट भी आता है, परंतु जन्मका कारण नहीं जब प्रारब्ध भोग वेग पूर्ण होवैगा, तब स्वाभाविक ठहरि जाता है, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे रागते रहित ज्ञानीकी चेष्टा है, जन्मका कारण नहीं होता, देखनेमात्र ज्ञानीकी चेष्टा तुल्य होती है, जैसे भूना अरु काचा बीज एक समान भासता है, परंतु काचा उगता है, भूना नहीं उगता, तैसे ज्ञानीकी चेष्टा जन्मका कारण नहीं

होती. काहेते कि चित्त शांत हो जाता है ॥ हे रामजी ! जिसकी चेष्टा अभिमानते रहित है, सो जीवन्मुक्त कहाता है, तिसका चित्त केवल चिन्मात्रको प्राप्त हुआ है, जब शरीरको त्यागता है, तब अचित्तरूप चिदाकाश होता है ॥ हे रामजी ! चित्तके दो बीज हैं, एक प्राणोंका फुरणा, दूसरा वासनाका फुरणा, दोनोंविषे जब एकका अभाव हो जाता है, तब दोनों नाश हो जाते हैं, ये परस्पर कारणरूप हैं, जैसे तालते मेघ जलपानकरि जाता है, बहुरि वर्षाकरि ताल पुष्ट होता है, सो परस्पर कारणरूप हैं, तैसे प्राणस्पंद अरु वासना परस्परकारणरूप हैं, जैसे बीजते अंकुर होते हैं, अरु अंकुरते बीज होते हैं, तैसे प्राणस्पंदते वासना होती है, अरु वासनाते प्राणस्पंद होता है, ये दोनों चित्तका कारण हैं, जैसे फूलविना सुगंधि नहीं होती, सुगंधिविना फूल नहीं होता, तैसे वासनाविना प्राण नहीं होते, प्राणविना वासना नहीं होती ॥ हे रामजी ! जब वासना फुरती है, तब संवित्‌विषे क्षोभ होता है, वह प्राणोंको जगावती है, तिस करि जगत् उपजता है, जब हृदयविषे प्राण स्पंदके धर्म होते हैं, तब संवित् क्षोभ होता है, अरु चित्तरूपी बालक उपजता है, इसप्रकार वासना अरु प्राण दोनों चित्तका कारण हैं, दोनोंविषे एकका नाश होवै, तब दोनों नाश हो जावैं, अरु चित्तका भी नाश हो जावै ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी एक वृक्ष है, सुखदुःखरूपी तिसके स्कंधहैं, चिंतारूपी फल हैं, कार्यरूपी पत्रहैं, वृत्तिरूपी वल्लीसे वेष्टित हुआ है, अरु रागद्वेषरूपी दोनों बगले ऊपर आनि बैठे हैं, अरु तृष्णारूपी काली सर्पिणीकरि वेष्टित किया है, अरु इंद्रियांरूपी पक्षी तिसपर आनि स्थित होते हैं, इच्छादि रोगोंकरि पुष्ट होता है, अज्ञान इसका मूल है, अवासनारूपी खड्गकरि शीघ्रही काटा जाता है, संसारकी अभावना अरु स्वरूपकी भावनाकरि शीघ्रही नाश हो जाता है, जैसे तीक्ष्ण पवनकरि पका फल वृक्षसों शीघ्रही गिर पड़ता है, तैसे आत्मभावकरि फल गिर पड़ता है ॥ हे रामजी ! चित्तरूपी आँधी है, सर्व दिशा तिसने मलिन करी हैं, प्रकाशको आच्छादि लिया है, अरु तृष्णारूपी तृण तिसविषे पड़े उछलते हैं, अरु शरीररूपी स्तंभाकार अज्ञानरूपी कुंडेते उपजा हुआ, वायु विरोला बड़े क्षोभको प्राप्त करता है, जब अंतर प्रकाश होवै, तब तम दूर करै, जब स्पंद रोकिए तब धूलि शांत हो

जाती है, आत्मविचारते जब वासनाते रहित होवै, तब शरीररूपी धूलि शांत हो जावै ॥ हे रामजी ! प्राणोंके रोकनेकारि शांति होती है; अरु वासनाके अनउदयते चित्त स्थिर हो जाता है, प्राणस्पंद अरु वासनाका बीज संवेदन है, जब शुद्ध संवित् मात्रविषे संवेदनका त्याग करै, तब वासना अरु प्राण दोनों न फुरैं, जैसे वृक्षका बीज मूल काटिए तब बहुरि नहीं होता, तैसे इनका मूल संवेदन है; जब संवेदनका अभाव होवै, तब दोनों नहीं बनते, संवेदनका बीज आत्मसत्ता है, संवित् सत्ताते संवेदन प्रगट भया है, तिसते इतर नहीं जैसे तिलोंविना तेल नहीं पाता, अंतर बाह्य और कछु नहीं, सब संवितसत्ताविना अंतर नहीं पाता, वही संकल्प द्वारा संवेदन को देखती है, जैसे स्वप्नविषे अपनी मृत्युको देखता है, देश देशांतरको प्राप्त होताहै, तैसे सब सत्ता संवेदनको देखती है, संवित् चिन्मात्रविषे संवेदनका उत्थान होता है, जो अहं अस्मि तब संवेदन जगज्जाल दिखावती है, अपनी संवेदन उठिकारि आपको भ्रम दिखाती है, जैसे बालकको अपने संकल्पते उपजा बैताल सत्य भासता है, जैसे स्थाणुविषे पुरुष भासता है, तैसे संवितविषे संवेदन भासती है ॥ हे रामजी ! असम्यक् ज्ञानकारिकै संवेदनरूप हो जाती है तिसविषे आत्मबुद्धि होती है, अरु सम्यक् ज्ञानकारिकै लीन हो जाती है, जैसे जेवरीविषे असम्यक् ज्ञानकारिकै सर्प भासता है, तैसे आत्माविषे संवेदन भासती है, तीनों जगत ब्रह्म संवित्रूप हैं, संवेदन भी कछु भिन्न नहीं, यह निश्चय जिसको दृढ़होवै, इसको बुद्धीश्वर सम्यक्ज्ञान कहते हैं, जो प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष जगत् है, तिससों वास्तव बुद्धि त्याग करनी, इसकरि भी संसारके पारको प्राप्त होवैगा, अरु जो अवस्तु बुद्धिकारि न त्यागैगा, तौ जगत् बडे विस्तारको पावैगा ॥ हे रामजी ! संवेदनका जो उत्थान होता है, सो बड़े दुःखोंको देनेहारा है, अरु संवेदन जो जड़वत् अजड़ है, सो परम सुखसंपत्तिका कारण है, सो आनंद उत्थानते रहित आनंदस्वरूप है, जिसको संवेदन उत्थानते रहित असंवेदन संवित् आत्माकी बुद्धि हुई है, सो संसारसमुद्रके पारको प्राप्त होता है ॥ राम उवाच ॥ हे प्रभो ! जड़ताते रहित असंवेदन कैसे होता है, अरु असंवेदनकारिकै जड़ता कैसे निवृत्त होती है ? ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जो सर्व ठौरविषे आसक्त नहीं होता,

अरु कहूँ चित्तकी वृत्ति नहीं लगती, अरु जीवतत्त्वका ज्ञान कछु न रहै, सो असंवेदन जड़ताते रहित है, संवेदन जो है, स्पंदरूप जिसकरि दृश्य भासता है, सो दृश्यकी ओरते जड़ है, अरु स्वरूपविषे चेतन है, सो अजड़ कहाता है ॥ हे रामजी ! हृदयाकाश जो चेतन संवित् है, तिससाथ संवेदनका स्पर्श कछु न होवै, ऐसी संवित् अजड़ है देवता भी वही है, नाग, दैत्य, अरु राक्षस, हस्ती, मनुष्य आदिक स्थावर जंगमरूप सब वही धारि रहती है ॥ हेरामजी! अपनी चेष्टाकरिकै संवित् आपको आपही बँधावती है, जैसे घुराण आपही आपको गृह विषे बँधावती है, तैसे संवित् आपको बँधावती है, जब अपनी ओर आती है; तब आपही आपको प्राप्त होती है ॥ हे रामजी ! जगत् जाग्रत्रूपी समुद्र है, संवित्रूपी तिसविषे जल है, तिसकरि सब स्थान पूर्ण होगये हैं; अंतरिक्ष पृथ्वी आकाश पर्वत नदीआदिक सब संवित्रूपी जलकी लहर हैं; ताते सर्व जगत् संवित्मात्र है, तिसविषे द्वैत कलनाका अभाव है, यह सम्यक् ज्ञान है, इस संवित्का बीज सन्मात्र है, सन्मात्र सत्ताते संवित्का उदय होना हुआ है, जैसे प्रकाशते ज्योति उदय होती है अरु इस सत्ताके दो रूप हैं, एक रूप नानाप्रकार हो भासता है, द्वितीय एकही रूप है, घट पट तत्त्व आदिक एक सत्ताके नानाप्रकारके विभाग स्थित हैं, अरु विभागते रहित एक सत्ता स्थित है, सो सत्ता सामान्य अद्वैतरूप परमार्थ सत्ता है ॥ हे रामजी ! विषयको त्यागिकरि जो सन्मात्र है सो अलेप एकरूप है, सो महासत्ता है, तिसको ज्ञानवान् परमसत्ता कहते हैं, अरु नाना आकार भी सत्ता कबहूँ नहीं धारती, यह संवेदन करिकै हुए हैं, इस कारणते अवस्तुरूप है, एकरूप जो परमसत्ता निर्मल अविनाशी है, न कबहूं नाश होती है, न विस्मरण होती है, काहेते अनुभवरूप है ॥ हे रामजी ! एक कालसत्ता, एक आकाशसत्ता है, सो यह सत्ता अवस्तु रूपहैं, इस विभागसत्ताको त्यागिकरि सन्मात्रसत्ता जो है; तिसी परायण होउ, कालसत्ता आकाशसत्ता यद्यपि उत्तम है. परंतु वास्तव नहीं. जहां नाना विभाग कलना आकार अरु नाना कारण हैं, सो पवित्रकर्ता पावन नहीं. इसीते कहा है कि, आकाश काल आदिक सत्ता वास्तव नहीं, अरु सत्ता सामान्य जो संवित्मात्र है, सो सर्वका बीज है, तिसते सबकी प्रवृत्ति होती है ॥ हे रामजी !

जेते कछु पदार्थ हैं, तिनकी जो कलना सत्ता सामान्य पर्यंत है, तिस परमपद अनंत अनादि बीजरूपका बीज और कोई नहीं, जब तिसका भान होवै, तब यह निर्विकार होकरि स्थित होवै, तिसको जीवन्मुक्त कहते हैं, जब दृश्यकी भावना कछु न फुरैं, जैसे बालक मूक (गूंगा) होता है, अभिमानते रहित होता है, तैसे ज्ञानकरिकै यह निर्वासनिक होवै, तब जड़ताते मुक्त होताहै, अरु सर्व आत्मभावको प्राप्त होता है, अरु जिस संवित्‌विषे दृश्यका स्पर्श होता है, सो संवित् जड़है, काहेते कि, शुद्ध स्वरूपविषे मलिनका स्पर्श होता है, इसीते जड़ है, अरु जो संवित् द्वैत फुरणेते रहितहै, सो शुद्धहै, अरु अजड़ है, अरु जो द्वैतभावको ग्रहण करती है, सो स्वरूपकी ओरते जड़ है ॥ हे रामजी ! जिसको स्वरूपकी ओर स्थिति भई है, अरु दृश्यभावका लेप नहीं होता सो सर्व वासनाको त्यागिकरि निर्विकल्प समाधिविषे जुड़ता है, जैसे आकाशविषे नीलता स्वाभाविक वर्त्तती है, तैसे योगी आनंदविषे वर्त्तता है, अरु निःसंवेदन संवित्‌विषे नष्ट होता है वहीरूप हो जाता है मनकी वृत्ति तहां स्थिर हो जाती है, बैठते, चलते, स्पर्श करते, सुगंध लेते, देखते, सुनते, सब इंद्रियोंकी क्रिया करते भी मन स्थिर रहताहै, दृश्यका अभिमान नहीं फुरता सो अजड़ कहाताहै, संवेदनते रहित सुखी होता है ॥ हेरामजी ! ऐसी दृष्टि प्रथम तो कष्टरूप भासती है, परंतु सब दुःखको नाशकर्त्री होती है, ताते इसी दृष्टिको आश्रय करके दुःखरूप जो संसारसमुद्र तिसको तरिजाउ. कैसा संसार है, जैसे वटका बीज सूक्ष्म है, विस्तारको पाइकरि आकाशको स्पर्श करने लगता है, तैसे सूक्ष्म संवेदनते जब संकल्प पसरता है, तब वही बड़े जगत्‌के विस्तारको धारती है, अरु जन्मके जालको प्राप्त होती है, बीजरूपकरि आपही जन्मोंविषे डारता है, बहुरि बहुरि मोहविषे गिरता है, जब संवित् अपनी ओर होती है, तब मोक्षको प्राप्त होता है, जैसी भावना स्वरूपविषे दृढ होती है, सोई सिद्ध होती है, जैसे नटुआ अनेक स्वांगको धारता है, तैसे संवित् अनेक आकारोंको धारती है, जब नट भूमिकाको त्यागता है, तब अपने स्वरूपविषे प्राप्त होता है ॥ हे रामजी ! संवित्‌रूपी नटिनी है, अरु जगत्‌रूप धारिकरि नृत्य करती है, अरु जो दुःखरूप संसारसमुद्रविषे गिरे नहीं, सो सत्ता सब कारणोंका कारण है, तिसका

कारण कोई नहीं, अरु सर्व सारोंका सार है, तिसका सार कोई नहीं, तिस चेतनरूपी बडे दर्पणविषे सम सत्त जगत् भासता है, प्रतिबिंबित होता है, जैसे तालविषे किनारेके वृक्ष प्रतिबिंबित होते हैं, तैसे सब वस्तु चिद् दर्पणविषे प्रतिबिंबित होती हैं ॥ हे रामजी ! जेते कछु पदार्थ हैं, सो आत्मसत्ताकारि सिद्ध होते हैं, उसी अनुभवविषे सबका अनुभव होता है, जैसे षट् रसोंका स्वाद जिह्वाकारि सिद्ध होता है, तैसे सब पदार्थ चिदाकाशके आश्रयसिद्ध होते हैं, सब जगत्गण तिसीते उपजे हैं, तिसीविषे वर्तते हैं, बढते हैं, तिसीविषे स्थित दीखते हैं, तिसीविषे लीन होते हैं, सबका अधिष्ठान वही सत्ता है, बहुरि कैसी है, गुरूका गुरु वही है, लघुकी लघुता वही है, स्थूलकी स्थूलता वही है, सूक्ष्मकी सूक्ष्मता वही है, द्रव्योंका द्रव्य वही है, कष्टोंविषे कष्टता वही है, बडेविषे बडाई वही है, तेजोंका तेज वही है, तमका तम वही है, वस्तुकी वस्तु वही है, द्रव्यका द्रव्य वही है, द्रष्टाका द्रष्टा वही है, किंचनविषे किंचन वही है, निष्किंचनविषे निष्किंचन वही है, तत्त्वोंका तत्त्व वही है, असत्यका असत्य वही है, सत्यका सत्य भी वही है, आश्रमविषे आश्रम वही है, अनाश्रमविषे अनाश्रम वही है ॥ हे रामजी ! ऐसी जो परम पावन सत्ता है, तिसविषे प्रयत्न करिके स्थित होउ, बहुरि जैसी इच्छा होवै, तैसे करहु, सो आत्मतत्त्व निर्मल है, अजर है, अमर है, शांतरूप है, चित्तके क्षोभते रहित है, भवसंसारते मुक्तिके निमित्त तिसविषे स्थित होउ ॥ इति श्रीयोगवा० उपशमप्रकरणे स्मृतिबीजविचारो नाम सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

राम उवाच ॥ हे महाआनंदके देनेहारे ! यह जो बीजोंका बीज तुमने कहा है, सो किसप्रकार प्राप्त होवै, जिस प्रकार उस पदकी शीघ्र प्राप्ति होवै सो उपाय कहौ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! इन सबके बीजका जो उत्तर दिया है तिस तिस उपायकरि परमपदकी प्राप्ति होती है, अब और भी जो तैंने पूछा है, सो सुन, सत्ता सामान्यविषे स्थित होने निमित्त यत्न कर्तव्य है, जेती कछु संसारकी वासना हैं, बलकरि तिनको त्याग करिये, अरु शुद्ध आत्माविषे तीव्र अभ्यास करिये, तब शीघ्रही अविघ्न आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होवै ॥ हे तत्त्ववेत्ता ! उस पदविषे क्षीण भी स्थित होहुगे, तब अक्षय भावको प्राप्त होहुगे ॥ हे रामजी ! सत्ता सामान्य संवित्मात्र

तत्त्व है, तिसविषे स्थित होउ, जो इच्छा होवै सो करौ, तिसविना कछु अपर सिद्ध न होवैगा, सब वही भासैगा, ऐसा जो अनुभव तत्त्व है, सो तेरा स्वरूप है, तिसके ध्यानविषे स्थित हुए तुझको खेद कछु न होवैगा, ऐसा संवेदनसाथ ध्यान नहीं होता, अरु ऊंचा पद है, पुरुष प्रयत्नकरि तिस पदको प्राप्त होहु ॥ हे रामजी ! केवल संवेदन साथ ध्यान नहीं होता, काहेते जो सर्वत्र संभव संवित् तत्त्व है, संवित् सर्वदा सर्वकाल सहायक होती है, अरु सबसाथ मिली हुई है, जो कछु चितवै, जहां इच्छित होवै, जो कछु करै, सो सब संवित्करि सिद्ध होता है ॥ हे रामजी ! आत्मतत्त्व प्रत्यक्ष है, तिसका भान नहीं होता, और कछु भासता है, यही अविद्या आवरण है, सो इसको दुःख होता है, जो स्वरूपके प्रमादकरि दृश्यकी वासना करताहै, तिसकी दृढताकरि अंतःकरण दुःख पाता है, जब यत्न करिकै वासनाका त्याग करिये, तब मन अरु शरीरके दुःख सब नाश हो जावैंगे, अरु पूर्व जो इसको मोह दृढ हो रहा है, जैसे मेरुको मूलते उखाड़ना कठिन है, तैसे वासनाका त्याग कठिन हो रहा है, सो वासना मनते होती है, जबलग मन क्षय नहीं होता, तबलग वासनाभी क्षय नहीं होती, अरु तत्त्वज्ञानविना मन नाश नहीं होता, जब वासना अरु मनका आवरण दूर होता है, यह परस्पर कारणरूप है, ताते हे रामजी ! तू पुरुषप्रयत्न करिकै मनके संकल्पविकल्पको निवृत्त करौ, अभ्यास अरु विचार करिकै विवेकको उपाय करि भोगोंकी वासना दूरते त्याग, इसकरि तू शांतिवान् होवैगा, इन तीनोंका सम अभ्यासकरि तत्वज्ञान मनोनाश अरु वासनाक्षयका वारंवार अभ्यास कर, जबलग इनको न साधैगा, तबलग अनेक उपायोंकरि शांतिको न प्राप्त होवैगा ॥ हेरामजी ! जो वासनाका क्षय होवै, अरु मनोनाश तत्वज्ञानका अभ्यास न करै, तौ कार्य सिद्ध नहीं होता, अरु जो मनोनाश करै, अरु तत्वज्ञानकरि वासनाक्षय न करै, तब भी कल्याण न होवैगा, अरु तत्वज्ञानका विचार करै, अरु वासना क्षय न होवै, तौ भी कुशल न होवैगा, जब तीनोंका सम अभ्यास होवै, तब फलकी प्राप्ति होवै ॥ हे रामजी ! एकके सेवनेते सिद्धता नहीं प्राप्त होती, जैसे मंत्रोंको कोऊप्रतिबंध लय करै, तब फलदायक नहीं होता. अर्थ यह कि, मंत्र संपूर्ण हुआ फलदायक होता है, एक एक चरण पढै तौ फल

दायक नहीं होता, जबलग सब मंत्र संध्यादिक एक ठौर नहीं पढता, तबलग मंत्र नहीं फुरते, तैसे एकला किसीकरि कार्य सिद्ध नहीं होता, जब चिरकाल इनका इकट्ठाही सेवन होवे, तब कार्य होवै. जैसे बडे शत्रु सैन्यसंयुक्त होवै, तिसको मारनेको एक शूरमा जावै, तब शत्रुको मारि न सकै, जब इकट्ठे सेनाके ऊपर जाय पड़े, तब उसको जीति लेवै, तैसे संसाररूपी शत्रु है, जब तत्त्वज्ञान मनोनाश और वासनाके क्षयका इकट्ठा अभ्यास होवै, तब संसाररूपी शत्रु नाश होवै ॥ हे रामजी ! जब तीनोंका अभ्यास करैगा, तब हृदयकी अहं मम ग्रंथी टूटि पडती है, जैसे अनेक जन्मोंकी संसारसत्यता जो इसके हृदयविषे स्थित हो रही है, सो अभ्यास योगकरि टूटि पडैगी, नाश हो जावैगी, ताते चलते, बैठते, खाते, पीते, सूँघते, स्पर्श करते, जागते, इन तीनोंका अभ्यास करौ ॥ हे रामजी ! वासनाके त्यागेते प्राणस्पंद रोंका जाता है, जब प्राणोंका स्पंद रोका, तब चित्त अचित्त हो जाता है, एक प्राणोंके रोंकेते वासना क्षय हो जाती है, तब भी चित्त अचित्त हो जाता है, आत्मयोगकरि अथवा वासना त्यागकरि आत्मतत्त्व प्रकाशैगा, इनविषे जो तेरी इच्छा होवै सोई कर. प्राणोंका रोंकना योगकरि भावै, वासनाका त्याग कर, प्राणायाम तब होता है, जब गुरुकी दीनी युक्ति स्थित होती है, आसन अरु आहारके संयम करि प्राणोंका स्पंद रोंका जाता है, अरु सम्यक् ज्ञानकरिकै जगत्को अवास्तव जानता है, तब वासना नहीं प्रवर्त्तती, जो जगत्की आदि भी अरु अंत भी स्थितिहै, तिसविषे मन जब स्थित होता है, तब वासना नहीं उपजती ॥ हे रामजी ! जब व्यवहारविषे निःसंग हुआ, अरु संसारकी भावनाते विवर्जित हुआ, अरु शरीरविषे नाशवंत बुद्धि भई, तब वासना नहीं प्रवर्त्तती, जब विचार करिक वासना क्षय होवै, तब चित्त भी नष्ट हो जावैगा, जैसे वायुके ठहरेते धूलि नहीं उड़ती, तैसे वासनाके क्षय हुए चित्त नहीं उपजता, जो प्राणस्पंद है, सोई चित्तस्पंद है जब वासना फुरती है, तब जगद्भ्रम उपजता है, जैसे अरुडते धूलि उपजती है, तैसे चित्तते वासना उपजती है, जब *प्राणस्पंद* ठहरता है, तब चित्त भी ठहर जाता है, ताते यत्नकरि प्राणस्पंद अथवा वासनाके जीतनेका अभ्यास करौ, *तब शांतिवान्* होवोगे, अरु जो यह उपाय न करैगा, अरु औरको चित्तवश करनेका उपाय

करैगा, तौ बहुत कालते पावैगा ॥ हे रामजी ! मनके जीतनेका अन्य उपाय इन युक्तिविना और कोई नहीं, जैसे मतवाले हस्तीको अंकुशविना वश करनेका उपाय और कोई नहीं, तैसे मन युक्तिविना वश नहीं होता, सो युक्ति कौन है, संतोंकी संगति सच्छास्त्रोका विचार करना, जो इस उपायकरि तत्त्वज्ञान अरु वासनाक्षय, अरु प्राणोंका स्पंद रोकना यह चित्त वश करनेको परमयुक्तिहै, इसकरि चित्त शीघ्रही जीता जाता है, अरु जो इन उपायोंका त्यागकरि हठसों मन वश किया चाहते हैं, सो क्या करते हैं, जैसे तमके नाश करनेको दीपक जगावै, तौ नाश हो जाता है; अरु शस्त्रोंकरि तमको काटे, तौ तम नाश न होवैगा, तैसे और उपायोंकरि चित्त वश न होवैगा, इसविना और उपाय करते हैं, सो मूर्ख हैं, जैसे मतवाला हस्ती भेहकी तंतुसे बांधा नहीं जाता, जो कोऊ इसकरि बांधने लगै तौ महामूर्ख है, तैसे मनके जीतनेको और प्रकार जो हठ करते हैं, सो महामूढ हैं, और उपाय करिकै क्लेश प्राप्त होवैगा, आत्म सुख न प्राप्त होवैगा, जैसे दुर्भागी जीवोंको कहूं सुख नहीं होता है. हे रामजी ! तीर्थ, दान, तप, देवताकी पूजा यह चारों साधन जिननें किये हैं, अरु मन जीतनेका उपाय नहीं किया, सो मृगकी नाई हुए भ्रमते फिरते हैं, पहाडोंकी कंदराविषे फल पत्र खाते फिरते हैं, मनका नाश किया नहीं, ताते आत्मपदको नहीं पाया, सो और पशुओंके समान हैं, जैसे और पशु मृग पहाडोंविषे होते हैं, तैसे वे भी हैं ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने मनको वश नहीं किया, तिसको शांति प्राप्त नहीं होती, जैसे कोमल अंग मृग ग्रामविषे गया शांतिको प्राप्त नहीं होता, जैसे जलविषे आया तृण नदीके वेगकरि भटकता फिरता है, कष्टमान होता है, तैसे वह पुरुष कर्म करता है, मनको स्थित किएविना कष्ट पाता है, कबहूं दुःखसाथ जलता है, कबहूं कर्मोंके वशते स्वर्गको प्राप्त होता है, सो भी नाश हो जाते हैं, जैसे जलविषे तरंग उछलता है, कबहूं अधको जाता है, तैसे कर्मोंके वशते जीव स्वर्ग नरकविषे मध्यविषे भ्रमते हैं, ताते ऐसी दृष्टिका त्यागकरि शुद्ध संवित्मात्रको आश्रय कर, अरु वीतराग होकरि स्थित होउ ॥ हे रामजी ! जगतविषे ज्ञानवान् सुखी है, अरु जीता भी वही है, और सब दुःखी हैं, अरु मृतक समान हैं, अरु बली भी ज्ञानवान् है, सो मोहरूपी शत्रुको मारकर संसार

समुद्रके पारको प्राप्त होता है, और सब निर्बल हैं, ताते तुम भी ज्ञानवान् होउ, संवेदन रहित जो संवित्‌मात्र तत्त्व है, सो एक है. अरु सर्वकी आदि है, सबते उत्तम कलनाते रहित सर्वविषे स्थित है, तिसविषे स्थित होडु, तब कर्ता हुआ भी अकर्ता होवैगा, अरु परम ब्रह्म उदय होवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे संशयनिराकरणोपदेशवर्णनं नाम अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥ ॥ वसिष्ठ उवाच ॥ हे रामजी ! जिस पुरुषने आत्मविचारकारि अल्प भी अपना चित्त निग्रह किया है, सो संपूर्ण फलको प्राप्त होवैगा, अरु तिसका जन्म सफल हुआहै ॥ हे रामजी ! जिस चित्तविषे विचाररूपी कणका उदय हुआहै, सो अभ्यास करिकै बडे विस्तारको पावैगा, निरागपूर्वक जिसके हृदयविषे विचार उपजा है, सो वढता जाता है, अरु अविद्यारूपी गुणोंके फलको काटि डारैगा अरु सब शुभगुण आनि आश्रय करैंगे, जैसे जलकारि पूर्ण हुये तालका सब पक्षी आनि आश्रय करते हैं ॥ हे रामजी ! जिसको सम्यक् ज्ञान प्राप्त हुआ है, अरु निर्मल बोधकरि यथादर्शन हुआ है, तिसको इंद्रियोंकेविषे चलाइ नहीं सकते, जबलग स्वरूपका प्रमाद होता है, तबलग आधि दुःख इसको होता है, अरु जब स्वरूपविषे स्थित होता है, तब शरीर अरु मनके दुःख इसको वश नहीं करि सकते, जैसे बिजुरीको ग्रहण कोऊ नहीं करता, जैसे मुष्टिकारि मेघोंको मुष्टिविषे कोऊ पकड नहीं सकता, जैसे आकाशके चंद्रमाको मुष्टिविषे कोऊ नहीं पकड सकता, जैसे मूढ स्त्री चंद्रमाको मोहनेको समर्थ नहीं होती, तैसे ज्ञानवान्‌को दुःख कोऊ वशकारि नहीं सकता ॥ हे रामजी ! जो हस्ती मदकारि मत्त है, अरु मद मस्तकते झरता है, अरु भँवरे तिसके आगे शब्द करते हैं, मच्छरोंके प्रहार अरु स्त्रियोंके श्वास तिसको नहीं छेदि सकते, तैसे ज्ञानवान्‌को विषयोंके रागद्वेष चलाय नहीं सकते, अरु जिस हस्तीके मस्तकसों मोती निकसते हैं, ऐसे बलवान् हस्तीको नखोंसाथ विदारणेहारा जो सिंह है, जैसे उस सिंहको हरण मारि नहीं सकता, तैसे ज्ञानवान्‌को दुःख चलाय नहीं सकता, अरु जिसके फूत्कारेसाथ वनके वृक्ष जल जाते हैं, ऐसा जो सर्प है, जैसे वह सर्पको दर्दुर ग्रासि नहीं सकते, तैसे ज्ञानवान्‌को रागद्वेष चलाय नहीं सकते, अरु जैसे कोऊ राजा सिंहासनपर बैठेको तस्कर दुःख दे नहीं सकते, तैसे जो

ज्ञानी स्वरूपविषे स्थित हैं, तिसको इंद्रियोंके विषय दुःख दे नहीं सकते, अरु जो विचारते रहित देहाभिमानी हैं, आत्मतत्त्वको नहीं प्राप्त हुए; तिनको विषय उडाइ ले जाते हैं, जैसे सूखे पत्रको पवन उडाइ ले जाता है, अरु ज्ञानवान्‌को चलाय नहीं सकते, अरु जैसे पर्वत मंदिर पवनकरि चलायमान नहीं होते, तैसे ज्ञानवान् सुख दुःखविषे चलायमान नहीं होते; अरु जो विचारते रहित है, सो देशके परिणामभावविषे स्थित मानता है, अरु जगद्भाव है, संसारभाव पदार्थोंविषे मनुष्य जन्मविषे गुरुशास्त्रका मार्ग तिसकी ओरते सोइ रहा है, अरु मूढ हो रहा है, खाने पीनेविषे सावधान है, अरु विचारते शून्य है; सो मृतकसमान है, मृतक कहाता है, यह विचार इसको कर्तव्य है, जो मैं कौन हौं, अरु यह जगत् क्या है, कैसे उत्पत्ति हुआ है, अरु कैसे निवृत्त होवैगा, इसप्रकार संतोंका संग अरु अध्यात्मशास्त्रकारि विचारकरि जो पुरुष दृश्यभावको त्यागिकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होता है, सो परमपदको पाता है, जैसे दीपके प्रकाशकरि पदार्थको पाता है, तैसे विचारकरि आत्मतत्त्व पाता है ॥ हे रामजी ! जो शास्त्रविचारकरि आत्मतत्त्वका बोध होता है, सो ज्ञान कहाता है, सो ज्ञान ज्ञेयके साथ अभिन्नरूप है, अध्यात्मविद्याके विचार करिके आत्मज्ञान प्राप्त होता है, जैसे दूधसों मथिकरि माखन काढता है, तैसे विचारकरि आत्मज्ञान प्राप्त होता है, ज्ञेय इसके अंतर होता है, सो ज्ञेय परब्रह्मस्वरूप है, सत्य है, असत्यकी नाईं होकरि स्थित है, ज्ञानवान् तिसको पाइकरि तृप्त होता है, अरु जीवन्मुक्त होकरि अपने आपविषे प्रकाशता है, जैसे चक्रवर्ती राज्यविषे आनंदकरि तृप्त होता है, तैसे ज्ञानवान् ब्रह्मानंदविषे इंद्रियोंकी इच्छाते रहित शोभता है, शब्द स्पर्श रूप रस गंध पांचों इंद्रियोंमें आसक्त नहीं होता, सुंदर राग तंत्रीके शब्दविषे स्त्रियोंके गाने विषे और भी जो कोकिला पक्षी हैं, अरु गंधर्व गंधर्वीविषे लेकरि गायन है, तिनकी किसीविषे आसक्त नहीं होता, अरु जेते कछु स्पर्श हैं सुंदर फूल अग्र चंदन मंदार कल्पवृक्षोंके फूलोंकी सुगंधि अरु सुंदर स्त्रियोंका स्पर्श करना, अप्सरा नागकन्या अरु स्वर्णके द्रवत्वकी नाईं जिनके अंग हैं, तिनका स्पर्श करना, अरु हीरा मणि भूषण नानाप्रकारके वस्त्र हैं, तिनविषे बंधमान नहीं होता, जैसे चंद्रमा सुंदर अरु शीतल है, परंतु सूर्य मुखी कमलोंको

विकास नहीं करि सकता, तैसे सुंदर स्पर्शज्ञानीके चित्तको हर्षवान् नहीं करते, जैसे मरुस्थलविषे हंस प्रसन्न नहीं होता, तैसे ज्ञानवान् स्पर्शोविषे नहीं प्रसन्न होते, अरु ज्ञानवान् रसादिकाविषे भी बंधमान नहीं होता, दूध दही घृतादिक जो रस हैं अरु भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य चार प्रकारके भोजन हैं, अरु कटु तीक्ष्ण मीठा खारा जितने रस हैं, तिनकी इच्छा ज्ञानवान् नहीं करते, किसीविषे बंधमान नहीं होते, आकाशबोधकरि नित्य तृप्त हैं; किसी भोगकी इच्छा नहीं करते, जैसे ब्राह्मण कूकरका मांस खानेकी इच्छा नहीं करते तैसे ज्ञानवान् उर्वशी रंभा मेनका आदिक अप्सराकी इच्छा नहीं करता, अरु गंधकी इच्छा भी नहीं करता, चंदन अगर कस्तूरी मंदार वृक्षके फूल सुगंधिकी इच्छा नहीं करते; जैसे मच्छी मरुस्थलकी इच्छा नहीं करती, तैसे ज्ञानवान् सुंगधिकी इच्छा नहीं करता, अरु रूपकी इच्छा भी नहीं करते, सुंदर स्त्रियां बाग तालाब नदियां इत्यादिक जो रूपवंत पदार्थ हैं, तिनकी इच्छा नहीं करता, जैसे चंद्रमा बादलोंकी इच्छा नहीं करते तैसे ज्ञानवान् रूपकी इच्छा नहीं करते, औरकी क्या बात है, इंद्र यम विष्णु ब्रह्मा समुद्र कैलास मंदराचल रत्न मणि कांचन यह जो बड़े बड़े पदार्थ हैं, तिनकी इच्छा नहीं करता, जैसे राजा नीच पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता, तैसे ज्ञानवान् पदार्थोंकी इच्छा नहीं करता, समुद्रके गर्जने सिंहके गर्जनेते बिजलीके गर्जनते आदि भयानक शब्दहैं, तिनको सुनकरि भयमान नहीं होता, जैसे शूरमा धनुष्यका शब्द सुनकरि भयमान नहीं होता, जैसे ज्ञानवान् मतवाले हस्ती अरु वैताल पिशाचके शब्द सुन अरु इंद्रके वज्रका शब्द देवता सुनता हुआ कंपायमान नहीं होता, सत् स्वरूपकी स्थितिते चलायमान कदाचित् नहीं होता, अरु जो आरेसे शरीरको काटिये अरु खड्गसे कणकण करिय, बाणोंसे वेधा जावै, तौ भी कंपायमान नहीं होता, उसको राग द्वेष किसीविषे नहीं होता, शरीरपर एक ओर जलता अंगार राखिये, अरु एक ओर फूलोंका स्पर्श राखिये तौ भी हर्ष शोकवान् नहीं होता, अरु एक ओर खड्गधारावत् तीक्ष्ण स्थान होवे, अरु एक ओर पुष्पशय्या होवै तिसको दोनों तुल्य हैं, एक ओर शीतल स्थान होवे, एक ओर तप्तशिला होवै, दोनों उसको तुल्य हैं एक ओर मारनेवाला विष होवै, दूसरी ओर जिवानेवाला अमृत होवै,

सो दोनों उसको तुल्य हैं ॥ हे रामजी ! संपदा प्राप्त होवै, भावै आपदा प्राप्त होवै, भावै मृत्यु प्राप्त होवै, इनविषे व्यवहार करता भी दृष्ट आता है, परंतु अंतरते हर्षशोक नहीं, उसका मन अंतरते मुक्त है, सदा सम रहता है ॥ हे रामजी ! लोहके जंबुरासाथ उसका मांस तोडिये, अरु नरकविषे डारिये, अरु ऊपर शस्त्रोंकी वर्षा होवै, तौ भी ज्ञानवान् पुरुष भयको न पावैगा, अरु न उद्वेगवान् व्याकुल होवैगा, न दीन होवैगा, ज्ञानवान् इनविषे सदा सममन रहता है, पहाडकी नाईं धैर्यवान् स्थित रहता है ॥ हे रामजी ! ज्ञानवान् रागद्वेषते रहितहै, देह अभिमानते मुक्त जो हुआ है, तिसका शरीर अग्निविषे पडै, अथवा खाईविषे गिरै, अथवा स्वर्गविषे होवै, उसको दोनों तुल्य हैं, हर्षशोकते रहित है ॥ हे रामजी ! जिसको स्वरूपविषे दृढ स्थिति भई है, सो चलायमान नहीं होता, जैसे मेरु स्थित है, उसको पवित्र पदार्थ होवै, अथवा अपवित्र होवै, पंथ होवै अथवा कुपंथ होवै, विष होवै, अथवा अमृत होवै, मीठा, खट्टा, सलोना, कडुवा, दूध दही, घृत, रस, रक्त, मांस, मद्य, अस्ति, तृण आदिक जो भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य भोजन हैं, सो सम हैं न इष्टविषे रागवान् होता है, न अनिष्टविषे द्वेषवान् होता है, जो प्राणोंके निकसनेको सन्मुख आवै, अरु दूसरा प्राणोंकी रक्षानिमित्त आवै, तो दोनोंको आत्मस्वरूप शांत मनमधुररूप देखता है, रागद्वेषते रहित है, रमणीय अरमणीय पदार्थोंको सम देखता है, संसारकी आस्था त्यागि दीनी है, बोधस्वरूपविषे निश्चय भया है, चित्त निराग पदको प्राप्त भया है, सब जगत् उसको आत्मस्वरूप भासता है. शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध पंच विषयोंके भोग अवसर अपना नहीं पाते, जैसे दर्पणको देखने लगैं तो प्रतिबिंब भासता है, दर्पणकी सूरत नहीं रहती, तैसे विषयोंविषे आत्मा देखता है, विषयोंकी सूरत नहीं रहती, अरु जो अज्ञानी है, तिसको इंद्रियां ग्रास लेती हैं जैसे तृणोंको मृग ग्रासि लेताहै, अरु जिसने आत्मपदविषे विश्रांति पाई है, तिसको इंद्रियां ग्रास नहीं सकतीं ॥ हे रामजी ! अज्ञानरूपी समुद्रविषे जो पडा है, अरु वासनारूपी लहरीसे मिलिकरि उछलता है अरु गिरता है, तिसको आशारूपी तंदुआ ग्रास लेता है, हाय हाय करता है शांतिको प्राप्त नहीं होताहै, अरु जो विचार करिकै आत्मपदको प्राप्त भया है, सो विश्रांतिको

पाइ चलायमान नहीं होता जैसे सुमेरु पर्वत जलके समूहकारि चलायमान नहीं होता तैसे वह संकल्प विकल्पविषे चलाय[illegible]न नहीं होता, सर्व संकल्पकी सीमा आत्मपदविषे विश्रांति जिसको भई है, सो उत्कृष्टताको प्राप्त भया है ॥ हे रामजी ! तिसको यह जगत ज्ञानमात्र भासता है, संवित्मात्र जानिकरि विचार करता है, न किसीका ग्रहण त्याग करता है तातें भ्रांतिको त्यागिकारि संवित्मात्रही तेरा स्वरूप है, किसका त्याग करता है, किसका ग्रहण करता है, जो आदिविषे भी न होवै, अंतविषे भी न रहै, मध्यविषे कछु भासै सो भ्रममात्र जानिये इसप्रकार जानिकरि भावअभावकी बुद्धिको त्यागिकरि निःसंवेदनरूप होईकरि संसारसमुद्रको तरि जावहु, मन बुद्धि इंद्रियां करिके कर्म करौ, भावै न करौ, निःसंग होहुगे तब तुमको लेप न लगेगा ॥ हे रामजी ! जिसका मन अभिमानते रहित हुआ है, सो कर्म करता भी लेपायमान नहीं होता, जैसे मन और ठौर गया होता है, तौ विद्यमान् शब्द अथवा रूप पदार्थोंको होते भी नहीं जानता, तैसे जिसका मन आत्मपदविषे स्थित हुआ है, तिसको सुख दुःख कर्म नहीं लगता, जो पुरुष अभिमानते रहित है, सो कर्मोंविषे सुखदुःखको भोगता दृष्ट आता है, परंतु उसको स्पर्श नहीं करता, देखौ तौ यह बालक भी जानते हैं, जो मन और ठौर जाता है, तौ सुनता भी नहीं सुनता, तैसे वह पुरुष करता भी नहीं करता ॥ हे रामजी ! जिसका मन असंग हुआ है, सो देखता है, परंतु नहीं देखता, सुनता है, परंतु नहीं सुनता, स्पर्श करता है, परंतु नहीं करता है, सूँघता है, रस लेता है, परंतु नहीं लेता, इत्यादिक जो कछु चेष्टा हैं, सो कर्त्ता भी अकर्त्ता है, उसका चित्त आत्मपदविषे लीन भया है, जैसे कोऊ पुरुष देशांतरको जाता है, सो उस देशविषे व्यवहार कर्म करता है, परंतु उसका चित्त ग्रहविषे रहता है, तैसे ज्ञानवान्का चित्त आत्मपदविषे रहता है, यह बात मूर्खभी जानता है, कि जैसा वेग मनविषे तीव्र होता है, तिसीकी सिद्धता होती है, सोई भासता है, और नहीं भासता ॥ हे रामजी ! सर्व अनर्थोंका कारण संग है, संसारके संगकरि जन्ममरणके बंधनको प्राप्त होता है तातें सब अनर्थोंका कारण संसारका संग है, सब इच्छाका कारण संग है, अरु सब आपदाका कारण संग है, संगत्यागकरि मोक्षरूप अजन्मा होता है, तातें संगको

त्यागिकरि जीवन्मुक्त होइकरि विचरु ॥ राम उवाच ॥ हे भगवन्! सर्व संशयरूपी कुहाड़के नाशकर्त्ता शरत्कालका पवन, संग किसको कहते हैं? संक्षेपते मुझको कहो ॥ वसिष्ठउवाच ॥ हे रामजी! भावअभाव जो पदार्थ हैं; सो हर्षशोकको देनेहारे हैं, जिस मलीन वासनाकरि यह प्राप्त होता है, सो वासना संग कहाता है ॥ हे रामजी! जो देहविषे अहंबुद्धि होती है, अरु संसारकी सत्य प्रतीति होती है, तिस संसारके इष्ट अनिष्टको राग द्वेष सहित ग्रहण करता है, ऐसी मलिन वासना संग कहाती है, अरु जीवन्मुक्तकी वासना हर्षशोकते रहित शुद्ध होती है, सो निःसंग कहाती है, तिसकी वासना जन्ममरण नहीं होता ॥ हे रामजी! जिस पुरुषको देहविषे अभिमान नहीं होता, अरु स्वरूपविषे स्थित है, शरीरके इष्ट अनिष्टविषे राग द्वेष नहीं करता, उसकी शुद्ध वासना है, वह जो कर्त्ता है, सो बंधनका कारण नहीं होता, जैसे भूना बीज नहीं उगता, तैसे ज्ञानवान्की वासना जन्ममरणका कारण नहीं होती, अरु जिसकी वृत्ति जगत्के पदार्थविषे स्थित है, अरु रागद्वेषकरि ग्रहण त्याग करता है, ऐसी जो मलिन वासना है, सो जन्मोंका कारण है, इस वासनाको त्यागिकरि जब तू स्थित होवैगा, तब तू कर्ता हुआ भी निर्लेप रहैगा, हर्ष शोकादि विकारोंते जब तू रहित होवैगा, तब वीतराग भय क्रोधते असंग होवैगा ॥ हे रामजी! जिसका मन असंग हुआ सो जीवन्मुक्त हुआ है, ताते तू भी वीतराग होइकरि आत्मतत्त्वविषे स्थित होहु, जीवन्मुक्त पुरुष इंद्रियोंके ग्रामको निग्रह करिके स्थित होता है, अरु मान मद वैरको त्यागिकरि संतापते रहित स्थित होता है, जो कछु कर्म करते हैं, सो सब आत्मा जानि करते हैं, परंतु व्यवहार बुद्धिते रहित असंग होइकरि कर्म करते हैं, सो करते भी अकरते हैं, तिसको आपदा अथवा संपदा प्राप्त होवै, अपने स्वभावको नहीं त्यागते, जैसे क्षीरसमुद्रको मंदराचल पर्वत पाइकरि शुक्लताको न त्यागता भया, तैसे जीवन्मुक्त अपने स्वभावको नहीं त्यागते ॥ हे रामजी! आपदा प्राप्त होवै अथवा चक्रवर्ती राज्य प्राप्त होवै, अथवा सर्पका शरीर प्राप्त होवै, अथवा इंद्रका शरीर

प्राप्तः होवै, इन सबविषे सम आत्मभाव स्थित होते हैं, हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होते हैं, अरु सर्व आरंभको त्यागिकरि नानात्व भावते रहित स्थित होते हैं, विचार करिके जिनने आत्मतत्त्व पाया है, जैसे स्थिति होवै तैसे स्थिति होवै, तुम भी इसी दृष्टिको पाइकरि आत्मतत्त्वको देखौ, तब वीतज्वर होवैगा, आत्मपदको पाइकरि बहुरि जन्ममरणके बंधनमें न आवैगा ॥ इति श्रीयोगवासिष्ठे उपशमप्रकरणे आर्षे देवदूतोक्तमहारामायणे मोक्षोपायवर्णनं नाम ऊननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥ ॥

इति योगवासिष्ठे पञ्चमं उपशमप्रकरणं समाप्तम् ५.

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालय-बंबई.

RK16

[illegible]